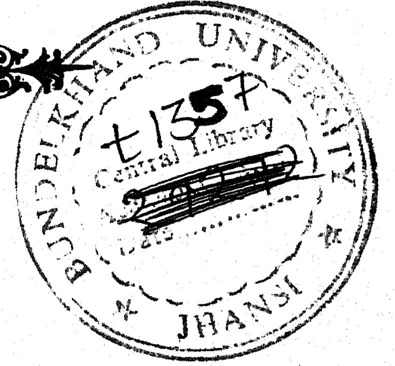
'तापसवत्सराजम् एवं स्वप्नवासवदत्तम् नाटकों का तुलनात्मक नाट्य-शास्त्रीय विवेचन'

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी-एच० डी०

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध



शोध-पर्यवेक्षक-

डॉ० रामावतार त्रिपाठी

एम०ए०, पी-एच०डी०, व्याकरणाचार्य,

संस्कृत-विभागाध्यक्ष;

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय

बाँदा (उ०प्र०)

प्रस्तुतकर्त्री-

कु० पुष्पलता

शोधच्छात्रा;

संस्कृत-विभाग,

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय

बाँदा (उ०प्र०)

संस्कृत - विभाग

कला - संकाय

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ०प्र०)

दीपावली 1996

प्रमाण - पत्र

* प्र मा ण - प त्र *

प्रमाणित किया जाता है कि -

§1§ यह शोध प्रबन्ध शोध - छात्रा कु० पुष्पलता का निजी एवं मौलिक प्रयास है ।

§2§ इन्होंने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि तक कार्य किया है ।

§3§ इन्होंने विभाग में वांछित उपस्थिति भी दी है ।

शोध -निर्देशक

संस्कृत-विभाग

दिनांक
21·12·96

रामावतार त्रिपाठी

§ डॉ०रामावतार त्रिपाठी §
एम०ए०;पी-एच०डी०, व्याकरणाचार्य
काव्यतीर्थ,
संस्कृत - विभागाध्यक्ष,
पं०जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
बाँदा §उ०प्र०§

आ मु ख म्

आ मु ख म्

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के आरम्भ में अपने विनम्र हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है । मुझे विद्याध्ययन-काल के प्रारम्भ से ही संस्कृत-भाषा के अध्ययन के प्रति रुचि रही है । प्रत्येक परीक्षा में संस्कृत मेरा एक रुचिपूर्ण विषय रहा है । अपनी इसी स्वाभाविक रुचि के कारण मैंने संस्कृत-विषय लेकर स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण की थी । संस्कृत-भाषा और साहित्य के निरन्तर अध्ययन से मेरे मन में इस विषय को और आगे पढ़ने की रुचि जागृत हुई । संस्कृत - साहित्य की अन्य अनेक विधाओं के होते हुए भी संस्कृत के नाटकों का अध्ययन मुझे अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ है । नाटकों के सतत अध्ययन से मेरे मन में इस विषय में शोध करने की इच्छा का यथासमय उदय हुआ । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इसी लगन का सुपरिणाम है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध डॉ०रामावतार त्रिपाठी, संस्कृत विभागाध्यक्ष, प०जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के विद्वत्तापूर्ण एवं गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । वे संस्कृत की प्राच्य-पाश्चात्य उभयविध शैली के उद्भट विद्वान हैं । उनका निर्देशन मेरे लिए गौरव की बात है । उन्होंने समय - समय पर कृपापूर्वक शोधकार्य सम्बन्धी अपना दिशा-निर्देश देकर मुझे उपकृत और अनुगृहीत किया है । उनके आशीर्वाद से इस शोध-प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत करने का अब मुझे शुभ-अवसर हस्तगत हुआ है ।

प्राचीनकाल से ही विद्वानों ने संस्कृत - नाटकों के अध्ययन के प्रति रुचि दिखाई है । महान् प्राच्य-विद्या-विशारद डॉ०ए०बी०कीथ,

प्रो0 सिल्वन लेवी, प्रो0 वानश्रेडर, पोशेल, लूडर्स और कोनो-प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। सौभाग्य से डॉ0ए0बी0कीथ ने अपना बहुमूल्य ग्रन्थ "संस्कृत-ड्रामा" लिखकर पाश्चात्य विद्वानों के नाटक सम्बन्धी मतमतान्तरों का समाहार प्रस्तुत करते हुए नाटकों के अध्येतागण छात्र-छात्राओं के लिए नवद्वार ही उद्घाटित कर दिया है। संस्कृत नाटकों के सम्बन्ध में डॉ0ए0बी0कीथ के विचारों का बहुत मूल्य है।

संस्कृत-नाटकों के अध्येता भारतीय विद्वान् डॉ0 भण्डारकर, डॉ0देवधर, डॉ0हीरानन्द शास्त्री, डॉ0पी0वी0 काणे, डॉ0कुन्हन राजा, डॉ0ए0डी0पुसालकर, आचार्य बल्देव उपाध्याय, डॉ0प्रभाकर शास्त्री, प्रो0 पं0 सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, और डॉ0कृष्णकान्त त्रिपाठी आदि प्राच्य-विद्या-विशारद हैं। इन सभी विद्वज्जनों ने भिन्न-भिन्न नाटकों की भिन्न-भिन्न समस्याओं और विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। जो सम्प्रति नाटकों के अध्येता और अनुसन्धित्सु छात्र-छात्राओं के लिए 'कुलवाग्द्वार' की तरह प्रतीत होते हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का शीर्षक " 'तापसवत्सराजम्' एवं 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटकों का तुलनात्मक नाट्यशास्त्रीय विवेचन" है। तापसवत्सराजम् एक ऐसा नाटक है जो चिरकाल तक दुष्प्राप्य रहा है। यद्यपि यह नाटक अपनी नाटकीय और साहित्यिक विशेषताओं के लिए हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' भोजदेव के 'सरस्वती-कंठाभरण' और 'श्रृंगार-प्रकाश' आचार्य आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक', अभिनवगुप्त के 'ध्वनिलोचन' राजशेखर

की 'काव्यमीमांसा' और कुन्तक के 'वक्रोक्ति-जीवितम्' जैसे मूर्धन्य काव्य - शास्त्रीय ग्रंथों में उदाहरण के रूप में उद्धरित होता रहा है । 20वीं० शताब्दी के प्रथम चरण तक इसकी कोई पाण्डुलिपि प्राप्त नहीं थी । सर्वप्रथम ढाका विवि० के संस्कृत-विभागाध्यक्ष, डॉ० सुशील कुमार डे ने कुन्तक के 'वक्रोक्ति जीवित' नामक ग्रन्थ का सम्पादन कार्य करते समय, इसकी भूमिका में 'तापसवत्सराजम्' नाटक की मूल प्रति के बर्लिन के एक विश्वविद्यालय में विद्यमान होने की बात का उल्लेख किया था । इस नाटक की पाण्डुलिपि की उपलब्धता का सर्वप्रथम गौरव प्रो० बुह्‌लर को है जिसे उन्होंने काश्मीर में प्राप्त किया था और बाद में उन्होंने इसे बर्लिन के एक पुस्तकालय में रख दिया था । संस्कृत साहित्य के प्रेमी श्रीयदुगिरि यतिराज सम्पत् कुमार, रामानुजमुनि, मालकोट मैसूर ने अपने अथक प्रयत्नों से इसकी एक फोटो कापी प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी । इस नाटक की यह प्रति शारदा-लिपि में थी । यह अत्याधिक जीर्ण-शीर्ण और अनेक स्थलों पर त्रुटिपूर्ण और अस्पष्ट थी किन्तु फिरभी यतिराज सम्पतकुमार जी ने 1929ई० में इसका मैसूर से सम्पादन और प्रकाशन किया था किन्तु फिरभी जिस किसी प्रकार प्राणधारण करने वाली यह सुन्दर नाट्यकृति आधुनिक आलोचकों और इतिहासकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी ।

पंजाब विश्वविद्यालय के प्रवक्ता-द्वय डॉ०देवीदत्त शर्मा और डॉ०चन्द्रदत्त उनियाल, इन दोनों विद्वानों ने इस नाटक का सुन्दर सम्पादन करते हुए हिन्दी अनुवाद और आवश्यक पादटिप्पणियों के साथ साहित्य भण्डार मेरठ से 1969 में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित किया था ।

यही प्रथम संस्करण इस शोध-प्रबन्ध के अध्ययन का विषयीभूत-ग्रन्थ है । इस नाटक की विषयवस्तु अति-प्राचीन किन्तु अत्यन्त चर्चित उदयन-वासवदत्ता की प्रणय-कथा है । इसी विषयवस्तु को लेकर इसके बहुत पूर्व कविवर भास ने अपने प्रख्यात नाटक स्वप्नवासवदत्तम् का प्रणयन किया था ।

'स्वप्नवासवदत्तम्' इस शोध-प्रबन्ध के अध्ययन का द्वितीय नाट्यग्रन्थ है । भास के नाटक जिसमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' भी सम्मिलित है, शताब्दियों तक अप्राप्य रहे हैं किन्तु कविकुल-गुरु-कालिदास के द्वारा 'मालविकाग्नि-मित्रम्' नाटक में कविवर भास की प्रशंसा करने और कविवर बाणभट्ट के द्वारा 'हर्ष-चरितम्' में सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले भास के नाटकों का यशोगान करने, कविशेखर राजशेखर के द्वारा आलोचना की अग्नि में 'स्वप्न-वासवदत्तम्' के 'अदग्ध' होने और 'प्रसन्नराघवम्' नाटक के प्रणेता कविवर जयदेव के द्वारा भास को कविताकामिनी का 'हास' बतलाने से भास के नाटकों की खोज का काम बड़ी तीव्रता के साथ प्रारंभ हो गया ।

खोज के परिणामस्वरूप 1909 में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री को कुमारी अन्तरीप से लगभग 20मील दूर 'पद्मनाभपुरम्' के समीप भास के नाटक प्राप्त हुए, जिसमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक की भी प्राप्ति हुई । डॉ0गणपति शास्त्री ने बाद में इनका प्रकाशन करवाया और भास के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपने विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे ।

इधर, 'तापसवत्सराजम्' नाटक का प्रथम संस्करण 1969 में प्रकाशित हुआ था । इसलिए आज भी विद्वान् इस नाटक की गरिमा

से अभी तक अत्यधिक सुपरिचित नहीं हो पाये थे । 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'तापसवत्सराजम्' में न केवल कथावस्तु की दृष्टि से प्रत्युत अनेक नाट्य - शास्त्रीय दृष्टियों से साम्य और वैषम्य विद्यमान है । उन दोनों नाट्य-कृतियों का नाट्यशास्त्रीय और तुलनात्मक विवेचन अद्यावधि नहीं हो सका था, क्योंकि तापसवत्सराजम् बहुत समय से अप्राप्य रहा है । इन दोनों प्रख्यात नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से नाट्यशास्त्र की विभिन्न विशेषताओं के प्रस्फुटित होने की संभावना है । इसके अतिरिक्त इन दोनों नाटकों की काव्यात्मक और साहित्यिक गरिमा भी सराहनीय है । उपर्युक्त नाटक-द्वय के तुलनात्मक अध्ययन से इस विषय में विस्तृत शोधात्मक सामग्री प्रस्तुत करने का मेरा संकल्प रहा है, जिससे इस प्रकार के अन्य नाट्यग्रन्थों के नव्य अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होने की मुझे आशा है, और इसलिए इस क्षेत्र के शोधार्थीगण के लिए इसकी उपादेयता सम्भावित है । यही इस शोध-प्रबन्ध का प्रयोजन भी है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध नव अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय की विषयवस्तु परिचयात्मक और भूमिकात्मक है, इसके अन्तर्गत वत्सराज उदयन पर आधारित नाटकों का सामान्य परिचय, उदयन कथा का मूल स्रोत उदयन की लोकप्रियता, मेघदूत में कालिदास द्वारा उदयन कथा की प्रसिद्धि का संकेत, शूद्रक-प्रणीत 'मृच्छकटिकम्' नाटक में उदयन का यौगन्धरायण के साथ उल्लेख, उदयन और वासवदत्ता की प्रणयकथा पर आधारित अनेक नाट्य-ग्रन्थ, उदयन कथा द्वारा भारतीय रंगमंच को प्राणदान और सर्वोपरि 'स्वप्नवासव - दत्तम्', 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम्' तथा 'तापसवत्सराजम्' नाटकों की नाट्य-

शास्त्रीय विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रणेता कविवर भास के सम्बन्ध में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । भास के नाटक-चक्र में तेरह नाटकों का संग्रह है जिसमें दूतवाक्यम्, कर्णभारम्, दूतघटोत्कचम्, उरु-भंगम्, मध्यमव्यायोग, पांचरात्रम्, अभिषेक-नाटकम्, प्रतिमानाटकम्, प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम्, अविमारकम् और चारुदत्तम् इत्यादि नाटकों को संगृहीत किया गया है । इसी अध्याय में भास का जीवन, भास की धार्मिक प्रवृत्ति, भास का ज्ञान आदि विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । इसके अनन्तर यह बतलाया गया है कि भास का सम्भावित रचनाकाल चतुर्थ या पंचम शताब्दी ई0पूर्व हो सकता है । इसी के तारतम्य में भास के व्यक्तित्व और कृतित्व भी अनुशीलन परिशीलन किया गया है । महान् नाटककार भास की शैली, व्यंजकता, नाट्यकौशल और उनकी अभिनेयता पर यही प्रकाश डाला गया है ।

इस अध्याय के दूसरे चरण में 'तापसवत्सराजम्' नाटक के प्रणेता अनंग-हर्ष मातृराज के परिचय और उनके वैदुष्य पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । इस कवि के कवित्व के परिचय के सम्बन्ध में परवर्ती, काव्यशास्त्रियों द्वारा उनके नाटक के पद्यों के अपने-अपने ग्रन्थों में उद्धरण की चर्चा की गई है । इस कवि के रचनाकाल के सम्बन्ध में यही यह बतलाया गया है कि यह नाटककार अष्टम शताब्दी ई0 में सम्भवतः विद्यमान थे । इस नाटक की खोज की कथा को भी इसी अध्याय में बतलाने का प्रयत्न किया गया है ।

तृतीय अध्याय में दोनों ही नाटकों की विषय-वस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इसकी आदिकालिक कथावस्तु वासवदत्ता उदयनप्रणय-कथा है । इसी अध्याय में दोनों ही नाटकों में महामन्त्री यौगन्धरायण की भिन्न-भिन्न योजनाओं के अनुसार कथावस्तु का पल्लवन कियागया है और कथावस्तु की दृष्टि से दोनों नाटकों की समीक्षा प्रस्तुत की गई है ।

शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में दोनों ही नाटकों के पात्रों का तुलनात्मक चरित्र-चित्रण किया गया है । नायक के भेद, नायक की प्रकृति, नायक के सहायक, नायिका के भेद और प्रकृति आदि का तुलनात्मक विश्लेषण भी कियागया है । इसमें उदयन, यौगन्धरायण और विदूषक, वासवदत्ता और पद्मावती के तुलनात्मक चरित्र-चित्रण की एक संक्षिप्त झांकी यहाँ प्रस्तुत की गई है ।

पंचम अध्याय में दोनों ही नाटकों में संवाद योजना, संवादों की भाषा, पात्रों का उच्चारण, संस्कृत और प्राकृत पाठ्य, संवादों में औचित्य आदि का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में दोनों ही नाटकों में रस-निष्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है । तदनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भाव की चर्चा की गई है । स्वप्नवासवदत्तम् में कविवर भास ने विप्रलम्भ शृंगार का चित्रण किया है तो तापसवत्सराजम् मेंकविवर अनंग हर्ष ने करुण रस का वर्णन किया है ।

सप्तम अध्याय में दोनों ही नाटकों की भाषा – शैली और कला पक्ष के सम्बन्ध में आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। भास की शैली जहाँ प्रसाद और माधुर्य गुण से मंडित है, वहीं उनके नाटक में अलंकारों का भी स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। दूसरी ओर तापसवत्सराजम् के कवि के कवित्व और वैदुष्य का परिचय दिया गया है। उनके नाटक में अलंकारों के बलात प्रयोग और लम्बे-लम्बे समास वाले वाक्यों के प्रयोग से अभिनेयता की न्यूनता पर भी प्रकाश डाला गया है।

अष्टम अध्याय में प्रेक्षागृह और रंगमंच सम्बन्धी विचार नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रस्तुत किए गए हैं और प्रेक्षागृह के नाट्यशास्त्रानुसार भेदों पर भी प्रकाश डाला गया है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के नियमानुसार रंगमंच पर क्रियमाणकर्तव्य की चर्चा की गई है। यहाँ स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् के अध्ययन से तत्कालीन प्रेक्षागृह का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया गया है और अभिनय के प्रकारों की दृष्टिसे परस्पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

नवम् अध्याय में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि अभिनय की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्तम् नाटक तापसवत्सराजम् नाटक की अपेक्षा श्रेष्ठतर है किन्तु काव्यात्मकता की दृष्टि से तापसवत्सराजम् भी कुछ कम महत्त्व का नहीं है। अन्त में, यह भी बतलाया गया है कि वस्तुतः दोनों ही नाटक – चतुर्वर्ग-फल-प्राप्ति के हेतु होने के साथ-साथ आनन्द निष्यन्दी हैं। सौभाग्य से रंग-कर्मियों और कलाकारों की ये दोनों प्राचीन सांस्कृतिक और साहित्यिक

धरोहरें काल के गर्भ में विलुप्त होने से आज भी हमें सुरक्षित रूप में उपलब्ध हो गई हैं। इन दोनों नाट्यकृतियों का तुलनात्मक अनुशीलन सचमुच सद्यः परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला है।

पं०जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ०हरिशंकर शुक्लका मै हृदय से आभार स्वीकार करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य के लिए महाविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्त दुर्लभ ग्रन्थों, शोध-पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने का शुभ-अवसर प्रदान किया है।

मै अपने आदरणीय पिताश्री डॉ०गिरजाशंकर शर्मा एवं अपने स्नेहीबन्धुओं, अपनी माताश्री श्रीमती देवकी देवी तथा डॉ०सन्तोष कुमार शर्मा, श्री दिनेश कुमार शर्मा, शैलेन्द्र कुमार शर्मा एवं शेखर शर्मा आदि सभी के प्रति मै अपनी विनम्रता एवं स्नेह ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस शोध प्रबन्ध को पुरा करने के लिए अपनी प्रेरणा प्रदान कर शुभाशीर्वाद और शुभकामनाएँ दी हैं।

मै अपने आदरणीय जीजाजी श्री लक्ष्मीनारायण जी आयकर निरीक्षक एवं आदरणीया दीदी जी श्रीमती राधा देवी के प्रति भी अपना आभार ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने भी मुझे शोध के लिए अपनी प्रेरणा एवं आशीर्वाद दिया है।

सचमुच, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है और उनसे जो मै पार लग सकी हूँ, इसे मै अपने स्वजनों, गुरुजनों, शुभचिन्तकों और विज्जनों के आशीर्वाद और शुभकामना का ही परिणाम समझती हूँ।

इस प्रबन्ध को पूर्ण करने में पूर्व के अनेक विद्वानों के ग्रन्थों, लेखों, चिन्तनों और शोध-पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली गई है । उन सभी विद्वानों के प्रति मै अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के टंकक श्री राकेश कुमार अग्रवाल भी धन्यवाद के पात्र हैं जो संस्कृत भाषा के ज्ञाता न होते हुए भी संस्कृत श्लोकों के उद्धरणों का टंकण यथा-विधि शुद्धता और द्रुततर-गति से पूरा किया है । फिरभी वर्ग के पंचम अक्षरों और संयुक्ताक्षरों के टंकण यन्त्र में न होने के कारण पर सवर्ण-सन्धि, संयुक्ताक्षर और अन्य त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थिनी हूँ ।

अन्त में, विद्या की परमदेवता सरस्वती जी का स्मरण कर मैं आत्मिक सुख का अनुभव कर रही हूँ -

"कस्यचिदेव कदाचिद्दयया विषयं सरस्वती विदुषः ।
घटयति कमपि तमन्यो व्रजति जनो येन वैदग्धीम् ॥"

विदुषी वशंवदा

कु० पुष्पलता

संस्कृत-विभाग,
पं०जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय
बाँदा, उ०प्र०
21.12.1996

कु० पुष्पलता
द्वारा-डॉ०गिरिजाशंकर शर्मा
शास्त्रीनगर, बाँदा {उ०प्र०}

विषयानुक्रम

वि ष या नु क्र म

अध्याय	विषय	पृष्ठसंख्या

प्र थ म - अ ध्या य

विषय-प्रवेश

भूमिका

प्र थ म - अ ध्या य

भू मि का

काव्य भेदों में नाटक :

काव्य की अनेक विधाओं में नाटकों का महत्व सर्वोपरि है। सुधी समीक्षकों का कथन है कि काव्य के अन्य भेदों में नाटक अत्यन्त रमणीय होता है।[1] वैसे यह निर्विवाद है कि काव्य क्षितिज में नाटक सदैव प्रतिष्ठित रहे हैं। इसका सीधा और साधारण कारण यही प्रतीत होता है कि काव्यानन्द से वंचित रहने वाले कोमल बुद्धि वाले साधारण जन भी नाटक का मनोहर अभिनय देखकर असीम और अलौकिक आनन्द की अनुभूति कर लेते हैं। जहाँ एक ओर काव्य के अन्य भेद श्रवण मार्ग से सहृदयों के हृदयों को आकर्षित करते हैं और प्रभावित करते हैं तो वहीं दूसरी ओर दृश्य काव्य अथवा नाटक नेत्रमार्ग से आशुतर गति से हृदयदेश को चमत्कृत कर आनन्दरस की सृष्टि करता है। यह सर्वमान्य सत्य है कि किसी वस्तु को देखने का आनन्द उसके सुनने की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रतर होता है और दूसरी बात यह भी है कि काव्य का रसास्वादन सहृदय ही कर सकते हैं, किन्तु नाटकों में प्रस्तूयमान अभिनयादि में रसोपभोग की सम्पूर्ण सामग्री नेपथ्य विन्यास, वेशरचना औरनाना प्रकार के संविधानकों के द्वारा मंच पर ही उपस्थित कर दी जाती है। इस प्रकार नाटकों में रसानुभूति के लिए वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है। यही कारण है कि साधारण

---

1. काव्येषु नाटकं रम्यम्। रूपक - भूमिका, पृ0 2। डॉ0भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा संस्करण 1967.

व्यक्तियों के लिए भी काव्य की अपेक्षा नाटक का आकर्षण विशेष प्रभावशाली होता है । इसलिए नाटक को कवित्व को चरमसीमा माना जाता है ।[1]

नाटक एक ओर सार्वजनिक मनोरंजन का हेतु है तो दूसरी ओर इसकी विषय-वस्तु तीनों लोकों के भावों का सांगोपांग निरूपण करने वाली है । काव्य की अन्य विधाओं की भाँति नाटकों का प्रयोजन न केवल चतुर्वर्ग फलप्राप्ति है ।[2] प्रत्युत बहुआयामी है । यह शक्तिहीनों के हृदय में शक्ति का संचार करता है, शूरवीरों के हृदय में उत्साह की वृद्धि करता है, अज्ञानियों को ज्ञानी बनाता है और सकल जन मनोरंजन करने के साथ-साथ दुःखविश्राम का विधाता है । सर्वोपरि रूपक आनन्द की वर्षा करने वाले हैं, केवल व्युत्पत्ति मात्र ही इसका प्रयोजन नहीं है ।[3]

नाटक एक प्रकार से लोकवृत्त का अथवा उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का अनुकरण ही है ।[4] दृश्य होने के कारण इसे "रूप" कहा जाता है और नट आदि में रामादि अवस्था का आरोप होने के कारण "रूपक" आदि अभिधानों से भी यह विश्वविश्रुत है । इस विशाल विश्वपटल में सुख दुःख की जो प्रवृत्तियाँ अपना खेल दिखाया करती हैं और मानव जीवन को सुखमय अथवा दुखमय बनाया करती हैं,उन सबका चित्रण नाटक में किया जाता है । इसीलिए नाट्यशास्त्र के प्रणेता मुनिवर भरत का कथन है कि

---

1. नाटकान्तम् कवित्वम्, संस्कृत साहित्य का इतिहास : उपाध्याय, पृ0 478.
2. चतुर्वर्ग-फल-प्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निगद्यते ॥"मोतीलाल बनारसीदास -1961,पृ0 1·2,पृष्ठ-7 साहित्यदर्पण
3. आनन्द निष्यन्दिषु रूपकेषु । व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः ॥ दशरूपकम् । चौखम्बा 1961,पृ0 3
4. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् । दशरूपकम् 1·7 पृ0 4

कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो नाटकों में दिखाई न देता हो ।[1] फलतः कविवर कालिदास का यह कथन इस सन्दर्भ में नितान्त सत्य और प्रासंगिक है कि भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगों के लिए नाटक सर्वसाधारण और सर्वसामान्य मनोरंजन का साधन है ।[2] इसके अतिरिक्त आनन्द के साथ चरित्र को उदार बनाना, जीवन स्तर का उदात्तीकरण और आदर्श विधान नाटक के कतिपय अन्य महत्वपूर्ण प्रयोजन है ।

नाट्य शास्त्रियों ने रसों पर आश्रित रूपकों का विभाजन दश प्रकार से किया है, तदनुसार रूपक दश प्रकार के हैं -

(1) नाटक, (2) प्रकरण, (3) भाण, (4) प्रहसन, (5) डिम, (6) व्यायोग, (7) समवकार, (8) वीथि, (9) अंक, (10) ईहामृग ।[3]

यद्यपि इन सभी रूपकों में अनुकरण की प्रधानता है किन्तु कथावस्तु, रस और नायक के भेद से इनके दश भेद नाट्य-शास्त्रियों ने स्वीकार किए हैं।

कथावस्तु मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है, प्रथम आधिकारिक कथावस्तु अथवा मुख्य कथावस्तु द्वितीय प्रासंगिक कथावस्तु । नाट्यशास्त्रियों ने रूपक के इतिवृत्तको पाँच अर्थ-प्रकृतियों पाँच अवस्थाओं और पाँच सन्धियों में विभाजित किया है । नाटक की पाँच अर्थ प्रकृतियाँ निम्नवत हैं -

(1) बीज, (2) बिन्दु, (3) पताका, (4) प्रकरी, (5) कार्य ।[4] इसी प्रकार

---

1. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं, न साविद्या न सा कला,
   न स योगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन्यन्न दृश्यते ॥ नाट्यशास्त्र 1.11
2. नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य, बहुधाप्येकं समाराधनम् ॥ मालविकाग्निमित्रम् 1.4, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1965 पृ० 14
3. दशैव रसाश्रयम्, दशरूपकम् 1.7, पृ० 04.
4. दशरूपक 1.18, चौखम्बा प्रकाशन 1967 संस्करण, पृ० 14.

नाटक की पाँच अवस्थाएँ भी होती हैं जो क्रमशः निम्न प्रकार से हैं -
§1§ आरम्भ, §2§ यत्न, §3§ प्राप्त्याशा, §4§ नियताप्ति, §5§ फलागम।[1]
पाँच अर्थप्रकृतियों और पाँच अवस्थाओं को मिलाकर नाटक की पाँच सन्धियाँ होती है जो क्रमशः निम्नवत् हैं -
§1§ मुख, §2§ प्रतिमुख, §3§ गर्भ, §4§ विमर्श, §5§ उपसंहृति ।

नाटक की उक्त पाँच संधियों का विभाजन 64 सन्ध्यङ्गों में किया गया है । सन्ध्यङ्गों के इस विशाल विभाग को कुछ विद्वान् जटिल और अनावश्यक मानते हैं ।[2] डॉ0ए0बी0कीथ के अनुसार नाटकीय इतिवृत्त का यह विभाजन कोई वास्तविक मूल्य नहीं रखता है ।[3] इसी प्रकार नाटकों में कुछ कथासूत्र होते हैं जिन्हें अर्थोपक्षेपक कहा जाता है । ये पाँच प्रकार के होते हैं । §1§ विष्कम्भक, §2§ प्रवेशक, §3§ चूलिका, §4§ अंकास्य, §5§ अंकावतार । इसी प्रकार भावी वस्तु या घटना की सूचना देने के लिए नाटककार 'पताका-स्थान' का भी प्रयोग करता है । पताका-स्थानक दो प्रकार का होता है - §1§ अन्योक्तिरूप, §2§ समासोक्ति-रूप । किन्तु सभी नाटकों में यह आवश्यक नहीं है ।

रूपकों का दूसरा भेदक तत्व नेता अर्थात् नायक होता है। नायक के साथ नायक का सम्पूर्ण परिवार आ जाता है । नायिका, नायक के साथी, नायिका की सखियाँ प्रतिनायक और उसके साथी सभी नेता के

---

1. दशरूपक 1·19, चौखम्बा प्रकाशन 1967 संस्करण, पृ0 13.
2. डॉ0भोलाशंकर व्यास दशरूपक, भूमिका, पृष्ठ-41, चौ0संस्करण 1967
3. ए0बी0कीथ : संस्कृत ड्रामा, पृ0 211.

अंग माने जाते हैं । नाटक की कथावस्तु का नायक वही बन सकता है, जिसमें विनीतत्वादि अनेक गुण विद्यमान होते हैं । नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, दक्ष प्रियंवद, लोकप्रिय, शुचि, वाग्मीकुलीन, स्थिर और युवावस्थावाला होता है, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त होता है । वह शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है ।[1]

संस्कृत नाटकों में नायक चार प्रकार के प्राप्त होते हैं - §1§ धीर-ललित, §2§ धीरशान्त, §3§ धीरोदात्त, §4§ धीरोद्धत । धीरललित नायक सर्वथा निश्चिन्त रहता है, वह कोमल स्वभाव का सुखी तथा ललितकलाओं से प्रेम करने वाला होता है ।[2] धीरोदात्त नायक महासत्व, अत्यन्त गंभीर, क्षमाशील, अविकत्थन, स्थिर, निगूढ़ अहंकारवाला और दृढ़व्रती होता है ।[3] धीरोद्धत नायक दर्प मात्सर्य से युक्त कपटी और मायावी, अभिमानी, चंचल, क्रोधी और आत्मश्लाघी होता है ।[4] दूसरी ओर धीर, प्रशान्त नायक सामान्य गुणों से युक्त होता है । विदूषकादि नायक के सहायक होते हैं ।

संस्कृत-नाटकों में नायिका भी नायक के समान गुणों से युक्त होती है । वह तीन प्रकार की होती है - §1§ स्वकीया, §2§ परकीया, तथा §3§ साधारण स्त्री ।[5] नायिकाओं की परिचारिकायें और सखियाँ भी

---

1. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
   रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशो स्थिरोयुवा ॥
   बुद्ध्युत्साह-स्मृतिप्रज्ञाकलामान समन्वितः ।
   शूरो दृढश्चतेजस्वी शास्त्र-चक्षुश्च धार्मिकः ॥दशरूपक 2·1, पृ0 75
2. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः । वही, 2·3, पृ0 79
3. महासत्वोऽति गंभीरः क्षमावानविकत्थनः। स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥ दशरूपक 2·4, पृ0 83
4. दशरूपक 2·5
5. स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा ।
   दशरूपक 2·15

होती हैं जो नायिका की सहायिकायें होती हैं ।

इस नाटक का तीसरा और महत्वपूर्ण भेदक तत्व होता है। रस नव माने जाते हैं-किन्तु संस्कृत नाटकों में श्रृंगार रस अथवा वीररस में से कोई एक रस ही प्रधान होता है - अन्य रस गौण होते हैं।[1] किन्तु भवभूति काव्य शास्त्र की इस अवधारणा की आलोचना करते हुए करूण रस की स्थापना करते हैं ।[2] कुछ भी हो नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत मुनि के अनुसार दृश्य-श्रव्य रूप नाटक को मृदुकान्त-पदावली वाला, गूढ़ शब्दार्थ से रहित, सर्वजन सुखबोध्य, युक्तियुक्त, नृत्यादि ललित कलाओं से युक्त, बहुतर रस मार्ग वाला, नाट्य-सन्धियों के सन्धान से संवलित और प्रेक्षकों के लिए शुभकाव्य होता है । यही नाटक का आदर्श स्वरूप है । मुनिवर भरतके अनुसार नाटक अधर्म में प्रवृत्त लोगों के लिए धर्म का उपदेश देता है, कामोपजीवी लोगों के लिए काम का, दुर्विनीतों के लिए विनय का, क्लीबों के लिए धृष्टता का, शूर और मानियों के लिए उत्साह का, मूर्खों को ज्ञान का, विद्वानों को वैदुष्य का उपदेश देता है । वही नाटक दुखी, थके-हारे, शोकाकुल और तपस्वियों के लिए यथासमय विश्राम को देने वाला होता है।[3]

इसके अतिरिक्त नाट्य सार्ववर्णिक वेद है, जहाँ एक ओर अन्य वेद केवल द्विज मात्र के लिए उपयोगी तथा उपादेय होते हैं, वहीं नाट्य वेद का उपयोग सभी वर्णों के लिए है ।[4] प्रत्येक व्यक्ति इस आनन्द

---

1. एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा ।
   अंगमन्ये रसा: सर्वे ।। दशरूपक 3·33, पृ0 86
2. एको रस: करूण एव । उत्तरराम चरितम् 3·47
3. दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
   विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ।। नाट्यशास्त्र 1·110
4. वेदोपवेदात्मा सार्ववर्णिक: पंचमो नाट्य वेद: ।
   काव्यमीमांसा, चौखम्बा प्रकाशन 1934, पृ0 15.

का अधिकारी और पात्र है । कविकुल-गुरु-कालिदास का कथन है कि मुनिलोग देवताओं के लिए इसे शान्त चाक्षुष यज्ञ मानते हैं । शिवजी ने उमा के द्वारा संयुक्त अपने अंग में इसे दो प्रकार से विभक्त किया था, जिसके अनुसार इसमें इनके द्वारा ताण्डव और लास्य का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार नाटक में तीनों गुणों से उसका नाना रसात्मक लोकचरित का दर्शन होता है, जगत् के प्राणी भिन्न रुचि वाले अवश्य होते हैं, परन्तु नाट्य उनका नाना प्रकार से एक अद्वितीय आवर्जन का प्रकार है ।[1] किंच, नाटक की विषयवस्तु असीमित है, इसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन होता है । फलत: नाटक लोकवृत्त का अनुकरण है ।[2]

संस्कृत के दो प्रसिद्ध नाटकों स्वप्नवासवदत्तम् एवं तापस-वत्सराजम् के तुलनात्मक अध्ययन में उपर्युक्त नाट्य सामग्री के परिप्रेक्ष्य में शोधात्मक परिशीलन प्रस्तुत करना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है । भारतीय

भारतीय साहित्य में उदयन-कथा :

भारतीय साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले तीन अमर ग्रन्थ रत्न माने जाते हैं -{1} रामायण, {2} महाभारत और बृहत्कथा । यह कहना संशय से परे है कि उक्त तीनों ग्रन्थों ने सहस्रों वर्षों से देश के साहित्यकारों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों को निरन्तर प्रेरणा प्रदान की है । इसीलिए ये तीनों ग्रन्थ भारतीय साहित्य के लिए उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में महिमामण्डित हैं ।

---

1. देवानाम् इदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्, रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा । त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते, नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।।
मालविकाग्निमित्रम् 1·4, चौखम्भा प्रकाशन 1965, पृ0 14.
2. नाट्यशास्त्र 1·104 एवं 1·109

उदयनकथा का मूलस्रोत :

उदयन कथा का मूल स्रोत गुणाढ्यकृत वृहत् कथा प्रतीत होती है । यह दुर्भाग्य की बात है कि वृहत्कथा आज उपलब्ध नहीं है । वह कालकवलित हो गई है । आज वह देश और विदेश के किसी पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं है, फिरभी कालकवलित होने के पूर्व ही इस देश के साहित्य को उसने इतना कुछ दे दिया है और प्रभावित कर दिया है कि इसका मूल कलेवर काल के गाल में समा जाने पर भी उसकी आत्मा और उसकी प्रेरणा आज भी सर्वथा अक्षुण्ण बनी हुई है । सम्प्रति उदयन का आख्यान कथासरित्सागर और वृहत्कथा मंजरी दोनों में समान रूप से पाया जाता है ।[1] जिनसे विलुप्त वृहत्कथा में वर्णित उदयनकथा के स्थूल रूप का आभास प्रतीयमान है।

गुणाढ्यकृत वृहत्कथा के अन्य अनेक अमूल्य योगदानों में से अन्यतम और विशिष्टतम योगदान है - भारतीय साहित्य के लिए उदयनकथावस्तु की अमर देन । वृहत्कथा यद्यपि अनेक मधुर और अमर कथाओं का अक्षय निधि है किन्तु उसमें वर्णित उदयन कथा की मधुरता और लालित्य अनिर्वचनीय रही है । रामकथा और कृष्णकथा के पश्चात् यदि किसी अन्य कथा ने भारतीय कवियों, रसिकों, सहृदयों और साधारण जनमन को उद्वेलित किया है, सरस और धन्य बनाया है, हृदयतन्त्री के तारों को झंकृत किया है तो वह वत्सराज उदयन की ललितकथा ही है । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में उदयन कथा की मधुरता के गीतों की मंजुमनोहर ध्वनि का गुंजन श्रवणगोचर हो रहा है ।

---

1. कथा सरित् सागर तरंग ,9.16 वृहत्कथामंजरी लम्बक 2.3

उदयन-कथा का विस्तार :

पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तक के साहित्य में उदयन-कथा-वस्तु का उल्लेख निरवच्छिन्न रूप से अधिगत होता है। कहना न होगा कि काव्य, कथा, नाटक-नाटिका, आख्यान-आख्यायिका पुराण धर्मग्रन्थ आदि काव्य की कोई ऐसी विधा दृष्टिगोचर नहीं होती जिसमें उदयन कथा को स्थान न मिला हो।

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि कविवर भास ने सर्वप्रथम उदयन कथा वस्तु को अपने दो प्रसिद्ध नाटकों का आधार बनाया है. इन दोनों नाटकों के नाम हैं -

(1) स्वप्नवासवदत्तम्[1] और

(2) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्[2]।

ऐसा प्रतीत होता है कि एक ललित नाट्य रचना के लिए वे सभी तत्व और गुण उदयन कथा में विद्यमान हैं जो गुण एक सफल नाटक के लिए अपेक्षित होते हैं। लालित्य और अभिनेयता, रस संचार और सहृदयग्राह्यता इसमें रामकथा तथा कृष्ण-कथा से किंचित् भी न्यून नहीं है। तभी तो "उदयन-कथा" की लोकप्रियता से प्रभावित होकर कविकुल-गुरु कालिदास ने अपनी विश्वविश्रुत-काव्यकृति मेघदूतम् में अवन्ती नगरी में उदयन-कथा के मधुर रस में डूबते उतराते ग्राम वृद्धों का उल्लेख करना नहीं भूलते।[3] कवि कुल गुरु के इस उल्लेख से यह ध्वनित होता है कि उस समय

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, प्रकाशक-रामनारायणलाल बेनी माधव, इलाहाबाद-1963
2. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, इण्डिया बुक हाउस, जयपुर-1981.
3. प्राप्यावन्तीनुदयन-कथा-कोविदग्राम-वृद्धान्। मेघदूतम्, पूर्वमेघ श्लोक संख्या 1-30.

यह कथा लोकप्रियता की उच्चता का संस्पर्श कर चुकी थी और यह भी कि तत्कालीन सामाजिक जन इसे बड़े चाव से सुनते सुनाते थे तथा अपना मनोरंजन करते थे । यहां यह स्मरणीय है कि कवि-चक्र-चूड़ामणि कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ईसा की चतुर्थ शताब्दी गुप्तकाल तक दोलायमान है ।[1] कालिदासकालीन समाज परिष्कृत रसिक ,अनुरागी,ललितकलाप्रेमी और संस्कार-सम्पन्न था । ऐसे समाज में रसवर्षिणी उदयन-कथा का प्रचार इसके ललित और मधुर भावों का ही पोषक है।

इधर सप्तम शताब्दी ई0 में सम्राट् हर्षवर्धन भी अपनी प्रसिद्ध नाटिका 'रत्नावली' में उदयन-चरित के अत्यधिक लोकप्रिय होने का डिण्डिम घोष करते हैं ।[2] यह स्मरणीय है कि सम्राट् हर्षवर्धन ने भी उदयन-कथा का आधार बनाकर 'रत्नावली' नाम की अपनी प्रसिद्ध नाटिका का गुम्फन किया है ।

यदि इनसे पूर्व के साहित्य का अनुशीलन परिशीलन किया जाय तो प्रथम शताब्दी ई0पू0 के समय में भी उदयन कथा चर्चित और अभिनन्दित रही है ; उदाहरण के लिए कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में बड़े आदर के साथ वत्सराज उदयन का उल्लेख करते हैं ।[3]

इसी सन्दर्भ में प्रसिद्ध नाटककार शूद्रक का नाम भी उल्लेखनीय है । इन्होंने अपने प्रख्यात नाटक मृच्छकटिकम् में उदयन कथा का

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय,शारदा मन्दिर, 1960,पृ0 179.
2. लोकेहारि च वत्सराज-चरितम् -हर्षवर्धन, रत्नावली 1•5.
3. दृष्टा हि जीवत: पुनरावृत्तिर्यथा सुयात्रोदयनाभ्याम् । कौटिल्य - अर्थशास्त्र, पृ0 30.

उपमान के रूप में उल्लेख किया है, तदनुसार मृच्छकटिकम् नाटक का पात्र शर्विलक अपने प्रियमित्र आर्यक को राजकारागार से छुड़ाने के लिए कहता है कि राजा उदयन को छुड़ाने के लिए महामंत्री यौगन्धरायण की तरह मैं अपने मित्र आर्यक को बन्दीगृह से छुड़ाने के लिए अपने स्वजातीय जनों, विटों, यश चाहने वाले और राजा से तिरस्कृत राजपुरुषों को उत्तेजित करता हूँ।[1]

इसी प्रकार पाली साहित्य और जैन साहित्य में भी उदयन कथा की चर्चा प्राप्त होती है ; जिससे इसकी निरवच्छिन्न लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है । 'धम्म-पद' और 'मज्झिम निकाय' की टीकाओं में उदयन कथा का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है । तदनुसार उदयन द्वारा गजमोहिनी वीणा की प्राप्ति, प्रद्योत द्वारा उदयन को कारावास में रखना, उदयन और वासवदत्ता का परस्पर प्रणय, भद्रावती नाम की हथिनी पर बैठकर दोनों का पलायन इत्यादि प्रमुख घटनायें इन बौद्ध ग्रन्थों में सविस्तर वर्णित हैं ।[2] इसी प्रकार जैन साहित्य के अन्तर्गत हेमचन्द्रकृत 'त्रिषष्ठि-शलाकापुरुष चरितम्' सोमप्रभकृत 'कुमारपाल प्रतिबोध' एवं मालधारी देवपाल कृत 'मृगावती चरित' आदि ग्रन्थों में उदयन-वासवदत्ता-प्रणयकथा के सन्दर्भ में इस कथा की लोकप्रियता का संकेत करते प्रतीत होते हैं ।

काश्मीरी पंडितों द्वारा विरचित वृहत्कथा के संक्षिप्त संस्करणों में तो इस कथा का प्रचुरता के साथ उल्लेख प्राप्त होता है - 'सोमदेव कृत' कथा- सरित्सागर' कविवर क्षेमेन्द्र विरचित 'वृहत्कथामंजरी'

---

1. ज्ञातीन् विटान्स्वभुजविक्रम-लब्ध-वर्णान् राजापमानकुपितांश्च नरेन्द्र भृत्यान् । उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः ॥ मृच्छकटिकम् 4·26
2. धम्मपद-टीका पृष्ठ 50, मज्झिमनिकाय टीका, पृ० 26

बुद्ध स्वामी कृत "बृहत्कथाश्लोक-संग्रह" उदयन-कथा की निरन्तर लोकप्रियता के प्रमाण हैं । संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि "भवभूति" अपने नाटक "मालतीमाधव" में उदयन-वासवदत्ता-कथा का बहुसम्मानपूर्वक उल्लेख करते हैं ।[1]

इस अमरकथा को आधार बनाकर स्वतन्त्र रूप से विरचित नाट्य-कृतियाँ कुछ कम नहीं हैं । कविवर भास प्रणीत दो नाटक 'स्वप्न वासवदत्तम्' और प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम्, अनंगहर्षमात्रराजप्रणीत "तापसवत्सराजम्' कवि सम्राट् हर्ष-विरचित 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' इस अमर प्रणयकथा की लोकप्रियता के कालजयी निदर्शन हैं । इस कथा से सम्बन्धित अन्य कृतियाँ यथा 'वीणावासवदत्ता' 'उन्मादवासवदत्ता' 'वासवदत्ता नाट्य धारा' आदि तत्तद् ग्रन्थों में उल्लिखित हैं किन्तु सम्प्रति अप्राप्त हैं । इसी प्रकार इस विपुल कालावधि में इस कालजयी कथा से सम्बन्धित अन्य अनेक कृतियाँ अवश्य विद्यमान रही होंगी जो अब सम्भवतः कालकवलित हो गयी हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रथम शताब्दी से लेकर लगभग 12वीं शताब्दी तक भारतीय रंगमंच एवं साहित्य के विविध अंगों में एक सहस्रवर्षपर्यन्त उदयन-वासवदत्ता-प्रणयकथा जीवन-रस-संचारिणी बनी रही है। ऐसा सम्भवतः कोई कवि, कलाकार और अनुरागी व्यक्ति दिखाई नहीं देता जो इस कथा के मादक प्रेम से प्रभावित और पराभूत न हुआ हो । प्राप्य की यह अमरकथा शताब्दियों तक न केवल विदग्धों के मुखों में पदन्यास करती रही है, प्रत्युत सहृदयों और रसिक ग्राम-वृद्धों को अपने मधुर, रोमाण्टिक चमत्कार और आनन्द की अक्षय रसधार से सराबोर करती रही है।[2]

---

1. भवभूति 'मालती माधव' तापस वत्सराजम्, साहित्य भण्डार, मेरठ-1969 पृष्ठ-3
2. प्राप्यावन्तीनुदयन-कथाकोविद-ग्रामवृद्धान्; पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्री विशालां विशालाम् ,मेघदूतम्, 1.30.

त्रिविध कथास्रोत :

भारतीय साहित्य का अनुशीलन, परशीलन करने के पश्चात् यह विदित होता है कि भारतीय साहित्यिक कृतियों का आधार बनने वाली तीन कथावस्तु में मुख्यतया रही हैं : प्रथम रामकथा, दूसरी कृष्ण-कथा और तीसरी उदयन-कथा । यह स्मरणीय है कि श्री रामकथा और श्रीकृष्ण कथा-वस्तु में आदर्शवाद और धर्म-सापेक्षता थी, दोनों में ईश्वरत्व का बोध अन्त-र्निहित था, इसीलिए श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम और अन्ततः विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हुए थे[1] और श्रीकृष्ण लीलाधर, मुरलीधर तथा षोडश-कलावतारी साक्षात् ईश्वर के रूप में लोकवन्दित रहे हैं ।[2] स्पष्टतः इन दोनों कथाओं में आदर्शवादी धार्मिक विचारधारा प्रखरता से प्रवाहित हुई है।

किन्तु भारतीय साहित्य में विशुद्ध कलावादी और धर्म-निरपेक्ष विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख कथा उदयनवासव-दत्ता प्रणय-कथा ही रही है । संस्कृत में रोमांटिक काव्यवादी धारा का प्रतिनिधित्व वत्सराज उदयन कथा ने ही किया था । प्रारम्भकाल से ही संस्कृत नाटकों में नायक के धीर ललित रूप का दर्शन हमें वत्सराज उदयन में होता है । कहना न होगा कि ललित-कला-विस्तार और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति जितनी वत्सराज और वासवदत्ता प्रणय-प्रसंग में हुई है, उतनी सहज अभिव्यक्ति अन्यत्र नहीं हुई है ।

यदि कला की दृष्टि से विचार किया जाय तो यह कथा

---

1. विष्णुना सदृशो वीर्ये, वाल्मीकि रामायण, वा०रा० 1·15,31,6·120
2. कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्, श्रीमद्भागवत 1·28 एवं 2·6,2·7.

नाटककारों के लिए बहुत उपयोगी रही है । उनकी नाट्यकला इस मधुरकथा के संयोग से बहुत पल्लवित और पुष्पित हुई है ।

लोकप्रिय नायक के रूप में उदयन का नायकत्व किसी अन्य नायक के व्यक्तित्व से किंचित् मात्र भी न्यून नहीं है । उदयन के व्यक्तित्व का उत्कर्ष और उसके नायकत्व का चमत्कार हमें उसके उत्थान और पतन में, स्नेह और सौजन्य में, हर्ष और विषाद में संयोग और वियोग में दिखाई देता है । मानवीय दुर्बलताओं और महन्ताओं के कारण वत्सराज उदयन लोकभावना के अधिक निकट है । अतः धर्मनिरपेक्ष परिवेश में ऐसा कोई अन्य नायक नहीं दिखाई देता जो इतने दीर्घकाल तक, इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त करने एवं इतने विशाल और विपुल साहित्य का नायकत्व करने का सौभाग्य प्राप्त कर सका हो ।

ऐसा प्रतीत होता है कि वत्सराज अपने जीवनकाल में ही वासवदत्ता के प्रणय के सम्बन्ध से प्रेम के देवता के रूप में चर्चित हो गए थे । उनका यह अनुरागी व्यक्तित्व अवन्ति और वत्सप्रदेशों की सीमाओं को लाँघकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक चर्चा का विषय बन चुका था ।[1]

उदयन की ऐतिहासिकता :

धीर ललित नायक उदयन का व्यक्तित्व अनेक विशेषताओं से संवलित था, सर्वोपरि इसके अनुरागी और रोमांटिक व्यक्तित्व ने उसको लोकप्रिय बनाया । उसकी इस असीमित लोकप्रियता के कारण अनेक कल्पित घटनाओं ने उसके ऐतिहासिक स्वरूप पर जो पटावरण कर दिया है, इससे उसके वास्तविक स्वरूप का चित्रण यद्यपि कुछ कठिन प्रतीत होता है । आज

---

1. मेघदूतम् 1·30

उदयन कथा में ऐतिहासिक और पौराणिक तत्वों का मिश्रण प्राप्त होता है, उन दोनों को पृथक् पृथक् करना दुष्कर कार्य प्रतीत होता है । फिरभी अद्यावधि हुए ऐतिहासिक शोधों से यह विदित हो गया है कि उदयन-कथा एक ऐतिहासिक तथ्य है ।[1]

यद्यपि नाटकों में उपलब्ध उदयन-कथा में कतिपय कविकृत परिवर्तन दिखाई देते हैं और कवि-कल्पना से उसका ऐतिहासिक रूप प्रच्छन्न हो गया है, किन्तु उसका मूल ऐतिहासिक रूप यथावत् जाना जा सकता है।

महाभारत के अनुसार उदयन पुरुवंशी राजा है और वह वीरवर पाण्डुपुत्र अर्जुन के तनय अभिमन्यु के वंशानुक्रम में 25वीं पीढ़ी के सन्तान के रूप में जन्मग्रहण करते हैं । वे वत्सदेश के राजा के रूप में विख्यात रहे हैं । प्रयाग समीपवर्ती कौशाम्बी नगरी उनकी राजधानी के रूप में विख्यात रही है । कुछ विद्वान इसे अर्जुन की 19वीं पीढ़ी का वंशज मानते हैं । किन्तु बौद्ध ग्रन्थों में इसे महात्मा बुद्ध के निकट उत्तरवर्ती शासक माना गया है । तदनुसार यह अवन्ती के चण्डप्रद्योत, कोशल के प्रसेनजित् के पुत्र विदुदभ तथा मगध के सम्राट् बिन्दुसार और अजातशत्रु आदि राजाओं का समकालीन था ।[2]

इस सम्बन्ध में विद्वानों का अभिमत है कि अवन्ति तथा मगध के राजघरानों के साथ कौशाम्बी नरेश उदयन के वैवाहिक सम्बन्ध थे । उनके अनुसार अजातशत्रु ही उदयन कथाओं में निरूपित राजकुमारी पद्मावती का भाई दर्शक है । उदयन जिस वत्सदेश का राजा था, उसकी राजधानी

---

1. तापसवत्सराज-चरितम्, भूमिका पृ0 4
   प्रतिज्ञायौगन्धरायण- प्रस्तावना पृ0 21, प्रकाशन इण्डिया बुक हाउस जयपुर संस्करण 1981.
2. तापसवत्सराज-चरितम् भूमिका, पृ0 4.

कौशाम्बी थी,जो पांचाल के राज्य में जुड़ी हुई थी ।

यदि हम कवि कल्पनाओं और उनके अलंकृत वर्णनों के आवरण को हटाकर कविवर भास के नाटकों का अनुशीलन,परशीलन करें तो उदयन-कथा के मूल रूप का उदय मिल सकता है । तदनुसार उदयन कथा का मूलरूप कुछ निम्नवत् हो सकता है -

उदयन वत्स देश का राजा था वह कलाप्रेमी था । वह वीणा का असाधारण वादक था । यह विश्वास था कि उसकी वीणा की मधुर ताल और सुमधुर संगीत सुनकर वन्य गज भी मुग्ध हो जाते थे । उसके सुमधुर वीणा - वादन का सुयश सुदूर देशों और प्रदेशों तक व्याप्त हो गया था ।[1] यह वही समय था,जब अवन्ती के राज्य में महाराज प्रद्योत शासनारूढ़ थे । इनके दूसरे नाम 'चण्ड प्रद्योत' और 'महासेन' भी थे । इन नामों से यह प्रतीत होता है कि यह बलशाली और पराक्रमी थे । इनकी एक रूप-सुन्दरी और गुणवती कन्या थी,जिसका नाम वासवदत्ता था । वासवदत्ता के रूप सौन्दर्य की सुगन्ध तत्कालीन राजाओं के मध्य चर्चा का विषय थी । उन दिनों प्राय: प्रत्येक राजा वासवदत्ता के अकृत्रिम रूप माधुरी से आकृष्ट हो,उसके प्रणय का अभिलाषी और प्रत्याशी था । किन्तु अवन्ति-राज महासेन प्रद्योत उदयन के गुणों पर मुग्ध था और अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह जिस किसी प्रकार से भी वत्सनरेश उदयन के साथ करना चाहता था अपने इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह अपना एक दूत उदयन के पास भेजता है,तथा यह संदेश प्रेषित करता है कि उसकी बेटी वासवदत्ता उदयन से वीणावादन की शिक्षा ग्रहण करना चाहती है । इसीलिए वे अवन्ती आकर

---

1. गर्भ तमर्द वीणाद्वितीयः वान्यामीति, प्रतिज्ञा-योगन्धरायण जयपुर प्रकाशन-1981, पृष्ठ 23.

बेटी वासवदत्ता को वीणा-वादन की शिक्षा देने की कृपा करें ।[1] किन्तु संगीतकला-विशारद स्वाभिमानी उदयन अवन्ती जाकर उसे शिक्षा देना अपना अपमान समझता है, इसलिए अपने प्रत्युत्तर में वह कहला देता है कि यदि उन्हें अपनी बेटी वासवदत्ता को वीणा-वादन की शिक्षा दिलानी हो तो उसे यहीं पर भेज देना चाहिए ।

उदयन के इस धृष्टतापूर्ण प्रत्युत्तर को बलशाली महासेन प्रद्योत सहन नहीं कर पाता है, फलत: उदयन को अपने वश में करने के लिए वह एक षड्यन्त्र की रचना करता है ।

प्रद्योत की षड्यन्त्र-पूर्ण-योजना के अनुसार उदयन के मृग-यावन की सीमा पर एक ऐसा कृत्रिम हाथी खड़ा कियाजाता है जो अपने गज सुलभ गुणों और शुभलक्षणों से युक्त है । मृगयावन में एक विशाल मांगलिक हाथी के विद्यमान होने की सूचना उदयन को प्राप्त होती है । उदयन ऐसे सुन्दर और शुभलक्षण सम्पन्न हाथियों को पकड़ने के लिए सदैव तत्पर और उत्सुक रहा है । वह शीघ्र ही अपने कुछ विश्वस्त सेवकों को साथ लेकर अपनी मोहनी वीणा सहित उस सघन साल वन की ओर प्रस्थान करता है ।[2]

मृगया वन के उस सघन साल-वन के मध्य विद्यमान तरु लताओं की ओट में वह कृत्रिम गजराज स्थित है, उस हाथी के अन्दर सशस्त्र सैनिक भी विद्यमान है । फिर क्या था, उदयन उस हाथी को अपने वश में करने के लिए वीणा बजाते हुए आगे बढ़ता है । हाथी की निश्चलता को वह समझता है है कि वह वीणा की मधुर स्वर लहरी से अत्यन्त मुग्ध है, इसलिए जड़वत् खड़ा है । फलत: उदयन हाथी के बिल्कुल निकट पहुंच जाता है । वह बहुत आश्चर्य-

---

1. तापसवत्सराजम् - भूमिका, पृष्ठ 3.
2. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, इण्डिया बुक हाउस, जयपुर 1981, पृष्ठ 21-22.

चकित होता है, जब वह यह देखता है कि हाथी के अन्दर छिपे हुए प्रद्योत के सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया है और वह इस प्रकार प्रद्योत के षड्यन्त्र का शिकार हो जाता है । प्रद्योत के सैनिक उदयन को बलात् अवन्ती की सीमा में ले जाते हैं । उदयन के सैनिक उसका पीछा करते हैं, किन्तु प्रद्योत के शेष सैनिक उन्हें आगे बढ़ने से रोक देते हैं । अब उदयन अवन्ती में प्रद्योत का बन्दी बना हुआ कारागार में स्थित है ।[1] कौशाम्बी के सैनिक मृगयावन से लौटकर राजा उदयन के अपहरण की बात महामंत्री यौगन्धरायण से बतलाते हैं ।

फिर क्या था ; उदयन के विश्वासपात्र प्रिय महामंत्री यौगन्धरायण राजा को मुक्त कराने के लिए अपनी योजनाओं के अनुसार प्रयत्न प्रारंभ कर देते हैं । तदनुसार महामंत्री यौगन्धरायण अपना वेष बदलकर अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ अवन्ती पहुँच जाते हैं और वहाँ उदयन से सम्पर्ककरने में सफल हो जाते हैं ।

अवन्ती में कुछ दिन रहने के पश्चात् महामंत्री यौगन्धरायण प्रद्योत के एक गजराज को पागल बनाने में सफल हो जाता है । इस गजराज से सुरक्षा के लिए बन्दी वत्साधिपति उदयन से निवेदन किया जाता है । फलत: कलाप्रवीणउदयन उस उन्मत्त हाथी को अपना वशवर्ती बना लेता है । इस पर प्रसन्न होकर अवन्ती नरेश प्रद्योत उदयन के कारागार के बन्धन शिथिल कर देता है और उसे अपनी बेटी वासवदत्ता को संगीत सिखाने के लिए नियुक्त कर देता है ।[2]

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायण - प्रथम अंक 25-30
2. संस्कृत नाटक : ए०बी०कीथ, अनुवादक डॉ०उदयभान सिंह, मोतीलाल बनारसीदास 1963, पृष्ठ 17.

उदयन प्रद्योत-दुहिता वासवदत्ता को वीणा वाद्य की शिक्षा देना प्रारंभ कर देता है । प्रथम दर्शन में ही दोनों विमुग्ध हो जाते हैं ; दोनों के हृदय में प्रगाढ़ प्रीति का अंकुर फूट पड़ता है । संगीत शिक्षा के व्याज से नायक और नायिका के मन में अनुराग सिन्धु लहराने लगता है ।

कविवर कालिदास के कथनानुसार भवित व्यता के दरवाजे सभी जगह खुल जाते हैं ।[1] अथवा कविवर श्री हर्ष के अनुसार अवश्यभावी घटनाओं के लिए विधाता की इच्छा जिस ओर दौड़ा करती है । वात्याचक्र में पड़े हुए तृणजाल की तरह व्यक्ति परवश होकर उसी ओर बलात् चला जाया करता है ।[2] फिर पुरातन प्रीति को कौन लरव पाता है । फलस्वरूप उदयन और वासवदत्ता प्रणयासक्त हो जाते हैं और दोनों ही गान्धर्व-विधि से विवाह सूत्र में बंध जाते हैं । यह वेदितव्य है कि गान्धर्व विवाह में नायक नायिका के अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति अथवा किसी स्वजन की भागीदारी नहीं होती ।

फलस्वरूप एक दिन वत्सराज उदयन के प्रेम में उन्मत्त वासवदत्ता महामंत्री यौगन्धरायण की योजनानुसार भद्रवती हथिनी में बैठकर अपने प्रियतम उदयन के साथ कौशाम्बी भाग जाती है । यह बात जब उज्जयिनी नरेश प्रद्योत को विदित होती है तो उसे अपना अभीप्सित सिद्ध होने से हर्ष की अनुभूति होती है क्योंकि प्रद्योत अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह उदयन से करना चाहता था । विधाता ने स्वयं ही इस विवाह को सम्पन्न करा दिया है । उदयन और वासवदत्ता के भाग जाने पर इधर प्रद्योत

---

1. अभवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र, :अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1·16
2. अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यथायथा धावति वेधसः स्पृहा तृणेन वात्येव भृशावशात्मना जनेन तेनैव यथानुगम्यते-नैषधीयचरितम् 1.120

और उसकी महारानी अंगारवती चित्रों से ही उदयन और वासवदत्ता के विवाह की रस्म पूरी कर लेते हैं । इस सम्बन्ध की मान्यता को प्रमाणित करते हुए महासेन प्रद्योत एक बहुमूल्य सुवर्णपात्र उदयन के महामंत्री श्री यौगन्धरायण को सादर भेंट करते हैं ।[1]

उदयन और वासवदत्ता के इस प्रणय सम्बन्ध को अभिसिंचित और सफलता के सोपान में पदारूढ़ करने का श्रेय महामंत्री यौगन्धरायण को है ।

'प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम्' नाटक में वर्णित कथावस्तु 'उदयन-वासवदत्ता प्रणयकथा' का पूर्वभाग प्रतीत होता है जबकि 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में इसी कथा का उत्तर भाग प्राप्त होता है ।[2] तदनुसार उदयन के प्रणय-पाश में आबद्ध वासवदत्ता जब राजा उदयन के साथ भागकर उज्जयिनी से कौशाम्बी आ जाती है तो नायक - नायिका में संभोग श्रृंगार की प्रतियोगिता प्रारंभ हो जाती है । परिणामस्वरूप विलासी और श्रृंगारी नायक उदयन अनिन्द्य सुन्दरी नवयौवना प्रेयसी वासवदत्ता को पाकर विलासिता के सरोवर में डूबने और उतराने लगता है । वह समस्त राज्य-कार्यों का परित्याग कर देता है ; केवल संभोग- श्रृंगार ही उसके जीवन का श्वास और प्रश्वास बन जाता है ।

राज्य के प्रति वत्साधिपति उदयन की इस उदासीनता को देखकर उसके पड़ोसी पांचाल नरेश आरुणि के मन में राज्यविस्तार की इच्छा जागृत होती है जिससे आरुणि वत्स राज्य के विस्तृत भू भाग पर अधिकार

---

1. कांचुकीय:, कारणैर्बहुभिर्युक्तैः कामं नापकृतं त्वया । भूमिषु न तु मे कन्याश्रृंगारः प्रतिगृह्यताम् ॥ प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण 4·2। इण्डिया बुक हाउस,जयपुर 1987,पृ0 164.
2. संस्कृत नाटक:ए0बी0कीथ,पृष्ठ-17;अनुवादक -डॉ0उदयभानु सिंह मोतीलाल बनारसीदास,संस्करण 1969.

करना प्रारंभ कर देता है जिस पर उदयन के मन्त्रीगण अत्यधिक चिन्तातुर होते हैं, महामंत्री यौगन्धरायण मगध-नरेश दर्शक की सहायता से पाँचाल नरेश आरुणि के आक्रमण को विफल बनाने की योजना बनाता है ।[1] उसकी यह योजना ही स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की रचना का मूलाधार है ।

इधर उज्जयिनी नरेश प्रद्योत अपनी बेटी वासवदत्ता के अपहरण से अपमानित और दुर्भावित हैं, इसलिए ऐसे अवसर पर उससे सहायता की अपेक्षा अनभीप्सित और अनभिप्रेत है । किन्तु पूर्व दिशा के पड़ोसी मगध नरेश दर्शक अवश्य सहायक हो सकते हैं किन्तु उनके साथ मैत्री सम्बन्ध के कोई सघन सूत्र नहीं थे । सहसा, महामंत्री यौगन्धरायण के मन में विचार उठता है कि यदि मगध नरेश दर्शक की बहिन पद्मावती के साथ उदयन का विवाह हो जाय तो दर्शक सगे सम्बन्धी बन जायेंगे और फिर उनकी सहायता से पाँचाल नरेश आरुणि के आक्रमण को विफल किया जा सकता है। किन्तु इधर उदयन वासवदत्ता के रहते दूसरे विवाह के विषय में सोच भी नहीं सकता है । ऐसी स्थिति में महामंत्री यौगन्धरायण वासवदत्ता को विश्वास में लेकर योजना बनाता है ;जिससे इस नाटक का सफल प्रणयन संभव हो पाता है ।

इस प्रकार महामंत्री यौगन्धरायण की सलाह पर वासवदत्ता कुछ काल के लिए प्रोषित-पतिका का जीवन यापन करने के लिए सहमत हो जाती है । फलस्वरूप राज्य की पश्चिमी सीमा के निकट लावाणक नामक ग्राम में राजकीय पड़ाव डाल दिया जाता है । एक दिन

---

1. कांचुकीय : अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह - एव खलु भवतः अमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेनोपयातः खलु आरुणिम् अभिघातयितुम् इति । स्वप्नवासवदत्तम्, पृष्ठ 180. प्रकाशन - रामनरायनलाल बेनीमाधव, 1968.

राजा उदयन आखेट के लिए वन की ओर जाता है । तभी योजनानुसार उस ग्राम में आग लगवा दी जाती है और वह मिथ्याप्रचार करवा दिया जाता है कि उस अग्निकाण्ड में वासवदत्ता और यौगन्धरायण जल गए हैं। इसके पश्चात् वासवदत्ता और यौगन्धरायण तपोवन में पहुँचते हैं ।[1]

तपोवन में पूर्व से ही मगधराज दर्शक की बहिन पद्मावती विद्यमान है, वह तपोवन के निवासी तपस्विजनों की धार्मिक क्रिया के निर्विघ्न सम्पादनार्थ, सहयोग और सहायता की घोषणा करती है। मगधनरेश दर्शक की अनुजा पद्मावती धर्मप्रिया है और तपस्वियों की सेवा उसका कुलव्रत है ।[2] वह अपने कंचुकी से तपोवन में यह घोषणा करवाती है कि किसे जलपात्र की आवश्यकता है, किसे वस्त्रों की खोज है और कौन तपोधन विद्या प्राप्ति के पश्चात् अपने गुरु को/ क्या गुरु दक्षिणा देना चाहता है ? धर्मप्रिया राजकुमारी तपोधनों की अभीप्सित वस्तुओं को देकर अपने को तपस्वियों का कृपाभाजन बनाना चाहती है ।[3]

इधर वासवदत्ता के साथ तपोवन में विद्यमान महामंत्री यौगन्धरायण कुछ काल के लिए भगिनी स्वरूपा वासवदत्ता को पद्मावती के पास रखने के लिए उनसे प्रार्थना करता है- न्यास की रक्षा में कठिनता होते हुए भी अपने घोषित वचनों के अनुसार राजकुमारी नवागन्तुक तपस्वी यौगन्धरायण को उसकी भगिनी (वासवदत्ता) की चरित्ररक्षा का वचन देती और उसे अपने आश्रम में रख लेती है ।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् , प्रथम अंक, पृष्ठ 17-18.
2. धर्मप्रिया नृपसुता नहि धर्मपीडया ।
   इच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥ स्वप्नवासवदत्तम् 1·6, पृष्ठ-20
3. यद्यस्यास्ति समीहितम् वदतुवद्, कस्यार्थ कि दीयताम्. ।
   स्वप्नवासवदत्तम् 1·8

कथावस्तु की योजनानुसार आश्रम में उसी समय लावाणक नामक ग्राम से एक ब्रह्मचारी बालक प्रवेश करता है और अपने अध्ययन में हुए प्रत्यूह के सम्बन्ध में बतलाता है कि राजा उदयन के मृगया-विहार हेतु चले जाने पर उस ग्राम में आग लग जाती है जिसमें उदयन की प्रिय पत्नी वासवदत्ता और महामंत्री यौगन्धरायण जलकर भस्मसात् हो गए हैं। वियोग में राजा उदयन मूर्च्छित हो जाते हैं। शनैः शनैः मूर्च्छा दूर होने पर उन्हें चेतना आती है तो वे हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराज पुत्रि ! हा प्रिये और हा प्रियशिष्ये ! इत्यादि कहकर विलाप करने लगते हैं जिसे पति का इतना अधिक प्रेम और सम्मान प्राप्त हो, सचमुच वह नारी धन्य होती है। जल जाने पर भी पति के अमर प्रेम के कारण वह अदग्धा अर्थात अमर है।[1]

नाटक के द्वितीय और तृतीय अंक के अनुशीलन से विदित होता है कि उदयन का मगधराजकुमारी पद्मावती के साथ विवाह सम्पन्न हो जाता है, जिसे वहाँ पूर्व से ही उपस्थित वासवदत्ता भी देखती है। अन्त में, कतिपय नाटकीय घटना के अनन्तर वासवदत्ता का नायक से मिलन होने के कारण नाटक का सुखान्त पर्यवसान होता है।

कविवर अनंग हर्ष मातृराज विरचित नाटक तापस वत्सराजम् में उपलब्ध उदयन-कथा स्वप्न-वासवदत्तम् नाटक के कथानक से किंचित 'भिन्न किन्तु समान प्रयोजन' वाली है। तदनुसार नाटक के प्रारम्भ में कंचुकी और चेटी के कथनों से विदित होता है कि वत्सराज उदयन विषयोपभोग से शिथिलीकृतविग्रह वाला हो गया है और विषयसुखों से उसका मन मोहान्धित हो गया है। जिसके कारण उसका विवेक क्षीण हो जाता है, और वह यह भी नहीं जान पाता कि पांचाल नरेश आरुणि उसके राज्य के कुछ भाग पर

1. धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्तिभर्ता । भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥ वासवदत्तम् 1·13.

अधिकार कर चुका है ।[1] राज्य के प्रति राजा की यह उपेक्षाभाव मन्त्रियों को चिन्तित कर देता है । फलस्वरूप यौगन्धरायण के नेतृत्व में राज्य की रक्षा के लिए मन्त्रीगण एक राजनयिक योजना बनाते हैं । तदनुसार सांकृत्यायनी एक परिव्राजिका का वेष बनाकर वत्सराज उदयन के चित्र के साथ राजगृह (मगध) की ओर प्रस्थान करती है ।

इधर महामन्त्री यौगन्धरायण अवन्ती नरेश महासेन प्रद्योत को राज्य के संकट का समाचार देता है और उनसे अपनी बेटी वासवदत्ता के लिए एक पत्र लिखवा देता है । लामकायन ब्राह्मण को एक सिद्ध का वेष बनाकर प्रयाग भेज दिया जाता है ; उसके पास एक व्यक्ति उसकी सहायता के लिए शिष्य के रूप में भेजा जाता है,यह शिष्य ही उसके और मन्त्रियों के बीच में सन्देश-प्रेषण के आदानप्रदानादि के कार्य सम्पादित करता है । राजा के मित्र विदूषक को भी इस योजना से अवगत करा दिया जाता है और इसमें उसे उसका कार्य समझा दिया जाता है ।

महामंत्री यौगन्धरायण राज्य की रक्षा के सम्बन्ध में विरचित इस वृहद् योजना के सम्बन्ध में महारानी वासवदत्ता की भूमिका के लिए इन्हें सहमत कर लेता है । सम्बन्धित व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य लोगों से इस योजना को गोपनीय रखा जाता है । उधर मगध नरेश से भी सम्पर्क हेतु प्रयास किया जा रहा है ।[2]

इस पृष्ठभूमिका के साथ नाटक के प्रथम अंक में योजनानुसार

---

1. क्षितीशो येनायं विषयसुखमोहान्धित-मना न पीचार्त वेत्ति प्रसभमुपरिन्यस्त-चरणम् । तापस-वत्सराजम् 1·2 पृष्ठ-4

2. प्रद्योतः स्वसुताप्रवासनविधौ दत्ताभ्यनुज्ञः कृतः । प्रारब्धा मगधेश्वरेण घटना तैस्तै रुपायक्रमैः ॥ तापसवत्सराजम् 1·6 पृष्ठ 12.

महामन्त्री यौगन्धरायण महारानी वासवदत्ता से राज्य पर प्रत्यासन्न संकट की सूचना देता है और उसे दूर करने हेतु उनके सहयोग की कामना करता है, उसी समय पूर्वनिर्धारित योजनानुसार महासेन प्रद्योत का एक अनुचर पत्र के साथ प्रवेश करता है। अपने पिता प्रद्योत का पत्र पढ़कर वासवदत्ता साम्राज्य की रक्षा के लिए विषयासक्त राजा के मंत्री की योजनानुसार वियोग का कष्ट सहन करने और सहयोग करने हेतु प्रस्तुत हो जाती हैं।

भावी वियोग की आशंका से रानी वासवदत्ता आकुल और व्याकुल हैं, कौमुदी-महोत्सव के प्रत्यासन्न होने पर भी वह अपना श्रृंगार प्रसाधन नहीं करती हैं; राजा उसकी व्याकुलता का कारण पूँछता है, जिसके उत्तर में उसे बतलाया जाता है कि पिता के घर से पत्र आया है कि अभीष्ट मंगलाचार के साथ जामाता को कन्यादान न कर सकने के कारण उनकी माता सदैव रोती रहती है, और उन्हें भी रुलाती रहती है, इसलिए पितृकुल के समाचार से ही महारानी सम्प्रति खिन्न मनस्क और व्याकुल हैं।[1] इधर मृगया हेतु वन के घिराव की सूचना राजा को दी जाती है, इन दोनों ही कारणों से "कौमुदी-महोत्सव" स्थगित कर दिया जाता है। प्रभात में राजा कतिपय सैनिकों के साथ मृगया हेतु वन की ओर प्रस्थान करता है।

यहाँ यह सुस्पष्ट है कि नाटक के प्रथम अंक के संगुम्फन में कवि की सम्पूर्ण कल्पनामौलिक और युक्तियुक्त है। सम्पूर्ण प्रथम अंक राज्य की सुरक्षा हेतु विरचित महामंत्री यौगन्धरायण की सफल योजना की

---

1. यथा वादे। न त्वं यथेष्टैः मंगलैः जामात्रे समर्पितेत्यनुदिवसं रुदन्ती जननी तव,मां रोदयतीति।
तापसवत्स-राजम्, पृष्ठ-29.

समर्पित है। महासेन प्रद्योत को विश्वास में लेना और वासवदत्ता के लिए उनका पत्र लेखन सामकामन का प्रयाग-प्रेषण, वासवदत्ता के सहयोग की स्वीकृति, राजा का मृगया हेतु वन प्रस्थान आदि और प्रयोजनापेक्षी है। नाटक के बुनियाद के रूप में विनिर्मित प्रथम अंक की प्रस्तुति नाटककार अनंगहर्ष-मातृराज की नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का स्फुरण प्रतीत होती है।[1] जिस प्रकार उत्तर रामचरितम् नाटक का प्रथम अंक सम्पूर्ण नाटक का अधिकरण और कविवर भवभूति की अपूर्व प्रतिभा का परिस्फुरण है। कुछ यही बात तापस-वत्सराजम् के प्रथम अंक और कविवर अनंग-हर्ष-मातृराज के लिए भी कही जा सकती है।

प्रथम अंक की भाँति नाटक का द्वितीय अंक भी कवि की सफल प्रस्तुति का परिचायक है। तदनुसार महामंत्री यौगन्धरायण वासव-दत्ता को राजमहल से स्थानान्तरित कर देते हैं और राजमहल में आग लगा दी जाती है। राजमहल धू-धू कर जलने लगता है।

महाराज उदयन मृगया विहार से वापस राजमहल आते हैं, साथ में रुमण्वान् विदूषक आदि भी हैं। प्रचण्ड अग्नि से विदग्ध होते हुए राजमहल को देखकर अग्निकाण्ड में रानी वासवदत्ता के जलने की आशंका से राजा अत्यन्त करुणापूर्ण विलाप करता है और स्वयं भी उस अग्निकाण्ड में जल जाना चाहता है।

रानी वासवदत्ता के जल जाने के समाचार से सम्पूर्ण प्रकृति हाहाकार कर उठती है। रत्नजटित पिंजरों में रहने वाले शुकस्वरिकायें अग्नि-स्फुलिंगों के बीच इतस्ततः भाग रहे हैं, अग्नि को रक्ताशोक समझने के भ्रम से मृगगण उसी ओर दौड़ रहे हैं और मयूरों के गण धूम को मेघ समझकर

1-?

अपने मादक केका-स्वर से उत्कंठित हो रहे हैं ।[1] शोक से व्याकुल राजा स्वयं भी विदग्ध वासवदत्ता का अनुगमन करना चाहता है । इसी समय रानी वासवदत्ता द्वारा परिपालित मृगशावक वत्सराज उदयन के पास दौड़ता हुआ आता है, इसे देखकर राजा का शोक और तीव्र हो जाता है।[2] नायक के शोक को बढ़ाने वाले इस मृगशावक-प्रस्तुति से विदाई के अवसर पर शकुन्तला के चरणों में लिपटने वाले सुत-निर्विशेष मृगशावक की उपस्थिति का स्मरण सम्प्रति हो रहा है जिससे प्रतीत होता है कि कवि द्वारा प्रस्तुत यह प्रसंग कालिदास - प्रणीत - अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक से प्रभावित है ।[3]

उपर्युक्त कारुणिक वेला पर उज्जयिनी नरेश महासेन प्रद्योत का पत्रवाहक वहाँ पहुँचता है जो शोक को तीव्रतर कर देता है । महामंत्री यौगन्धरायण भी वासवदत्ता के साथ अग्नि में विदग्ध हो गए हैं, इस समाचार से उदयन शोक सागर में पुनः डूबने और उतराने लगता है और राजा वासवदत्ता और यौगन्धरायण के पथ का अनुगमन करने का आग्रह करता है किन्तु वहाँ उपस्थित दूसरा मंत्री रुमण्वान् इसे इसके लिए रोकता है और प्रयाग में जाकर वहाँ सिद्धजनों के दर्शनार्थ उन्हें परामर्श देता है ।

---

1. राजा (समाश्वस्य सहसोत्थाय सखेदम्) रुमण्वन् ! मुंच मुंच किं मां निवारयसि । अन्तर्वर्द्ध-पदं न पश्यसि सखे शोकानलं येन माम् । एवं वारयसि प्रियानुसरणात् पापं करोष्यत्र किम् ॥ तापसवत्सराज-चरितम् 1·8 पृष्ठ 43.
2. किं मे पार्श्वमुपैषि पुत्रक-कृते: किं चाद्भिः क्रूरया मात्रा त्वं परि-वर्जितः सहसा यान्त्याविदीर्णां भुवम् ॥ तापसवत्सराज-चरितम् 1·11
3. यस्य त्वया व्रणविरोपणमिंगुदीनाम्, तैलं न्यषिच्यत मुखे कुश-सूचि-विद्धे श्यामाक-मुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते । अभिज्ञान-शाकुन्तलम् 4·

प्रयाग में ब्राह्मण सांकृत्यायन पूर्व से ही तापस वेश में उपस्थित है । यही तापस आगे राजा को वासवदत्ता की प्राप्ति के लिए मगधराजपुत्री पद्मावती से विवाह का परामर्श और उपदेश देता है ।

तीसरे अंक में वत्सराज उदयन और मगधराजपुत्री पद्मावती के मिलन का वृत्तान्त उपलब्ध है । कवि ने मुख्यकथा की संगति बैठाने के लिए बहुत से अंशों की स्वयम् उद्भावना की है । सांकृत्यायन और उसके शिष्य के मध्य हुए वार्तालाप से यह विदित हो जाता है कि मगध राजकुमारी पद्मावती सांकृत्यायनी के प्रभाव में है । परिव्राजिका सांकृत्यायनी मगध के राजगृह पहुँचकर राजकुमारी पद्मावती कोउदयन का सुन्दर चित्र दिखाती है और राजा के अनेक गुणों को उसे सुनाती है । राजकुमारी पद्मावती चित्र और राजा के गुण समूह देख औरसुनकर मुग्ध हो जाती है और देवमूर्ति के समान वह उसकी पूजा करने लगती है । योजनानुसार इधर विदूषक भी राजा को लेकर मगध के राजगृह के तपोवन में पहुँच जाता है ।

दूसरी ओर मंत्री यौगन्धरायण राजगृह के तपोवन जाते हैं, वहाँ (प्रोषितपतिका) वासवदत्ता को अपनी प्रोषित-पतिका बहिन बताकर उसे कुछ काल के लिए पद्मावती के पास छोड़कर चले जाते हैं ।

वासवदत्ता पद्मावती से उसके तपस्विनी के वेष धारण का कारण पूँछती है जिसके उत्तर में पद्मावती वत्सराज उदयन के प्रति अपना अनुराग बतलाती है और उदयन की उस प्रतिकृति को दिखाती है जिसकी वह अहर्निश पूजा करती है । उदयन की यह प्रतिकृति तापस वेश में है।[1]

---

1. पद्मावती - तस्मिन्नेव हुतवहे अलब्धमरण-व्यवसाय: अमात्यै: परिबोध्यमान: किं मम साम्प्रतम् गृहवासेनेति सर्वम् परित्यज्य तापस: संवृत्त:। तापस-वत्सराज-चरितम्, पृ० 75.

इसलिए पद्मावती ने भी अपने प्रियतम के अनुरूप तपस्विनी का वेश धारण कर लिया है । वहीं पर वासवदत्ता की भेंट सांकृत्यायनी से होती है जो वासवदत्ता को अपनी योजना का बोध कराती है । दोपहर में राजा उदयन के आने का समय समझकर सांकृत्यायनी वासवदत्ता के साथ वहाँ से चली जाती है ।

इधर विदूषक, तापस वेश में राजा उदयन को विश्राम के बहाने उसी तपोवन में ले जाता है, जहाँ पर मगध राजकुमारी पद्मावती तापस वेश में पूर्व से ही विद्यमान है । नवागन्तुक अतिथि के पूजा-सत्कार हेतु पद्मावती अर्घ्यादि-पूजन-सामग्री लेकर राजा के पास जाती है, उसे उदयन के रूप में पहिचान कर वह संकुचित होती है। उदयन सर्वांग-सुन्दरी राजकुमारी को तपस्विनी के वेश में देखकर द्रवित होता है ।[1] विदूषक की प्रेरणा से राजा पद्मावती की पूजा और आतिथ्य-सत्कार स्वीकार तो कर लेता है किन्तु वासवदत्ता की स्मृति उसे विचलित कर देती है ।

योजनानुसार रुमण्वान् के दूत सिद्धार्थक को राजगृह की गतिविधियों को जानने के लिए परिव्राजिका सांकृत्यायनी के पास भेजा जाता है तथा उदयन और राजकुमारी के विवाहार्थ योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उसे अमात्य का निर्देश सूचित किया जाता है । सांकृत्यायनी और विदूषक परस्पर मिलकर यह कार्य सम्पादित करते हैं ।

---

1. राजा - [सहसावलोक्य सविस्मयम्]
संक्रुद्धस्य ललाट-लोचन-भुवा सप्तार्चिषा धूर्जटेः, निर्दग्धे मकरध्वजे रतिरसौ किं स्याद् गृहीतव्रता । सेवा साद्वनदेवता-मुनि-वधू-वेशा-प्रपंच मनः कृत्वेत्थं रमते इव विग्रहवतीं किं वा तपश्रीरियम्" ।।
तापस-वत्सराजम् 3.14.

जहाँ एक ओर राजा उदयन पद्मावती के वासवदत्ता-सदृश सौन्दर्य से आश्चर्यचकित और उसके तपस्विनी वेश से द्रवित है, वहीं दूसरी ओर राजकुमारी पद्मावती अपने प्रणय की असफलता में दुःखी होकर आत्महत्या की योजना बनाती है । इतने में ही विदूषक सहसा वहाँ राजा के साथ प्रवेश करता है और उसके इस दुःसाहस को रोकता है । यहीं पर नायक-नायिका का मिलन होता है और इन दोनों का यह मिलन मंगलमय विवाह में परिणत हो जाता है ।[1]

पंचम अंक के प्रारंभ में मूलग्रन्थ का कुछ भाग खण्डित है जिससे मूल कथा का स्वरूप यद्यपि सुस्पष्ट नहीं है फिरभी इतना अवश्य विदित होता है कि वासवदत्ता निद्रा निमग्न विदूषक को जगाती है, जागने पर वह उदयन के पास जाता है । इधर राजा पद्मावती - परिणय के पश्चात अपने प्रिया समागम की स्मृति में तल्लीन है किन्तु वासवदत्ता की स्मृति भी घनीभूत होकर स्मृतिपटल पर छाई हुई है । विदूषक राजा से वासवदत्ता के मिलन की बात कहते कहते सँभलकर कहता है कि वह उसे स्वप्न में देख चुका है । बातों ही बात में दोनों विदूषक और राजा पद्मावती के पास पहुँचते हैं । इसी समय पद्मावती के भाई दर्शक द्वारा प्रेषित संवादवाहक कुंजरक वहाँ आता है और पांचाल नरेश आरुणि के साथ हुए भयानक युद्ध की चर्चा करता है तथा शत्रु के गिरफ्तार होने और अपनी सेनाओं की विजय की सूचना देता है ।

---

1. करतलकलिताक्ष-मालयोः समुदित-साध्वसबद्ध-कम्पयोः ।
कुलकपिजटानिवेशयोरपर इवेश्वरयोः समागमः ॥ तापसवत्सराजम् 4·20
पृष्ठ 142.

इस सूचना के बाद विदूषक राजा को परामर्श देता है कि अब राजधानी कौशाम्बी लौट चला जाय वहाँ शत्रु राजा आरुणि को दण्ड दिया जाय और अपने सहायक राजा दर्शक एवं वासवदत्ता के बन्धुओं गोपाल और पालक को धन्यवाद ज्ञापित किया जाय । इस पर राजा सिद्ध की वाणी पर विश्वास करने के कारण प्रयाग में वासवदत्ता की मिलन की आशा से सर्वप्रथम प्रयाग जाने की आज्ञा देता है जिससे वे दोनों प्रयाग के लिए प्रस्थान करते हैं ।[1]

षष्ठ अंक में कथा वृत्त एवं अन्य अवान्तर प्रसंगों का उपसंहार अत्यन्त रोचकता के साथ प्राप्त होता है । तदनुसार धर्मबन्धु यौगन्धरायण पद्मावती के पास न्यास के रूप में रहने वाली ब्राह्मणी वेशधारिणी बहिन वासवदत्ता को वहाँ से ले जाता है । इधर वासवदत्ता निष्कारण अपने आर्यपुत्र को दुखी करने के कारण आत्मग्लानि से व्यथित है और इस कारण शरीरत्याग का विचार करती है किन्तु यौगन्धरायण उसे मरण व्यापार से रोकता है । इसी समय सांकृत्यायनी की शिष्या यौगन्धरायण को सूचित करती है कि कौशाम्बी की ओर जाते हुए राजा उदयन प्रयाग पहुँच चुके हैं और अब वासवदत्ता के मिलन से निराश होकर त्रिवेणी संगम में ही अपना प्राणान्त कर देना चाहते हैं । अतः त्रिवेणी संगम में दोनों का संगम कराने के लिए यह उपयुक्त अवसर है ।

---

1. राजा - एतन्मतमेव तावदनुवर्तमानः प्रयागं गत्वा तत्रैव देवीस्नेहस्य यथोचितमेव आचरिष्यामि ॥ तापसवत्सराजम्, पृ० 189.

घटनाओं का संयोग बहुत विचित्र है । यौगन्धरायण वासवदत्ता के साथ प्रयाग में संगमतट पहुँचता है और वासवदत्ता के प्राणोत्सर्ग के लिए त्रिवेणी संगम में चिता बनाता है और अग्नि प्रज्वलित करता है - राजा उदयन भी त्रिवेणी तट पर अपने प्राणोत्सर्ग के लिए राजसेवकों से चिता बनाने का आदेश देता है किन्तु सेवक ऐसा नहीं करते । इधर वासवदत्ता के लिए प्रज्वलित चिता में ही राजा जल जाना चाहता है और इस निमित्त राजा चिता की प्रदक्षिणा करता है किन्तु तभी यौगन्धरायण समीप जाकर राजा को रोकता है कि यह उसकी बहिन की चिता है, पति के दुख को न देख सकने के कारण वह इस चिता में जलकर मर जाना चाहती है । इस पर राजा रुक जाता है ।

उसी समय विदूषक राजा का ध्यान इस ब्राह्मण वेशधारी यौगन्धरायण की ओर आकर्षित करता है । राजा उसे यौगन्धरायण के रूप में पहचान लेता है । रानी पद्मावती भी महारानी वासवदत्ता को पहचान जाती है, ऐसे अवसर पर मंत्री रुमण्वान भी आ जाता है । नायक और नायिका का मिलन होता है और इस प्रकार सुखान्त नाटक का पर्यवसान होता है ।[1]

यहाँ यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि वासवदत्ता और वत्सराज उदयन की रस-संचारिणी प्रणयकथा पर आधारित "प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण" और "स्वप्न-वासवदत्तम्" तथा तदनुसार "तापस-वत्सराजम्"

---

1. राजा -
दृष्टा पूर्व निर्जिता विद्विषन्तः प्राप्ता देवी भूतधात्री च भूयः ॥
सम्बन्धोऽभूद् दर्शकेनापि सार्धं किं दुष्प्राप्यं यन्न लब्धं भवद्भ्यः ॥
तापसवत्सराजम् 6•9 पृ० 223.

अत्यन्त सफल नाट्य-कृतियाँ हैं, जिन्होंने न केवल तत्कालीन समाज प्रत्युत शताब्दियों तक और आज भी रसिकों और सामाजिकों को रससिक्त तथा आनन्दित किया है ।

इस रोचक कथानक से सम्बद्ध दो अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध होती हैं- "वीणावासवदत्ता" तथा "उन्मादवासवदत्ता" । इन दोनों कृतियों में क्रमशः वासवदत्ता का संगीत और वीणा से प्रेम और उसके उन्मादकारी सौन्दर्य का चित्रण तदनुसार उसका उदयन के साथ सफल प्रणय का प्रसंग चर्चित है ।[1]

वत्सराज उदयन और वासवदत्ता के रोमांचक प्रणयकथा से सम्बन्धित कविवर सम्राट् हर्षवर्धन विरचित दो अत्यन्त सफल नाटिकायें भी प्राप्त होती हैं - जो इस कथा की लोकप्रियता में प्रबल प्रमाण हैं ।

उदयन कथा चक्र से सम्बद्ध 'प्रियदर्शिका' चार अंकों की प्रणय-नाटिका है ।[2] वत्स का सेनापति विजयसेन दृढवर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका को दरबार में लाता है तथा आरण्यकाधिपति विन्ध्य केतु की कन्या के रूप में वहाँ रख देता है । यह राज उसे वासवदत्ता को सौंप देते हैं,जो उसकी शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध करती है । कुछ समय पश्चात राजा उदयन विदूषक के साथ उपवन में घूमने जाते हैं । जहाँ पुष्प-चयन हेतु आई प्रियदर्शिका कमलों पर उड़ते हुए भौंरों से व्यथित होती है और चिल्लाने लगती है । राजा लताकुंज से प्रकट होकर उसकी भ्रमरों से रक्षा करता है,यहीं नायक नायिका का प्रथम दर्शन होता है और अनुराग के बीज का अंकुरण

---

1. तापस वत्सराजम् - भूमिका,साहित्य भंडार मेरठ 1961संस्करण,पृ0-2
2. प्रियदर्शिका पृ0 5

होता है । यह प्रसंग आश्चर्यजनक रूप से अभिज्ञान-शाकुन्तलम् के प्रथम अंक में वर्णित दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला की भ्रमरबाधा के वर्णन से अत्यन्त साम्य रखता है ।[1]

इस नाटिका के अनुसार प्रियदर्शिका की सखी मनोरमा तथा विदूषक युक्ति से नायक नायिका मिलन की योजना बनाते हैं । इधर वासवदत्ता उदयन के चरित से सम्बन्धित नाटक का अभिनय करना चाहती है जिसमें मनोरमा को उदयन का अभिनय करना है और वासवदत्ता का अभिनय प्रियदर्शिका को करना है किन्तु घटनाचक्र के सुन्दर संयोजन से मनोरमा के स्थान पर उदयन स्वयमेव पहुँच जाता है,और वासवदत्ता का अभिनय करने वाली प्रियदर्शिका से मिलता है । अन्ततः वासवदत्ता के द्वारा उदयन और प्रियदर्शिका का विवाह करा दिया जाता है जिससे नाटिका का पर्यवसान्त सुखान्त होता है ।

वासवदत्ता- उदयन-कथा प्रसंग से सम्बद्ध कविवर श्रीहर्ष देव विरचित एक दूसरी अत्यन्त प्रसिद्ध नाटिका रत्नावली उपलब्ध भी है, जिसे सर्वश्रेष्ठ नाटिका होने का गौरव प्राप्त है ।[2]

रत्नावली की कथावस्तु उदयन के चरित्र के उस भाग से सम्बन्धित है जो वासवदत्ता के विवाह के पश्चात् प्रारंभ होता है । तदनुसार सिंहलेश्वर की दुहिता रत्नावली यान भंग के कारण समुद्र में डूबकर भी बच जाती है । एक सामुद्रिक व्यापारी द्वारा वह महामंत्री यौगन्धरायण के पास लाई जाती है । मंत्री उसे सागरिका के नाम से वासवदत्ता की देखरेख में रख आता है ।

---

1. अभिज्ञान-शाकुन्तलम् प्रथम अंक 1.23
2. रत्नावली.साहित्य भंडार मेरठ संस्करण 1986

कामदेव के उत्सव के अवसर पर वासवदत्ता कामपुरुष उदयन की ही पूजा करती है, जिसे कुओं की झुरमुट से छिपे तोर से सागरिका प्रथम बार देख लेती है, उन्हें वह कामदेव समझती है तथा प्रणय के मधुर भाव के अंकुरण के लिए पात्र बनती है ।[1]

द्वितीय अंक में सागरिका अपनी सखी सुसंगता के साथ चित्त विनोद के लिए राजा का चित्र अंकित करती है जिसके पास सुसंगता सागरिका का ही चित्र खींचकर उसे रति सनाथ बना देती है । कुछ गुप्त प्रणय की भी चर्चा है । वाजिशाला से एक बन्दर के तोड़ाकर भागने से महल में कोहराम मच जाता है । इसी हड़कम्प में ये दोनों भाग खड़ी होती हैं । चित्रफलक वहीं छूट जाता है, राजा के हाथ में पड़ने से गुप्त प्रेम प्रकट हो जाता है । इस प्रेम के प्रकट होने में एक सारिका का भी हाथ प्रतीत होता है ।

तृतीय अंक इस नाटिका का हृदय-स्थल है । तथा कवि की मौलिक उद्भावना का भव्य उदाहरण है । वेश-परिवर्तन से जनित भ्रान्ति के कारण जायमान घटना-संकर्म बहुत सुन्दर है तथा शेक्सपियर "कामेडी आफ एरर्स" नामक नाटक के समान है ।[2] सागरिका वासवदत्ता का तथा सुसंगता दासी कांचनमाला का वेश धारण कर राजा से पूर्व निश्चय के अनुसार मिलने आती हैं, परन्तु असली वासवदत्ता के इससे पहले आ जाने के कारण सारा गुड़ गोबर हो जाता है । असली नकली का विभेद बड़ी ही हास्यजनक स्थिति पैदा करता है । अपमानित मानकर सागरिका लता-पाश के द्वारा मरना चाहती है परन्तु राजा उसे बचाता है ।

---

1. रत्नावली- प्रथम अंक, साहित्य भण्डार, मेरठ-1986 संस्करण
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदामंदिर, वाराणसी - 1968, पृ0 559.

चतुर्थ अंक में जादूगर के अग्निदाह का प्रभावशाली दृश्य है। विविध घटना-संयोजन के पश्चात् वासवदत्ता स्वयं प्रसन्न होकर अपनी भगिनीभूता सागरिका से राजा का विवाह करा देती है । नायक नायिका परिणय से इस नाटिका का पर्यवसान भी मंगलमय होता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त साहित्यावगाहन विगाहन से यह सुस्पष्ट है कि उदयन-कथा शताब्दियों से रामकथा और कृष्णकथा की भाँति भारतीय जनमानस को आनन्दित करती रही है । इसीलिए इस प्रेम-रसासिक्त कथा को आधार बनाकर अनेक स्वनामधन्य कवियों ने संस्कृत में विपुल साहित्य की रचना की है । इस मधुर कथा ने तरुणों और ग्राम वृद्धों के हृदयों में जैसी ललित और सुकुमार भव्य भावनाओं की मधुरतम सृष्टि की है । उसकी अनुगूँज न केवल अवन्ती के रसिक-वृन्दों के मध्य श्रवणगोचर हो रही है ।[1] प्रत्युत परवर्ती संस्कृत साहित्य भी उसके रस से सराबोर हो गया है ।

-0-

---

1. प्राप्यावन्तीनुदयन-कथा-कोविदग्राम-वृद्धान्, मेघदूतम् 1·30.

द्वितीय - अध्याय

स्वप्नवासवदत्तम् के प्रणेता

द्वितीय - अध्याय

स्वप्नवासवदत्तम् के प्रणेता :

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रणेता कविवर भास हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है । नाटककार भास की ख्याति संस्कृतनाट्य-जगत् में कालिदास के उदय के पूर्व ही फैल चुकी थी । कविकुल-गुरु-कालिदास ने स्वयम् ही अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' में कविवर भास के प्रथित यश का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है । तदनुसार उनका कथन है कि विख्यात यश वाले भास, सौमिल्ल और कवि पुत्रादि के प्रबन्धों का अतिक्रमण करके कैसे आधुनिक कवि कालिदास की कृति का बहुत सम्मान हो सकता है ।[1] इससे विदित होता है कि कालिदास के पूर्व भास के नाटक चर्चित और लोकप्रिय थे । भास की लोकप्रियता के तारतम्य में प्रमाणस्वरूप कहा जा सकता है कि परवर्ती कविजनों ने भी भास की कृतियों के सम्मान में अपने हृदयोद्गार व्यक्त किए हैं । सप्तम शताब्दी ईस्वी के कविवर बाण, ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्षचरितम् में' कहा है कि सूत्रधार से प्रारंभ होने वाले तथा पताका (नामक अवान्तर कथा) वाले देवमन्दिरों के समान सुन्दर नाटकों से कविवर भास को अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई थी ।[2]

---

1. प्रथितयशसां भास-सौमिल्लक-कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।
मालविकाग्निमित्रम् - प्रस्तावना, चौखम्बा संस्कृत सीरीज-1965, पृ0-6

2. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥
चौखम्बा विद्याभवन, 1965 ; हर्षचरितम् 1-15, पृ0 8.

काव्यमीमांसाकार राजशेखर (नवम् शताब्दी ई0) कविवर भास कृत नाटकचक्र में स्वप्नवासवदत्तम् के अदग्ध होने की बात कहकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।[1] प्रसन्नराघवम् के प्रणेता कविवर जयदेव ने (द्वादश शताब्दी ई0) भास को कविताकामिनी का हास कहा है ।[2]

काव्यादर्श के प्रणेता प्रसिद्ध काव्यशास्त्री कविवर दण्डी भास कृत चारुदत्तम् और बालचरितम् नाटकों में प्राप्त एक श्लोक को उद्धृत करते हैं ।[3] इसी प्रकार आचार्य वामन अपने ग्रन्थ काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में कविवर भास का उल्लेख करते हुए स्वप्नवासवदत्तम् 4·8, चारुदत्तम् 1·2 और प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम 4·3 नाटकों के श्लोकों को उद्धृत करते हैं।[4] वाक्पति राज (अष्टम-शताब्दी) अपनी कृति 'गउडवहो' में भास को 'ज्वलन-मित्र' की संज्ञा से विभूषित करते हैं ।[5] इन सभी उल्लेखों और उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि नाटककार भास की प्रसिद्धि लोकप्रियता की सीमाओं को लाँघ चुकी थी । प्राय: सभी परवर्ती कवि और काव्यशास्त्री उनके कालविजयी कवित्व की भूरि-भूमि प्रशंसा कर रहे हैं जो उनके निरन्तर लोकप्रिय नाटककार और कवि होने के प्रति प्रबल प्रमाण हैं ।

भास के नाटक :

यद्यपि नाटककार भास संस्कृत नाट्य-साहित्य के अति प्राचीन और बहुचर्चित कवि रहे हैं, किन्तु कालान्तर में इनके नाटक लुप्त हो गए थे, और इतिहास में इनका अस्तित्व संदिग्ध हो गया है । 1909ई0की यह

---

1. भासनाटक चक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
   स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥काव्यमीमांसा, पृष्ठ-35
2. भासो हासः कविकुल गुरुः कालिदासो विलासः । प्रसन्नराघवम् 1·22
3. लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
   चारुदत्तम् 1·19, बालचरितम् 1·15
4. काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति 1·5, 3·5
5. भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
   सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दः । गउडवहो-गाथा 800

घटना संस्कृत नाट्य-साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय हो गई, जब प्रसिद्ध गवेषक महामहोपाध्याय टी0गणपति शास्त्री ने इन लुप्त नाटकों को खोज निकाला और विद्वानों के सम्मुख उन्हें विचारार्थ प्रस्तुत किया।[1]

सन् 1909में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री को कुमारी अन्तरीप से लगभग 20मील दूर स्थित 'पद्मनाभपुरम्' के समीप 'मलतिक्कर-मपम्' नामक स्थान में ताम्र पत्रों पर मलयालम् अक्षरों में लिखे हुए नाटक हस्तगत हुये। पं0गणपति शास्त्री ने प्रथम बार इन नाटकों को कविवर भास की रचना बतलाकर लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया। इसके पश्चात् त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित होने वाली अनन्तशयनम् ग्रन्थमाला में इन नाटकों का प्रकाशन किया। इन नाटकों की कहीं देवनागरी प्रतियाँ प्राप्त नहीं हुईं। केवल कैलाशपुरम् के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी गोविन्द - पिशारोटि के संग्रहालय से अभिषेक और प्रतिमा-नाटकम् की प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं।[2]

भास के नाटक :

कविवर भास के सम्प्रति उपलब्ध नाटकों की संख्या 13 है। भास के नाटकों की कथावस्तु का स्रोत महाभारत, रामायण और वृहत्कथा तीन ग्रन्थ रत्न हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय महाभारत के पठन पाठन का बहुत प्रचार था और महाभारत की घटनाओं से लोग अत्यधिक परिचित थे। भास ने तत्कालीन जन जीवन में व्याप्त घटनाओं को अपने नाटकों का विषय बनाया था। भास के 7 नाटक महाभारत की घटनाओं

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ0 512
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, संस्करण 1968, पृ0212 एवं प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम् पृ0 06, इण्डिया बुक हाउस, जयपुर-1981.

से सम्बन्धित हैं,दो नाटक रामायण कथा से, तथा दो वृहत्कथा में प्राप्त उदयन कथा से तथा शेष को कल्पनामूलक हैं ।

नाटकों का कथानक चाहे जिस ग्रन्थ से सम्बद्ध हो,सर्वत्र भास के कवित्व और अनूठी कल्पना शक्ति की मौलिकता के दर्शन होते हैं ।उनकी नाट्यकला का कौशल और उनकी मौलिक प्रतिभा अवलोकनीय है । भास के 13 नाटकों का अति-संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है -

§1§ दूतवाक्यम् :

यह भास का एकांकी व्यायोग है,इसकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है । इस एकांकी में पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान् श्रीकृष्ण कौरव पक्ष के शिविर में जाते हैं और वहाँ से असफल होकर लौट आते हैं ।[1]

§2§ कर्णभारम् :

यह भी एकांकी नाटक है । इसमें कर्ण द्वारा ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र को अपने कवच-कुण्डल देने की कथावस्तु प्राप्त होती है । इस नाटक में स्थान अन्विति का पूर्ण निर्वाह किया गया है ।

§3§ दूत घटोत्कचम् :

इस एकांकी नाटक में अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन जयद्रथ-वध की भीषण प्रतिज्ञा करता है । इधर श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर कौरव पक्ष में भेजकर महाविनाश की सूचना देते हैं । दुर्योधनादि घटोत्कच का घोर अपमान करते हैं । फलस्वरूप उभयपक्षों में युद्ध प्रारंभ हो जाता है ।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 54, बल्देव उपाध्याय

(4) उरु भंगम् :

इस संक्षिप्त एकांकी में भीमसेन और दुर्योधन के अंतिम गदा-युद्ध का मार्मिक चित्रण किया गया है । इसमें करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है । दुर्योधन का करुणापूर्ण मरण दृश्य इस नाटक को दुखान्त बना देता है ।

(5) मध्यम व्यायोग :

इस नाटक में भीम एक ब्राह्मण पुत्र की रक्षा घटोत्कच से करवाता है । भीम पाण्डवों में मध्यम थे, इसीलिए इस नाटक का नाम मध्यम व्यायोग रखा गया है ।[1]

(6) पाँचरात्रम् :

यह तीन अंकों का समवकार है । इसकी भी कथावस्तु महाभारत से ली गयी है । इसमें द्रोणाचार्य के द्वारा पाण्डवों को उनका राज्य दे देने का अनुरोध है ।

(7) बालचरितम् :

यह पाँच अंकों का नाटक है । इसमें श्री कृष्ण जन्म से लेकर कंस वध - पर्यन्त का चरित्र वर्णित है ।

(8) अभिषेक - नाटकम् :

इसकी कथावस्तु रामायण से ली गई है । इसमें बालिवध से लेकर रावण-वध तक की कथा अत्यन्त रोचक शैली में प्राप्त होती है । अन्त में श्री राम के राज्याभिषेक का वर्णन है । राज्याभिषेक के कारण ही इसका नाम अभिषेक रखा गया है ।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् : प्रस्तावना, रामनारायनलाल बेनीमाधव 1961, पृष्ठ-04.

§9§ प्रतिमानाटकम् :

इसकी कथावस्तु रामायण से ली गई है । यह नाटक 7 अंकों का है । इसमें श्रीराम के वनवास से लेकर, रावण वध के अनन्तर राम के अयोध्या लौटने तक की कथावस्तु अभिमत होती है । भरत जब अपने ननिहाल से वापस अयोध्या आने पर अयोध्या के एक प्रतिमा गृह में अपने मृत पूर्वजों की प्रतिमा के साथ दशरथ की भी प्रतिमा देखते हैं तो उन्हें दशरथ के देहान्त का आभास हो जाता है ।[1]

§10§ प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम् :

इसकी कथावस्तु का स्रोत गुणाढ्य कृत बृहत्कथा है । इस नाटक में महामंत्री यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है कि वह अपने राजा उदयन को उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के कारागार से मुक्त करायेगा । वह अपने प्रयत्न में सफल होता है,उसकी प्रतिज्ञा सफल होती है । उदयन प्रद्योत की राजकुमारी वासवदत्ता को अपने मंत्री की सहायता से अपहरण करके ले जाता है और विवाह कर लेता है । यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा पूर्ण होने के कारण ही इसका नाम "प्रतिज्ञा यौगन्धरायण" रखा गया है । इसमें 4 अंक है ।

§11§ स्वप्नवासवदत्तम् :

भास के सभी नाटकों में यह अद्वितीय है और अत्यन्त प्रसिद्ध है । रंगमंच और दृढ़-कथा-बन्ध से यह संस्कृत साहित्य कीअद्वितीय रचना है । यह प्रतिज्ञा यौगन्धरायण नाटक का उत्तर भाग प्रतीत होता है । इसमें मंत्रिवर यौगन्धरायण की दूरदर्शिता का प्रखर परिचय उपलब्ध

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास : जय किशनलाल खण्डेलवाल, पृष्ठ-50.

होता है । अपनी दूरदृष्टि के कारण योगन्धरायण वासवदत्ता के जल जाने का प्रचार फैला देता है और उदयन का दूसरा विवाह मगध की राजकुमारी पद्मावती से करा देता है और फिर मगधराज की सहायता से कौशाम्बी का नष्ट राज्य पुनः प्राप्त कराने में सफल होता है ।[1]

§12§ अविमारकम् :

इस नाटक में 6 अंक हैं । इसमें कुन्ती भोज की रूपवती कन्या कुरंगी के साथ राजकुमार अविमारक के प्रेम विवाह का, मनोहर वर्णन है।

§13§ चारुदत्तम् :

इसके अभी तक 4 अंक प्राप्त होते हैं । वसन्त-सेना और चारुदत्त के प्रणय को अत्यन्त कोमलता के साथ रूपायित किया गया है । यह परवर्ती शूद्रक के मृच्छकटिकम् नाटक का मूलस्रोत प्रतीत होता है ।

भास का कृतित्व :

कविवर भास का कृतित्व उपर्युक्त 13 नाटकों पर आधारित है किन्तु भास ने अपने उक्त 13 नाटकों में से किसी की प्रस्तावना में रचनाकार के रूप में अपना नामोल्लेख नहीं किया है जिससे कतिपय विद्वान् उक्त 13 नाटकों के प्रणेता के रूप में संदेह करते हैं जो समीचीन प्रतीत नहीं होता है ।

सुदूर प्राचीन काल में भारतीय साहित्यकारों की यह परम्परा रही है कि वे अपने नाम के प्रचार, प्रसार और आत्म श्लाघा से दूर रहते थे । फिर भी परवर्ती साहित्यकारों और काव्यशास्त्रियों के ग्रन्थों और कृतियों में कविवर भास के काव्यत्व की प्रशंसा में जो निरन्तर उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनसे भास के कृतित्व पर प्रकाश पड़ता है ।[1]

1. बुलेटिन आफ स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज, जे0आर0ए0एस0 1919, पृ0-233 तथा पृष्ठ [illegible], संस्कृत साहित्य का इतिहास-उपाध्याय, पृ0-312

कालिदास,बाणभट्ट, प्रसन्नराघवकार जयदेव, काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी, नाट्य दर्पणकार रामचन्द्र और गुणचन्द्र वाक्पति राज, वामन और अभिनव गुप्त राजशेखर आदि भास के परवर्ती कवियों और आचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थों में नाटककार भास का उल्लेख कर भास के उक्त नाटकों के प्रणेता के रूप में मोहर लगा दिया है ।[1]

काव्य मीमांसाकार राजशेखर भास को "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक का प्रणेता मानते हैं और यही नहीं वे भास के नाटक चक्र का उल्लेख भी करते हैं । राजशेखर भास के अद्भुत नाट्य कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा भी करते हैं, आलोचकों ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटकम् की अग्नि-परीक्षा की लेकिन यह नाटक 'अदग्ध' ही रहा । इसके अतिरिक्त अन्य नाटक भी नाट्यकला की दृष्टि से इसी प्रकार भास की मौलिकता का परिचय देते हैं, अतः गणपति शास्त्री द्वारा प्राप्त समस्त 13 नाटक कविवर भास विरचित ही प्रतीत होते हैं । दूसरी बात यह है कि सप्तम शताब्दी ई0के कवि बाणभट्ट ने उनके नाटकों के सम्बन्ध में कहते हैं कि भास के नाटक सूत्रधार से प्रारंभ होते हैं ।[2] देखने पर विदित होता है कि उक्त 13नाटक सूत्रधार से ही प्रारंभ होते हैं । अतः इन नाटकों के प्रणेता भास के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है ।

प्रसन्न-राघवम् के प्रणेता जयदेव कविकुल गुरु कालिदास के साथ भास का गौरवपूर्ण उल्लेख करते हैं । रमणी के हास की भाँति आह्लादकता

---

1. भास-नाटक-चक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
   स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥राजशेखर,काव्यमीमांसा,पृ0-50
   - संस्कृत साहित्य का इतिहास,पृष्ठ-515 उपाध्याय
   - थामस: प्लेज आफ भास,जे0आर0ए0एस0-1922,पृ0 79
2. सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः, सपताकैर्यशो लेभे भासो देव कुलैरिव
   चौखम्बा विद्या भवन,हर्ष-चरितम्. 1·15 पृष्ठ-08.

इन सभी नाटकों में प्रतीयमान है, इसलिए ये भास की कृति प्रतीत होते हैं[1] इसी तारतम्य में काव्यादर्श के प्रणेता आचार्य दण्डी भास विरचित नाटकद्वय चारुदत्तम् 1·19 और बालचरितम् 1·15 का, अपनी उक्त कृति में भास का नामोल्लेख करते हुए एक श्लोक का उद्धरण देते हैं ।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि, वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुष सेवेव, दृष्टिर्विफलतां गता ॥

चारुदत्तम 1·19 एवं बाल चरितम् 1·15

इससे प्रतीत होता है कि इन नाटकों के प्रणेता भास हैं, 'नाट्यदर्पण' के प्रणेता रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र ने स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रणेता के रूप में भास का ही उल्लेख किया है तथा स्वप्नवासवदत्तम् के चतुर्थ अंक के निम्नांकित श्लोक का उद्धरण भी दिया है ।[2]

भासकृत नाटकों में प्राय: 'अग्निदाह' का प्रकरण मिलता है, इसी के आधार पर वाक्पतिराज ने अपनी कृति 'गउडवहो' भास को ज्वलनमित्र के रूप में अभिहित किया है । यथा-

"भासे ज्वलन मित्रे कुन्तीदेवेव यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारीचन्द्रे च आनन्द: ॥"

गउडवहो - गाथा 800

अत: इस उल्लेख से भी यह प्रतीत होता है कि उक्त 13 नाटकों के प्रणेता कविवर भास ही हैं ।

---

1. भासोहास: कविकुल-गुरु:, कालिदासो विलास:, प्रसन्नराघवम् 1·22 चौखम्बा प्रकाशन 1965
2. यथा भास कृते स्वप्न वासवदत्ते शेफालिका शिलातल मवलोक्य वत्सराज:
पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥ नाट्यदर्पण, पृ० 35
स्वप्न-वासवदत्तम् 4·4, पृष्ठ 120.

इधर प्रसिद्ध काव्यशास्त्री वामन ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति' में स्वप्नवासवदत्तम् नाटकम् के 1·2 श्लोक तथा प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् के 4·2 श्लोकों का आदर के साथ समुद्धृत किया है। काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में भास के नाटकों के भिन्न-भिन्न श्लोकों के उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि उक्त 13 नाटकों के प्रणेता कविवर भास हैं, इसीलिए संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में अविच्छिन्न रूप से निरन्तर उल्लेख प्राप्त होते हैं ।[1]

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा प्राप्त तथा त्रिवेन्द्रम की अनन्त शयनम् ग्रन्थमाला में प्रकाशित 13 नाटकों के अनुशीलन और परि-शीलन से विदित होता है कि प्राय: सभी नाटकों में यत्र तत्र व्याकरण-शास्त्र के नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया गया है । सभी नाटकों में अनुष्टुप छन्दों का सर्वाधिक प्रयोग तथा दण्डक और सुवदना आदि अप्रचलित छन्दों का सामान्यतया प्रयोग प्राय: सभी में प्राप्त होता है । इन नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का उल्लेख पाया जाता है ; इसके अतिरिक्त प्राय: सभी नाटकों में मुद्रालंकार अर्थात् मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में ही नाटक के प्रमुख पात्रों का परिचय उपलब्ध होता है और प्राय: सभी नाटकों में पताका स्थानक का समावेश किया गया है । इन नाटकों में प्ररोचना अर्थात् लेखक तथा नाटक के नामों का उल्लेख नहीं मिलता है । जबकि अन्य नाटकों में कवि तथा कृति के नामों के उल्लेखों की परम्परा प्राप्त होती है । नाटकों के अन्त में प्राप्त होने वाले भरत वाक्यों में आश्चर्यजनक

---

1. शरच्छशांक गौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काश पुष्प लवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम् 4·8
काव्यालंकार सूत्र वृत्ति अ0 3·5
यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनाम्, चारुदत्तम् 1·2 काव्यालंकार सूत्रवृत्ति अ0 1·5
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्
प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम् 4·2, का0 सूत्रवृत्ति 1·5.

समानता है और इन नाटकों में परस्पर सर्वाधिक समानता यह हैकि ये सभी 13 नाटक सूत्रधार से ही प्रारंभ होते हैं ।[1] सभी नाटकों की भाषा-शैली, प्रसाद गुण और अलंकार संयोजन समानान्तर रूप से प्राप्त हैं ।

इस मन्थन विमन्थन से यह विदित होता है कि उपर्युक्त 13 नाटक कविवर भास विरचित ही हैं । डॉ० ए०डी०पुसाल्कर ने अपने शोध प्रबन्ध में उक्त विषय पर तथ्यों का विस्तार के साथ निरीक्षण और परीक्षण किया है और सभी 13 नाटकों को भास की कृति माना है ।

उपर्युक्त मत का समर्थन करते हुए प्रो० ए०बी० कीथ का कथन है कि इन 13 प्राचीन नाटकों का विशेषत: भास कर्तृक कहा जाना मुख्यत: राजशेखर के,जो निश्चिय ही लगभग 100ई० के आलोचक और आलोचक और नाटककार हैं, साक्ष्य पर निर्भर है । वे हमें बतलाते हैं कि इस समय,जबकि भास के नाटकों की विशेषज्ञों द्वारा कठिन परीक्षा की गई थी, आलोचना की अग्नि से उनकी स्वप्नवासवदत्तम ही जीवित बचा था । स्वप्नवासवदत्तम् अनेक आलोचकों के निर्णय में निःसन्देह रूप से सबसे श्रेष्ठ ठहरता है,और प्रत्येक दशा में इतना प्रशंसनीय है कि उसमें राजशेखर की गोष्ठी में उक्त ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ होने के रूप में सरलता से सामान्य मान्यता प्राप्त कर ली थी । पुनश्च नाटकों के प्रारंभ के प्रकार के संबंध में व्यामूढ़ कल्पनाओं की विस्तृत राशि से यह तथ्य निकल आता है कि भास के नाटकों के विषय में बाण का यह उल्लेख कि उनका आरम्भ सूत्रधार

---

1. नान्धन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार:
स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्,प्रथम अंक-प्रथम वाक्य
सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटके र्बहुभूमिकै:सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।
हर्ष-चरितम् 1·15
2. भास ए स्टडी - ए०डी० पुसाल्कर, पृ० 35

द्वारा होता है और सब कुछ कर चुकने के बाद, उसका अत्यन्त सरल और स्वाभाविक व्याख्यान इसी स्पष्ट मत में होता है कि वे {अर्थात् बाण उन्हीं {13} नाटकों का उल्लेख कर रहे हैं ।[1]

भास का जीवन :

संस्कृत के अन्य अनेक कवियों की भाँति कविवर भास के जीवन के सम्बन्ध में अद्यावधि निश्चयात्मक रूप से जानकारी देने वाली सामग्री का नितान्त अभाव है । उनके सम्बन्ध में कुछ किंवदन्तियाँ श्रुति-गोचर होती हैं जिनसे भ्रान्ति की ही सृष्टि होती है । एककिंवदन्ती के अनुसार 'भास' 'धावक' थे, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होती है । आचार्य मम्मट के अनुसार 'धावक' सम्राट् हर्षवर्धन के समकालीन थे ।[2] कविवर भास का समय कालिदास के पूर्व माना जाता है और हर्षवर्धन सप्तम् शताब्दी ई0 के हैं । दूसरी किंवदन्ती के अनुसार भास और व्यास के मध्य प्रतिष्ठा का विवाद हुआ था, निर्णय के लिए दोनों के ग्रन्थों को अग्नि में डाल दिया गया था । अग्नि भास के ग्रन्थों को नहीं जला सकी जिससे भास की विजय हुई । इस किंवदन्ती से यह प्रतीत होता है कि भास की तुलना व्यास से की गई है जो इस बात की ओर संकेत करती है कि भास कालिदास के पूर्व-वर्ती हैं ।[3]

एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार भास का नाटक-चक्र जब अग्नि में डाला गया तो अग्नि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक को नहीं जला सका । इसका अभिप्राय यह है कि भास की समस्त कृतियों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' सर्वश्रेष्ठ है।[4]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास:ए0बी0कीथ,अनुवादक मंगलदेव शास्त्री, पृष्ठ- 11,12,13
2. नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः, स्वप्नवासवदत्तम्,प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् प्रथम अंक- प्रथम वाक्य
   सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।।
   हर्षचरितम् 1.15
3. भास ए स्टडी - ए0डी0पुसालकर, पृ0 35
4. श्री हर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्, मम्मट:काव्यप्रकाश,ज्ञानमण्डलप्रकाशन1960

भास के ग्रन्थों का अनुशीलन परशीलन करने के पश्चात् डॉ० ए०डी०पुसाल्कर ने कहा है[1] कि भास एक धर्मभीरु ब्राह्मण थे, वे दक्षिण के नहीं प्रत्युत उत्तर भारत के निवासी थे । 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'बालचरितम्' नाटकों के भरत वाक्यों में वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनका राजा हिमाचल और विन्ध्याचल रूपी कुण्डलवाली पृथ्वी का एकछत्र राज्य करे ।[2] इससे यह प्रतीत होता है कि हिमालय और विन्ध्याचल दोनों पर्वतों के मध्य उत्तरी भारत का ही कोई भाग भास का निवास स्थान था।

देवताओं और यागादिविधियों तथा वर्णाश्रम व्यवस्था में भास की पूर्ण आस्था थी । गाय को वे आदर की दृष्टि से देखते थे । वे किसी राजा के राजपण्डित थे । उन्होंने अपने राजा को राजसिंह के नाम से अपनी कृतियों में अभिहित किया है ; यह विदित नहीं है कि 'राजसिंह' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है या विशेषण के रूप में ?

भास राजघरानों और शाही जीवन से भलीभाँति परिचित थे । वे हास्यप्रिय, विनम्र स्वभाव और प्रत्युत्पन्नमति वाले पण्डित-प्रवर थे । वे मानव स्वभाव और प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी एवं पारखी थे । ऐसा प्रतीत होता है कि उनका पारिवारिक जीवन सुखी था । वे कर्तव्यपरायण पुत्र, साध्वी पत्नी के पति और सन्तान प्रेमी पिता थे । माननीयों का वे मान करते थे और संयुक्त परिवार प्रणाली के समर्थक थे । वे आशावादी और राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत थे । भास न्याय और स्वतन्त्रता के

---

1. ए०डी०पुसाल्कर : भास, ए स्टडी, पृ० 30
2. इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्य कुण्डलाम् ।
   महीमेकातपत्रांकां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥
   स्वप्नवासवदत्तम् : भरत वाक्यम् 6·19.
   बालचरितम् भरत वाक्यम् 5·17

प्रेमी थे और वैष्णव धर्म के अनुयायी थे । उन्होंने संस्कृत साहित्य और अनेक शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था । संक्षेप में वे विपुल व्यक्तित्व के धनी थे ।[1]

भास के नाटकों की संख्या तथा उनके कार्यविषय की विविधता से यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि उनकी प्रतिभा मौलिक थी तथा उनका मस्तिष्क अत्यन्त उर्वर और रचनाधर्मी था ।

भास का रचनाकाल :

संस्कृत के अन्य अनेक कवियों और नाटककारों की तरह कविवर भास के रचनाकाल के सम्बन्ध में नि:सन्दिग्ध-रूप से और निर्णय के साथ,प्रमाण-सामग्री के अभाव में कुछ कह पाना संभव नहीं है,फिरभी उनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध में एक स्थूल रूपरेखा अवश्य खींची जा सकती है ।

भास के आविर्भावकाल की समस्या को हल करने के लिए पूर्व में अनेक प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों ने चिन्तन और मननकिया है, तदनुसार उन्होंने अपने अपने मतमतान्तर स्थापित किए हैं । भास के रचना-काल के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने वाले प्रमुख विद्वानों में प्रथम महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री,डॉ०ए०डी०पुस्तल्कर,श्री हर प्रसाद शास्त्री, डॉ० जायसवाल, स्टेनकोनो, भण्डारकर, जैकोबी, डॉ०ए०बी०कीथ,विन्टर-नित्स और महामहोपाध्याय,पं०रामावतार शर्मा प्रभृति विद्वज्जन हैं । यद्यपि उपयुर्क्त विद्वानों का एतत्सम्बन्धी चिन्तन प्रस्तुत विषय में प्रवेश हेतु 'कूलवाद्धार' की तरह प्रतीत होता है,फिरभी अन्तरंग और बहिरंग प्रमाणों

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, भूमिका- डॉ० प्रभाकर शास्त्री; इण्डिया बुक हाउस,जयपुर-1981, पृष्ठ-8

के परीक्षण के अनन्तर भास के रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार कहा जा सकता है ।[1]

भास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में आज भी मतभिन्नता विद्यमान है किन्तु प्राप्त प्रमाण-सामग्री का संकेत एक विशेष काल खण्ड की ओर संकेत करता प्रतीत होता है ।

सर्वप्रथम कौटिल्य अपनी महान् कृति अर्थशास्त्र में युद्धक्षेत्र में वीरों के उत्साहवर्धनार्थ जिन दो श्लोकों का उद्धरण देते हैं, उनमें से एक "प्रतिज्ञा यौगन्धरायण" नामक नाटक से लिया गया है ।[2] यह सर्वविदित है कि चाणक्य सम्राट चन्द्रगुप्त के आचार्य थे । ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह निश्चित है कि चन्द्रगुप्त 321ई0पूर्व में राजसिंहासन में आसीन हुआ था । कौटिल्य जैसे राजनीति धुरन्धर-प्राप्त महापुरुष द्वारा कविवर भास कृत प्रतिज्ञा यौगन्धरायण नाटक के 4·2 श्लोक का आदर के साथ उध्दरण यह सिद्ध करता है कि चाणक्य के समय तक कविवर भास अत्यन्त प्रख्यात हो चुके थे । चाणक्य का समय 400ई0पूर्वमाना जाता है, इसलिए भास का समय भी 400ई0पू0 के पहले ही होना चाहिए ।

भास के ऐतिहासिक नाटकों में मुख्य रूप से तीन राजाओं की कथावस्तु को आधार बनाया गया है, प्रथम कौशाम्बी के राजा उदयन, दूसरे उज्जयिनी के राजा प्रद्योत और तीसरे मगध के राजा दर्शक । प्रसिद्ध

---

1. संस्कृत नाटक:ए0बी0कीथ,अनुवादक-डॉ0उदयभान सिंह 1965 संस्करण पृष्ठ 86 - 88.

2. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णम्
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेत्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥
अर्थशास्त्र 10·3,प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् 4·2

इतिहासकार विंसेन्ट ए०स्मिथ के अनुसार उपर्युक्त नृपतित्रय समकालिक थे और इनका शासनकाल 475–450ई०पू० था । उक्त प्रमाण के प्रकाश में भास का भी समय चतुर्थ और पंचम शताब्दी के मध्य में सुनिश्चित होता हुआ प्रतीत होता है । भास के अन्य नाटक रामायण और महाभारत की कथा पर आधारित हैं, रामायण और महाभारत का समय छठी शताब्दी ई०पू०और पंचम शताब्दी ई०पू० माना जाता है । इसलिए भास का स्थितिकाल वाल्मीकि और व्यास का पश्चातद्वर्ती काल 475 या 450ई०पू० में होना चाहिए ।

भास विरचित प्रतिमा नाटकम् में इस नाटक का प्रमुख पात्र रावण अपने को जिन शास्त्रों का महापण्डित बतलाता है वे शास्त्र और उनके प्रणेता अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होते हैं । तदनुसार रावण कहलता है कि मै काश्यपगोत्री हूँ । मै सांगोपांग वेदों का अध्येता हूँ, मानवीय धर्मशास्त्र, महेश्वर योगशास्त्र, बृहस्पति प्रणीत अर्थशास्त्र, मेधातिथि प्रणीत न्यायशास्त्र और प्राचेतस श्राद्धकल्प का ज्ञाता हूँ ।[1]

इसमें उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र मनुस्मृति का सूचक नहीं है,प्रत्युत धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा विरचित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। गौतम का स्थितिकाल 600ई०पू० माना जाता है । इसी प्रकार माहेश्वर योगशास्त्र अद्यावधि विदित नहीं है, जो अत्यन्त प्राचीन परिलक्षित होता है । सम्प्रति, प्राप्त पातंजल योगशास्त्र है जिसका रचनाकाल द्वितीय शताब्दी ई०पू० है । ऐसे ही बृहस्पति विरचित अर्थशास्त्र का भास द्वारा

---

1. रावण:- भो: काश्यपगोत्रोऽस्मि । सांगोपांगं वेदम् अधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रम्, माहेश्वरं योगशास्त्रम्,बार्हस्पत्यं मर्थशास्त्रम् प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च । प्रतिमानाटकम् -रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स-1995संस्करण,अंक-5,पृ०-68

उल्लेख यह सिद्ध करता है कि कविवर भास कौटिल्य से पूर्ववर्ती थे, अन्यथा वे बृहस्पति के अर्थशास्त्र के स्थान पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख करते। बृहस्पति का अर्थशास्त्र आज भी विदित नहीं है जो कोई अति प्राचीन अर्थशास्त्र रहा होगा। अतः प्रतिमानाटकम् के उपर्युक्त उद्धरणों से यही प्रमाणित होता है कि भास लगभग 400ई0पू0 से 600ई0पू0 के मध्यान्तर में रहे होंगे।

भास विरचित 'चारुदत्तम्' नाटक का प्रभाव शूद्रक के मृच्छकटिकम् नाटक पर स्पष्टरूप से दिखाई देता है। इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार शूद्रक का समय 220ई0पूर्व से 197ई0पू0 है। अतः भास का रचनाकाल इसके पूर्ववर्ती होना चाहिए।[1]

डॉ0 ए0डी0पुसाल्कर के अनुसार भास के नाटकों में व्यक्त सामाजिक अवस्था मौर्यकाल की सामाजिक अवस्था के सदृश है, इसमें भी भास का समय चतुर्थ या पंचम शताब्दी ई0पू0 निश्चित होता है।[2]

इधर कविकुल-गुरु-कालिदास अपने प्रसिद्ध नाटक मालविकाग्निमित्रम् में भास के कवित्व और प्रबन्ध की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ये कालिदास ई0पू0 प्रथम शताब्दी या चतुर्थ शताब्दी ई0 गुप्तकाल से पूर्ववर्ती हैं।[3] कविवर बाण ने तो भास के

---

1. प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम्; भूमिका, डॉ0 प्रभाकर शास्त्री, पृ0 11
   इण्डिया बुक हाउस, जयपुर 1981.
2. भासः ए स्टडी, पृष्ठ 15, ए0डी0पुसाल्कर.
3. प्रथित यशसां भास सौमिल्ल कवि पुत्रादीनाम् प्रबन्धानतिक्रम्य
   वर्तमान कवेः कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमानः।
   मालविकाग्निमित्रम् , पृ0 6.

कवित्व की एक स्वतंत्र श्लोक में भूरि भूरि प्रशंसा की है ।[1]

इस अनुशीलन परिशीलन से और अनेक विद्वानों से प्राप्त बहुमतों से यह निष्कर्ष प्रस्फुटित होता है कि कविवर भास कौटिल्य कालिदास, शूद्रक और बाण भट्ट आदि के पूर्ववर्ती तथा चतुर्थ या पंचम शताब्दी ई0पू0 के प्रख्यात नाटककार थे । यद्यपि डॉ0कीथ 300ई0 के आसपास ही भास का रचनाकाल मानने के पक्षधर हैं ।[2]

भास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

भास का व्यक्तित्व और कृतित्व महान् है । उनकी कृतियों के अध्ययन से विदित होता है कि वे वेद वेदांग, धर्म-शास्त्र, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र और कला शास्त्र आदि विविध शास्त्रों के अध्येता और वेत्ता थे ।[3] वे काव्य-शास्त्र, अलंकार शास्त्र, व्याकरण शास्त्र के मर्मज्ञ थे । उनकी कृतियों में कविता का उत्कर्ष प्राप्त होता है । 'नाटकान्तं कवित्वम्' के कथनानुसार उनका कवित्व उनके 13 नाटकों में प्रतीयमान है। जो उनके कवित्व का चूडान्त-निदर्शन है ।

आज भी भास अपनी कालजयी रचनाओं के कारण संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम और श्रेष्ठ नाटककार के रूप में विख्यात हैं । विषयवस्तु की विविधता और नाटकों की बहुलता, उनके नाट्य कौशल के ज्वलन्त प्रमाण हैं । सर्वजनसहज सुबोध भाषा, प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी शैली, यथार्थ वर्णन व्यक्ति वैचित्र्य, मिश्रित चरित्र चित्रण, प्रवाहपूर्ण सजीवता और शक्तिमत्ता का पूर्ण एकाधिकार उनके नाटकों की कतिपय प्रमुख विशेषतायें हैं ।[4]

---

1. हर्ष चरितम् 1·15 पृष्ठ 8
2. संस्कृत नाटक : ए0बी0कीथ, पृष्ठ-88, मोतीलाल बनारसीदास, 1965
3. प्रतिमा नाटकम् अंक-5, पृष्ठ 68
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए0बी0कीथ अनुवादक मंगलदेव शास्त्री पृष्ठ 12, मोतीलाल बनारसीदास, 1967

विशुद्ध मौलिकता तथा कल्पना वैचित्र्य के कारण उनके नाटक कहीं-कहीं नाट्य-शास्त्र के निर्धारित नियमों के अनुपालन में भले ही शिथिल हो गए हों फिरभी उनके नाटक संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि हैं । प्रत्येक नाटक की कथावस्तु प्रभावोत्पादक है । घटनाओं द्वारा विकसित करने के लिए उन्होंने ऐसी शैली का अनुगमन किया है कि उनमें स्वभाविकता, गतिशीलता के साथ-साथ रस का सम्यक् एवं समुचित परिपाक होता जाता है । भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्' अनेक आलोचकों के निर्णय में निःसन्देह रूप में सर्वश्रेष्ठ है, और प्रत्येक दशा में इतना प्रशंसनीय है कि उसने राजशेखर की गोष्ठी में नाटकचक्र में सर्वश्रेष्ठ नाटक होने का गौरव प्राप्त कर लिया था ।[1]

कालिदास स्वयं, जो आन्तरिक साक्ष्य से इन नाटकों के साथ स्पर्धा करने का प्रयत्न करते हुए, से दिखाई देते हैं, खेदपूर्वक उस बड़ी कठिनता को स्वीकार करते हैं जिसका अनुभव भास के साथ प्रतियोगिता करने में एक युवक कवि को होना चाहिए । फिरभी कालिदास को छोड़-कर भास सबसे बड़े श्रेष्ठ नाटककार हैं ।[2]

कविवर भास संस्कृत के सर्वप्रथम एकांकी नाटककार हैं । उन्होंने प्रथम बार संस्कृत में अनेक रोचक एकांकी नाटकों की रचना की है- उनके एकांकी निम्न हैं -

{1} उरुभंगम्
{2} दूतवाक्यम्

---

1. भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
   स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
   राजशेखर - काव्य-मीमांसा, पृ0 50
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए0बी0कीथ, पृष्ठ-12, 1967.

(3) दूत घटोत्कचम्

(4) मध्यम व्यायोगम्

यह श्रेय नाटककार भास को जाता है, जिन्होंने महाभारत की लघुतम कथा वस्तु को आश्रय बनाकर उपेक्षणीय घटना संघटन को अपने नैपुण्य और नाट्य-कौशल से पाठकों के लिए रोचक और अभिनेय बना दिया है। यही नहीं भास ने अपनी कृतियों में नाटकीय तत्वों को अभिनव कल्पना से अनुरंजित करके मोहक संजीवनी से ऐसा अनुप्राणित कर दिया है कि नाटक के एक एक तत्व चमक रहे हैं यही नहीं, उनके नाटकों में उनकी कल्पनाशक्ति का सामर्थ्य अवलोकनीय है। उनके नाटकों की सर्वोपरि विशेषता यह है कि जहाँ एक ओर संस्कृत के नाटक अभिनय के अयोग्य हैं, वहीं दूसरी ओर भास के नाटक अभिनेय और संस्कृत रंगमंच के लिए सर्वथा उपयुक्त, सरल और सुबोध हैं।[1]

बहुशास्त्रज्ञ होने के कारण जहाँ एक ओर कविवर भास विपुल व्यक्तित्व के धनी हैं, वहीं दूसरी ओर 13 नाट्य ग्रन्थों के प्रणेता होने के कारण उनका कृतित्व भी महान् और संस्कृत के अन्य नाटककारों की तुलना में महनीय है।

भास के नाटकों की सर्वोपरि विशेषता, उनकी अभिनेयता एवं मंचन के सर्वथा उपयुक्त हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन नाटकों में वर्णनों का विस्तार नहीं है जो अभिनय के लिए अनावश्यक अवहेलनीय हो। कथावस्तु भी अधिक विस्तृत नहीं है, जो कार्यान्विति को बाधित कर सके। ये सब रूपक नाटकीय दृष्टि से चुस्त, व्यवस्थित और सुसंघटित हैं। पात्रों का संवाद

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय,, 1968 संस्करण पृष्ठ 522.

सुचिन्तित सुप्रयुक्त और सुनियोजित है। सभी पात्र प्रयोजनानुसार मितभाषी हैं। इसीलिए भास के नाटक नाट्य शास्त्र की दृष्टि से अभिनेय और आदर्श हैं।

दशरूपक के अनुसार आरोप या अनुकृति के समान होने पर भी वस्तु नेता और रस के भेद से रूपकों में भेद होता है।[1] कथावस्तु की दृष्टि से भास के नाटक रामायण कथा, महाभारत कथा और वृहत्कथा जैसे तीन उपजीव्य ग्रन्थों से सम्बद्ध हैं। रामायण कथा से सम्बन्धित प्रतिमा-नाटक इनका श्रेष्ठ नाटक है। इस नाटक में भास ने एक नवीन कल्पना से कथानक को विस्तार दिया है। देवकुल की कल्पना उस युग की मान्य कल्पना थी। जब प्रत्येक राजा के राजगृह में एक मन्दिर अलग से निर्मित होता था, जिसमें राजा की मृत्यु के पश्चात उसकी पाषाण मूर्ति वहाँ स्थापित की जाती थी। राजगृह के मंदिर में दशरथ की पाषाण मूर्ति देखकर राजकुमार भरत को विदित हो जाता है कि उनके पिता दशरथ दिवंगत हो गये हैं। यह भास की कोरी कल्पना नहीं है, प्रत्युत यह तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। अजातशत्रु तथा बिम्बसार की पुरुषाकृति मूर्तियों से इस तथ्य की पर्याप्त पुष्टि होती है।[2]

कविवर भास नाट्यशास्त्र के निर्धारित नियमों का दृढ़ता के साथ पालन नहीं करते। रंगमंच में बाली का वध इसका निदर्शन है। इस हेतु प्रतिभानाटकम् अवलोकनीय है। नाट्शास्त्र की मान्य परम्परा के अनुसार संस्कृत में दुखान्त नाटक लिखने की परम्परा नहीं है किन्तु भास का

---

1. वस्तु नेता रस स्तेषां भेदक: । दशरूपक 1·11, पृष्ठ 07
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास: बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 523.

का उरुभंगम् संस्कृत का दुखान्त नाटक है । यहाँ भी दुर्योधन का वध रंगमंच में दिखलाकर, भास ने अपने स्वतन्त्र चिन्तन का ही परिचय दिया है और भरत विरचित नाट्यशास्त्रीय नियमों की अवहेलना की है ।

भास के नाटकों में गुणों की प्रचुरता है । यद्यपि कुछ विद्वानों ने उनके नाट्य-दोषों के प्रति भी संकेत किया है । तदनुसार उनके नाटकों में कालान्विति का अभाव खटकता है और कंचुकीय धात्री तथा चेटी आदि साधारण पात्रों का रंगमंच में द्रुततरगति से प्रवेश नाटकीय संयम की सीमा को लाँघ जाता है ।[1] किन्तु गुणों के समूह में एक दोष चन्द्रकिरणों में कलंक की भाँति अदृश्य हो जाता है ।[2]

महान् नाटककार :

कविवर भास की नाट्य कृतियों को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भास एक महान नाटककार थे । विषय वस्तु की विपुलता और नाटकों की बहुलता, उनके महाप्राज्ञ नाटककार होने के प्रबल प्रमाण हैं । उनके नाटकों की भाषा सहज, सुबोध और प्रसाद-गुण-सम्पन्न है । शैली स्वाभाविक होते हुए भी अपनी विशिष्ट महत्ता रखती है । इनकी शैली में व्यंजकता तथा प्रभावोत्पादकता का मणिकांचन-संयोग दिखाई देता है । छोटे-छोटे वाक्यों में गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यंजना अपना विशेष महत्व रखती है । इनके नाटकों में भी लघु विस्तारी और सरल वाक्य प्रयुक्त हुए हैं, इनसे भास सफलता के शिखर पर आसीन हो गए हैं । इनके नाटकों की सरल संस्कृत भाषा देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि

---

1. भास-नाटक-चक्रम् : बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 165
2. एको हि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः ॥ कुमार-संभवम् 1·3

संस्कृत अर्थमेव लोक-व्यवहार की भाषा रही होगी ।। छोटे-छोटे वाक्यों को लोकोक्तियों तथा सूक्तियों से अलंकृत करना भास की शैली का विशिष्ट गुण है ।[1]

नाटककार भास की अलंकार विहीन सरल भाषा प्रभावोत्पादक है और भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है । यही कारण है कि भास के नाटकों के पाठक का हृदय उस ओर बलात् आकृष्ट हो जाता है। नाटकों में उपलब्ध कथनोपकथन भास की विदग्धता और उनके चातुर्य में प्रमाण हैं । फिर जब उक्ति और प्रत्युक्तियों के बीच जहाँ अप्रत्याशित घटना टपक पड़ती हो, वहाँ नाटकीय रसचर्वणा में अत्यन्त मधुरता उत्पन्न हो जाती है । उदाहरण के लिए जब प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में महासेन अपनी महारानी से पुत्री वासवदत्ता के वर के विषय में विचार विमर्श कर रहा होता है तो उसी समय कंचुकीय सहसा प्रवेश कर उदयन का नाम लेता है ।[2] यह उक्ति पाठकों और दर्शकों के हृदय को सहसा झकझोर देती है । ऐसी आकस्मिक उक्तियाँ भास की अपनी विशेषता के रूप में हैं और अन्य नाटकों में इनकी सम्यक् उपलब्धि होती है ।

भास की शैली के तीन प्रमुख गुण हैं - प्रसाद, ओज और माधुर्य । ये तीनों गुण उनके नाटकों में सर्वत्र दिखाई देते हैं । अवस्था तथा समय के अनुसार उनकी शैली में सहसा परिवर्तन हो जाता है जिससे प्रभावोत्पादकता और व्यंजकता में वृद्धि हो जाती है । अपने भावों की व्यंजकता में भास इतने सिद्धहस्त हैं कि कहीं भी विवक्षित भाव दब नहीं पाया । सीमित शब्दों एवं सरल भाषा के द्वारा विवक्षित अर्थ की अभिव्यक्ति,

---

1. भासनाटकचक्रम् : सं० बलदेव उपाध्याय, पृ० 128.

2. एते नानार्थैर्लोभयन्तो गुणैर्माम् ।
कस्तै वै तेषां पात्रतां याति राजा ।। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 1·8
कंचुकीयः - वत्सराजः । वही, पृ० 73

यह कविवर भास की असामान्य और सम्मान्य विशेषता है । मौन भाषण भी भास की शैली का एक अतिरिक्त गुण प्रतीत होता है । अल्प शब्द-प्रयोग के द्वारा अधिकाधिक भावों की अभिव्यंजना के अतिरिक्त मौन में भी अर्थबोध संकलित है, कवि का यह मौन रस तथा भावों की प्रतीति में सहायक है ।[1]

भास की नाट्यकला की सफलता में पात्रों के चरित्र चित्रण का भी विशेष महत्व होता है । इनके नाटकों में अनेकविध चरित्र मिलते हैं, जिनका चित्रण भास ने बड़ी सफलता के साथ अपने नाटकों में किया है । कविवर बाण का इसविषय में यह कहना कि सूत्रधार से आरंभ होने वाले बहु भूमिका वाले पताकायुक्त भास के नाटक देवमन्दिरों की भाँति प्रशंसनीय हैं, भास के नाटकों में बहुविध पात्रों की ओर संकेत करता है ।[2] पर यह बात विशेष महत्व की है कि उनके नाटकों में इतने अधिक पात्रों के होने पर भी एक भी पात्र ऐसा दिखाई नहीं देता जिसे हटाया जा सके ।

नाटककार भास के प्रायः सभी पात्र सामान्य धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं । 'अति सर्वत्र वर्जयत्' इस सिद्धान्त का उन्होंने कभी उल्लंघन नहीं किया है । निम्न पात्रों में भी उन्होंने यथासाध्य गुणों का सन्निवेश किया है ; उच्च पात्रों के विषय में तो कहना ही क्या है । उनके विभिन्न नाटकों में जिन आदर्श पात्रों की सृष्टि हुई है, उनमें भरत आदर्श भाई हैं, वासवदत्ता और पद्मावती आदर्श महारानियाँ और तपस्विनी हैं, सुमन्त्र और यौगन्धरायण आदर्श अमात्य हैं, वसन्तसेना आदर्श गणिका है,

---

1. भास-नाटक-चक्रम् : आचार्य बलदेव उपाध्याय, 1965, पृ० 132.
2. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
बाण - हर्षचरितम् 1·5

और उदयन तथा चारुदत्त आदर्श प्रेमीयुगल हैं । सर्वत्र आदर्श, आदर्श ही है। वे इन पात्रों के चरित्रांकन, अपनी उत्कृष्टता और श्रेष्ठता के लिए सदैव स्मरणीय रहेंगे ।

भास की नाट्यकला श्रेष्ठ और प्रशंसनीय है । इसमें प्रायः सभी अपेक्षित नाट्य तत्वों का समावेश कवि ने किया है । रूपकों में वस्तु, नेता और रस मुख्य रूप से घटक माने जाते हैं ।[1] कथावस्तु के चयन में भास का क्षेत्र व्यापक है, रामायण, महाभारत, बृहत्कथा तथा पुराण साहित्य में प्राप्त कथावस्तु को लेकर ही कवि ने अपने नाटकों की कथावस्तु का गुम्फन किया है । नायकों और नायिकाओं के चरित्र प्रस्थापन में भास की मौलिकता प्रशंसनीय है । रस-परिपाक की दृष्टि से भास के नाटक अपेक्षित उच्चता को संस्पर्श करने में सफल हुए हैं । भास ने नाट्यशास्त्र की परम्परानुसार वीर और श्रृंगार रस को ही प्रधान रस के रूप में प्रस्तुत किया है किन्तु इन्होंने 'प्रतिमानाटकम्' में करुण रस को अंगीरस के रूप में प्रस्तुत किया है ।[2] अन्य सभी रस गौण रूप से यथास्थान प्रस्तुत किए गए हैं । भास हास्य रस की निष्पत्ति में भी निपुण हैं, इसीलिए कविवर जयदेव ने उन्हें कविता-कामिनी का 'हास' कहा है ।[3]

कहना न होगा कि भास के नाटकों में उनका काव्य-कौशल पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुआ है । नाना प्रकार की छन्दोयोजना और अलंकार

---

1. वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः ।, दशरूपक - 1·11, पृष्ठ 07
2. एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा ।
   अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥ दशरूपक-3·33, पृ0 167
3. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
   जयदेव - प्रसन्नराघवम्, पृ0 - 5.

विधान प्रशंसनीय है । उनके नाटकों में उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तर न्यास आदि अलंकारों की छटा अवलोकनीय है ।

नाटकों की अभिनेयता :

भास के सभी तेरह नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नाटक हैं । न तो इनमें वर्णनों का विस्तार है और न शब्दाडम्बर ही है । कथानक, संवाद, पात्र, भाषा शैली, लघु कलेवर आदि सभी दृष्टियों से ये नाटक अभिनय के लिए उपयुक्त और आदर्श हैं । भास का 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक तो अभिनय के लिए सर्वोत्तम नाटक है । पूर्व की भाँति आज भी इस नाटक का मंचन प्रचुरता से होता है । भास के नाटक चक्र में स्वप्नवासदत्तम् के अदग्ध होने की बात इस नाटक की अभिनय की दृष्टि से भी श्रेष्ठता को प्रमाणित करती है । भास का प्रकृति वर्णन स्वाभाविक और मनोहारी है । स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक में वन प्रान्तीय संध्या का वर्णन दर्शनीय है।[1] पक्षीगण नीड़ों में चले गए हैं, मुनिवर स्नान करने के हेतु जल में प्रविष्ट हो गए हैं, सायंकालीन अग्नि प्रज्वलित हो गयी है, धूम तपोवन में चारों ओर फैल रहा है और भगवान् भास्कर अपनी किरणों को समेटकर अस्ताचल में प्रवेश कर रहे हैं ।[2]

कविवर भास के नाटकों में उपलब्ध सुभाषितों के अनुशीलन से विदित होता है कि वे नीतिशास्त्र के प्रखर वेत्ता थे,उन्हें जीवन और जगत्

---

1. खगा वासोपेता: सलिलमव गाढो मुनिजन:
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्त किरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्त शिखरम् ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 1-16

तथा समाज की गति का पूर्ण ज्ञान था । तदनुसार - मनुष्य की भाग्यपंक्ति चक्रार पंक्ति की तरह परिवर्तनशील है ।[1] इसी प्रकार उनके सभी नाटकों में दुर्लभ सुभाषित भरे पड़े हैं जिनसे उनके नीतिविषयक ज्ञान का चित्र रेखांकित किया जा सकता है । अब विस्तार भय से उक्त विषय पर यहीं विराम लिया जाता है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर भास संस्कृत नाट्य-साहित्य क्षितिज के कभी न बुझने वाले ज्योतिपुंज हैं । वे वेद,वेदांग, पुराण,उपपुराण रामायण, महाभारत और बृहत्कथा आदि विविध ग्रन्थों के पंडित काव्य-शास्त्र के अद्वितीय वेत्ता और विपुल नाट्यकृतियों के महान् प्रणेता हैं । वे ऐसे रससिद्ध कवीश्वर हैं जिनके यशरूपी शरीर में जरा और मरण का भय नहीं है ।[2]

'तापसवत्सराजम्' के प्रणेता :

'तापस-वत्सराजम्' नाटक के प्रणेता कविवर अनंग हर्ष मातृराज हैं जिस प्रकार संस्कृत के अन्य कवियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त न होने के कारण उनके जीवन-काल और जन्म स्थान के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ; उसी प्रकार कविशिरोमणि अनंग हर्ष मातृ-राज के सम्बन्ध में भी निश्चयात्मक रूप से कुछ कह पाना संभव नहीं है। फिर

---

1. चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः । स्वप्नवासवदत्तम् 1·4

2. वन्द्यास्ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः ।
येषां नास्ति यशः काये जरामरणजं भयम् ॥
उद्भटस्मार पृ०6

भी कवि के जीवन-काल के सम्बन्ध में कुछ स्थूल रूपरेखा खींची जा सकती है। तापस-वत्सराजम् नाटकम् की प्रस्तावना में कवि ने अपने सम्बन्ध में कतिपय परिचयात्मक बातों का उल्लेख किया है जिससे कवि के जीवनवृत्त पर अति संक्षिप्त प्रकाश डाला जा सकता है ।

प्रस्तावना में नटी-सूत्रधार के संलाप से यह स्पष्ट रूप से विदित है कि 'तापस वत्सराजम्' नाटक के प्रणेता कविवर श्री 'अनंगहर्ष मातृराज' ही हैं । इनके पूज्य पिता का नाम श्री 'नरेन्द्र वर्धन' हैं । यह तत्कालीन राजाओं में तारागण में चन्द्रमा के समान सुप्रतिष्ठित थे । इसलिए कविवर अनंग हर्ष मातृराज राजपुत्र हैं । इनके दो नाम हैं - अनंग हर्ष और मातृराज ।[1] तत्कालीन समाज में कवि की कृति 'तापस वत्सराजम्' के प्रति लोगों में बहुत अनुराग था ।

नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार के कथनानुसार यह कवि उत्तम आचरणवान्, प्रतिक्षण गुणी लोगों को प्रसन्न करने वाला, प्रणयीजनों को प्राण देकर भी प्रसन्न करने वाला और अन्य कविजनों की रचनायें सुनकर रोमांचित होने वाला सहृदय है ।[2] इसके पश्चात् कवि यह भी कहता है कि उसने तापस-वत्सराजम् नाटक की रचना अपनी विद्वन्मण्डली से प्रभावित होकर की है ; कवित्व के दर्प या व्याकुलचित्त से नहीं ।[3] केवल इतना ही

---

1. सूत्रधार: आर्ये, अथकिम् । ननु तस्यैव सकल नरेन्द्र चन्द्रमस:
श्री नरेन्द्रवर्धन सूनो: अनंग हर्षा पर नाम्न: श्री मातृराजस्य
कृतौ कृतानुरागो जन: सम्प्रति ।
तापसवत्सराजम् , प्रस्तावना, पृ० 02

2. सद्वृत्तानुगतो मतो गुणवता माराधनैकव्रतम्
वस्तुं वांछति सर्वदा प्रणयिनां प्राणैरपि प्रीणनम् ।
मात्सर्येण निराकृत: परकृती: श्रुत्वान्यहृत्युत्कै:
रानन्दाश्रुजलप्लवाप्लुत मुखो रोमांचपीनां तनुम् ॥वही, 1*2, पृष्ठ-2

नहीं यह कवि विद्वदगोष्ठियों का प्रवर्तयिता भी रहा है । उसकी विदवद गोष्ठी में पदवाक्य-प्रमाणज्ञ और वेदवेदांग के धुरन्धर विद्वान थे।[1] नाटक के सूत्रधार के उक्त कथनों से यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि यह कवि विद्या-विनय से सम्पन्न था । कवि की कृति तापसवत्सराजम् में जिस प्रेम, सौजन्य और करुणा का निबन्धन किया गया है, वह स्वयं कृतित्व हृदय से प्रसूत अनुभूति का ही मूर्तरूप है ।

कविवर अनंगहर्ष की कृति के अनुशीलन से विदित होता है कि कवि की वाणी घनीभूत प्रेम में सनी हुई है । उसमें सुजनता, सुकोमलता, और हृदयदेश को स्पर्श करने वाले गुण विद्यमान हैं । कवि की प्रशंसा में सूत्रधार ने जो कुछ कहा है, उसमें सत्यता प्रतीत होती है ।

कवि के कवित्व का परिचय तो इस बात से और प्रमाणित हो जाता है कि उसके परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने उसकी कृति 'तापसवत्सराजम्' के पद्यों का बड़े आदर के साथ अपने अपने ग्रन्थों में उद्धरण दिया है । इससे यह प्रतीत होता है कि कवि काव्य-शास्त्र और नाट्यशास्त्र के गहनतम सिद्धान्तों के वेत्ता और अध्येता थे । इसीलिए उसने अपने नाटक में इन सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप प्रदान किया है ।

कविवर अनंगहर्ष मातृराज में कवित्व का बीजरूप संस्कार विशेष तो है ही, लोक-शास्त्र और अपने पूर्ववर्ती काव्य-नाटकादि के अनुशीलन

गत पृष्ठ की पाद टिप्पणी-

3. न कवित्वाभिमानेन न च व्यामूढ-चेतसा ।
रचितं नाटकमिदं स्वगोष्ठीभावितात्मना ॥ तापसवत्सराजम् ।.3

1. पदवाक्य प्रमाणेषु सर्वभाषाविनिश्चये ।
वेदविद्यासु सर्वासु परं प्रावीण्यमागता ॥ तापसवत्सराजम् ।.4

करने से उनमें निपुणता भी कविजनोचित है ।[1]

'तापसवत्सराजम्' नाटक के प्रणेता कवि ने अपने पूर्ववर्ती जिन कवियों और नाटककारों की कृतियों का अनुशीलन परिशीलन किया है, उनमें मुख्य रूप से कविवर भास के त्रयोदश नाटक, कविकुल-गुरु-कालिदास के महाकाव्य और नाटक करुण रस के चित्रण में सिद्धहस्त ललित और सुकुमार कवि भवभूति तथा श्री हर्ष की रचनायें प्रमुख हैं क्योंकि तापसवत्सराजम् नाटक में उक्त कवियों और उनकी कृतियों का प्रभाव परिलक्षित होता है ।[2]

कविवर अनंगहर्ष भारतीय दर्शनशास्त्र एवं धर्मशास्त्र के गम्भीर अध्येता और वेत्ता थे । उनकी कृति को देखने से यह विदित होता है कि वे वैदिक धर्म और जीवन पद्धति पर पूर्ण आस्था रखते थे । तपस्वी जीवन को वे आदर्श मानते थे । प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम का उनके मन में विशेष आदर भाव था। उनकी दृष्टि में प्रयाग सिद्धि क्षेत्र था और पापिण्डों को पवित्र करने वाला था ।[3]

'तापसवत्सराजम्' के अध्ययन से यह भी विदित होता है कि अनंग हर्ष बौद्ध धर्म के प्रति आस्थावान् नहीं थे । इस सन्दर्भ में बौद्ध धर्म की आलोचना करते हुए सांमकायन कहता है कि बौद्ध भिक्षुओं का जीवन बहुत आनन्दमय है ; एक तो पूर्वाह्ण में नित्य प्रति भोजन मिलने से उनका स्वास्थ्य

---

1. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र-काव्याद्यवेक्षणात् ,
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥काव्यप्रकाश 1•3, पृ0-17, 1960

2. अभिज्ञान-शाकुन्तलम् 6•9 एवं तापस-वत्सराजम् 1•19 तुलनीय

3. संरुर्य गता यमुनया सह यत्र गंगा
यत्राटनुवन्ति मुनयः स्वसमीहितानि ।
पापीयसी भवति यत्र परा विशुद्धि:
तं मामितो व्रजतमिष्टफलं प्रयागम् ॥
तापसवत्सराजम् 2•22, रघुवंशमहाकाव्यम् 13 तुलनीय सर्ग में प्रयागवर्णन

ठीक रहता है, मुण्डन से बाल न होने के कारण शिर में खुजली भी नहीं होती है, स्नान जब चाहे किया जासकता है और दूसरे यह बौद्ध धर्म ब्राह्मणत्व जाति की नोक-झोंक से रहित है, इसीलिए धूर्तों ने प्राणियों की भलाई के लिए बौद्ध धर्म को धारण कर लिया है ।[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कविवर अनंग हर्ष तत्कालीन समाज के एक प्रख्यात और लोकप्रिय कवि थे, फिरभी ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में उनके व्यक्तिगत जीवन, रचनाकाल और जन्मभूमि इत्यादि के विषय में सटीक जानकारी का अभाव है किन्तु एक तो "तापस-वत्सराजम्" में गंगा, यमुना, प्रयाग, मगध, कौशल पांचाल आदि का वर्णन उपलब्ध होता है ; नवम् और दशम शताब्दी के काश्मीरी कवि जनों और काव्य शास्त्रियों ने उनकी कृति से कतिपय पद्यों का सादर उद्धरण दिया है, दूसरे "तापसवत्सराजम्" की एकमात्र पाण्डुलिपि शारदालिपि में ही उपलब्ध हुई है, इन सबसे यह संकेत प्रतीत होता है कि नाटककार अनंग हर्ष उत्तरी भारत के निवासी थे ।[2]

रचनाकाल :

कवि के रचनाकाल के सम्बन्ध में यद्यपि निर्णयात्मक रूप से सही जन्मतिथि का उल्लेख संभव नहीं प्रतीत होता है किन्तु कतिपय बहिरंग प्रमाणों के प्रकाश में उनके समय की एक स्थूल रूपरेखा का आकलन किया जा

---

1. पूर्वाह्णे कृतभोजनस्यति करान्नि त्येव नीरोगता ।
   नाकुलिस्त्वक् चादपैति शिरसः स्नानं यदा रोचते॥
   जात्याचार-कदर्थनादि-रहितं ब्राह्मण्यमास्मेच्छया
   धूर्तैः सत्त्वहिताय केऽपिकृतं साधुव्रतं सौगतम् ॥ तापसवत्सराजम् 3·3, पृष्ठ-67
2. तापसवत्सराजम् - प्रस्तावना, साहित्य भण्डार, मेरठ 1969 संस्करण, पृ0 10.

सकता है ।

यह सौभाग्य की बात है कि कतिपय काव्य-शास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में इनके नाटक के श्लोकों का काव्यशास्त्रीय विशेषताओं के उदाहरणं के रूप में उद्धरण दिया है जिससे कवि के रचनाकाल की एक स्थूल रूपरेखा उभर सकती है ।

पूर्ववर्ती कविजनों और आचार्यों की कृतियों की ओर दृष्टि-पात किया जाय तो विदित होता है कि सप्तम शताब्दी ई0के प्रख्यात कवि बाणभट्ट,श्री हर्ष एवं प्रसिद्ध काव्यशास्त्री रूद्रट् और वामन आदि ने नाटककार अनंग हर्ष तथा उनकी कृति आदि का कोई उल्लेख नहीं किया है । इससे यह सिद्ध होता है कि नाटककार अनंगहर्ष की ऊपरी समय सीमा सप्तम् शताब्दी है अर्थात् सप्तम शताब्दी के पूर्व इस कवि की स्थिति काल नहीं हो सकता।

कवि की निम्न समय - सीमा बारहवीं शताब्दी प्रतीत होती है क्योंकि कुमारपाल के सभापण्डित जैन कवि हेमचंद्र अपनी कृति काव्यानुशासन में अलंकारों के प्रसंग में तापस-वत्सराजम् के कतिपय श्लोकों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।[1] जैन कवि हेमचन्द्र का समय बारहवीं शताब्दी का अंतिम भाग माना जाता है ।

इसी प्रकार 12वीं शताब्दी के कविवर जल्हण ने अपनी सूक्ति मुक्तावली में इस नाटक के श्लोक का उद्धरण दिया है ।[2] एकादश शतक के काव्यशास्त्री भोजदेव भी तापस वत्सराजम् नाटक के पद्यों को अपने

---

1. काव्यानुशासनम्, पृष्ठ 40
2. आर्द्रौ भामपरिग्रहेण गुरुणा दूरं समारोपिताम् ।
   तापस-वत्सराजम् 3·17,
   सूक्ति-मुक्तावली ,पृष्ठ-35

ग्रन्थ 'सरस्वती कंठा भरणम्' और 'शृंगार-प्रकाश' में उद्धृत करते हैं ।[1] दशम और एकादश शतक के आचार्यगण मखक, मम्मट और आचार्य कुन्तक प्रभृति विद्वान् अपने अपने ग्रन्थों अलंकार सर्वस्वम्, 'काव्यप्रकाश और वक्रोक्तिजीवितम् में इस नाटक के श्लोकों का उद्धरण देते हैं ।[2]

दशम शताब्दी के कवि और प्रसिद्ध काव्यशास्त्री राजशेखर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्य मीमांसा में 'तापस-वत्सराजम्' नाटक के तृतीय अंक के एक श्लोक का उद्धरण देते हैं, जो निम्नवत् है -

सद्यस्नातजपन्तपो धनजटा: प्राप्तश्रुता: प्रोन्मुखम्
पीयन्तेऽम्बुकणा: कुरंगशिशुभिस्तृणाण्यथा विक्लवै: ।
एता प्रेमभरालसा च सहसा शुष्यन्मुखीमा कुलीम् ।
श्लिष्टांसाति पक्षसम्पुटकृतच्छाया शकुन्त: प्रियाम् ॥[3]

तापस-वत्सराजम् 3·18

इसी प्रकार ध्वनि तत्व के परमाचार्य आनन्दवर्धन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ध्वन्यालोक में तापस-वत्सराजम् नाटक के 2·16 श्लोक का उद्धरण देते हैं ।[4] आनन्दवर्धन का समय नवम् शताब्दी का उत्तरार्धकाल है । इसी तारतम्य में ध्वन्यालोक के प्रसिद्ध टीकाकार अभिनव गुप्त भी इस नाटक के पद्यों का उद्धरण देते हैं ।[5] इस मन्थन विमन्थन से यह प्रतीत होता है कि नाटककार

---

1. सरस्वती-कंठाभरणम्, पृष्ठ 42, शृंगार-प्रकाश, पृष्ठ 30
2. तापस-वत्सराजम्, प्रस्तावना, पृष्ठ 11
3. काव्य-मीमांसा, अध्याय 12, चौखम्बा संस्कृत सीरीज संस्करण 1959 पृष्ठ 208
4. उत्कम्पिनीभय परिस्खलितां शुकान्ता
   ते लोचने प्रतिदिशं विधुरे क्षिपन्ती । तापस-वत्सराजम् 2·16
5. ध्वन्यालोक - लोचन, पृष्ठ 50

अनंग हर्ष मातृराज अष्टम शताब्दी में विद्यमान थे ।

तापस वत्सराजम् की खोज :

तापस-वत्सराजम् नाटक की उपलब्धि का विवरण रोमांचक है । इस नाटक की खोज निकालने का श्रेय श्री यदुगिरि यतिराज सम्पत्-कुमार रामानुज मुनि जी मैसूर को है । कुन्तक के अलंकार ग्रन्थ वक्रोक्ति-जीवितम् के सम्पादनकर्ता ढाका विश्वविद्यालय के संस्कृत-प्रोफेसर डॉ०सुशील कुमार डे ने अपनी प्रस्तावना में सर्वप्रथम यह बतलाया था कि तापस-वत्स-राजम् नाटक की मूल प्रति बर्लिन के एक विश्वविद्यालय में है । इस मूलप्रति की सर्वप्रथम उपलब्धि प्रोफेसर बुल्हर को काश्मीर में हुई थी और इन्होंने इसे इसे बर्लिन के पुस्तकालय में रख दिया था । इस सूचना के आधार पर यतिराज सम्पत् कुमार जी, डॉ०एफ०आटोश्रेडर के परम सौजन्य से इस नाटक की मूल प्रति की छाया प्रति प्राप्त करने में,सफल हो गये । तापस-वत्सराजम् नाटक की यह मूल प्रति शारदा लिपि में अंकित है । यद्यपि नाटक की यह मूल प्रति जीर्ण शीर्ण और यत्र तत्र विखण्डित,त्रुटित एवं अस्पष्ट किन्तु यतिराज सम्पत् कुमार जी ने अपनी निष्ठा, उत्साह और लगन के कारण इस नाटक के सम्पादन कार्य में सफलता प्राप्त की । फलस्वरूप उन्होंने इस नाटक का प्रकाशन मैसूर से सन्-1929ई0 में किया ।

किन्तु इतना सब होते हुए भी इस नाटक के सर्वजन,सुलभ, शुद्ध और परिष्कृत संस्करण का अभाव बना हुआ था । इस अभाव को दूर करने का सराहनीय प्रयास पंजाब विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर द्वय डॉ0देवीदत्त शर्मा और डॉ0इन्द्रदत्त उनियाल ने किया है ।[1]

---

1. तापस-वत्सराजम्, साहित्य भण्डार, मेरठ - 1969.

कहना न होगा कि उक्त दोनों विद्वानों ने अपने अथक परिश्रम से 'तापस-वत्सराजम्' नाटक के सर्वजन-सुलभ संस्करण का प्रकाशन 1969 में मेरठ से किया और पाण्डुलिपि के अनेक त्रुटित स्थलों भाषा के अस्पष्ट भागों आदि का सम्मार्जन और परिष्कार किया । एतत्कार्य हेतु उक्त दोनों ही विद्वान् धन्यवाद के पात्र हैं । अन्यथा प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध का प्रसव असंभव था ।

राजपुत्र होते हुए भी अनंग हर्ष में कवि जनोचित विनम्रता विद्यमान है । वे सचमुच सहृदय, सुकुमार प्रवीण और कालजयी कवित्व के धनी हैं । वे न केवल वेद-वेदांगादि विविध शास्त्रों के वेत्ता थे, प्रत्युत नाट्य-शास्त्र के सिद्धान्तों के पारखी नाटककार थे ।[1] इसीलिए नवम् शताब्दी से लेकर द्वादश शताब्दी तक के प्रमुख काव्य-शास्त्रियों ने अपनी कृतियों में नाटककार अनंग हर्ष के नाटक 'तापस-वत्सराजम्' के पद्यों का उद्धरण उदाहरण के रूप में किया है ।

यद्यपि वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की प्रणयकथा से सम्बद्ध कथा-वस्तु प्राचीन, चर्चित और अन्य स्वनाम धन्य, प्रख्यात भास एवं हर्ष आदि कवियों और नाटककारों की कृतियों का इतिवृत्त रही है । इस कारण इस चर्चित कथावस्तु को अपने नाटक का वर्ण्यविषय बनाना पिष्टपेषण ही कहा जायेगा फिर भास जैसे इस विषय-वस्तु के प्रख्यात और चर्चित नाटककार और रत्नावली नाटिका के प्रणेता हर्ष जैसे रसिक कवि के होते हुए उसी कथानक को संगृहीत कर लेखनी चलाना और प्रसिद्धि एवं समादर प्राप्त कर पाना सचमुच विद्वान् कवि अनंग हर्ष मातृराज के ही वश की बात है ।

---

1. तापस-वत्सराजम् 1·2,3,4, पृष्ठ 2;3.

अनंग हर्ष का नाट्य-कौशल :

उदयन - वासवदत्ता कथावस्तु की सम्बद्ध साहित्य से तुलना करने पर विदित होता है कि नाटककार अनंगहर्ष ने अपने नाटक तापस-वत्सराजम् को नाटकीय सफलता प्रदान करने के लिए इस चर्चित कथानक को अनेक स्थलों में नवरूप प्रदान किया है ।[1] यह कहना न होगा कि इस कथा के प्रमुख पात्र, उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती, यौगन्धरायण और रुमण्वान् तथा मुख्य घटनाक्रम, आरुणि का आक्रमण, लावणक दाह, वासवदत्ता का पद्मावती के पास न्यास के रूप में रखा जाना पद्मावती-परिणय और आरुणि का पराजय इत्यादि को छोड़कर शेष सब कविवर अनंग हर्ष मात्र राज की अभिनव उद्भावना और कल्पना से प्रसूत हैं ।

जैसा कि 'तापस वत्सराजम्' नाटक के नाम से विदित होता है कि नायक वत्सराज उदयन और नायिका पद्मावती का तापस तथा तपस्विनी बन जाना कवि की मौलिक कल्पना का परिणाम है । अन्य घटनाचक्र इसी कल्पना से सम्बद्ध और अभिप्रेत प्रयोजनानुसार है ।

नाटक के प्रथम अंक की कथावस्तु का गुम्फन कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचायक है, उत्तर रामचरितम् नाटक के प्रथम अंक की भाँति इस नाटक का प्रथम अंक भी लगभग वही महत्व रखता है, जैसा कि उत्तर रामचरितम् के प्रथम अंक का है ।[2]

---

1. तापस-वत्सराजम् - प्रथम अंक, पृष्ठ 8-36
2. उत्तर-रामचरितम् - प्रथम अंक, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-1905 पृष्ठ 08 से 44.

सूत्रधार और नटी के सार गर्भित वार्तालाप के साथ 'तापस-वत्सराजम्' नाटक का शुभारंभ होता है । इसके पश्चात् कंचुकी तथा चेटी की चिन्ता के साथ यह विदित होता है कि वत्सराज उदयन विलासिता में निमग्न है और इसलिए राज्यकार्य उपेक्षित हो रहा है, उधर पांचाल नरेश आरुणि वत्सदेश पर आक्रमण की योजना बना रहा है । वत्सदेश में कौमुदी महोत्सव की तैयारियाँ चल रहीं हैं किन्तु महामंत्री यौगन्धरायण राज्य की चिन्ता से चिन्तित हैं ।

इसी अवसर पर एक शिष्य अपने स्वगत कथन के द्वारा सूचित करता है कि राज्य की सुरक्षा से चिन्तित मंत्रियों द्वारा एक राजनयिक योजना तैयार की जा चुकी हैं । योजनानुसार सांकृत्यायनी की परिव्राजिका के वेश में राजा के चित्र के साथ राजगृह भेज दिया गया है । इधर महामंत्री यौगन्धरायण महासेन प्रद्योत के पास जाकर राज्य पर आसन्न संकट सूचित कर देता है और उनसे वासवदत्ता के लिए पत्र लिखवा लेता है । लामकायन ब्राह्मण साधु के वेश में प्रयाग भेजा जाता है ।[1] यही शिष्य लामकायन और मन्त्रियों के मध्य संदेशवाहक का काम करता है । राजा के मित्र विदूषक को भी इसके कार्य की सफलता हेतु विश्वास में ले लिया जाता है । उसे सम्पूर्ण योजना की जानकारी दे दी जाती है । इधर मगधेश्वर से भी इस सम्बन्ध में बातचीत की जा रही है । अन्य लोगों से इस योजना को गुप्त रखा गया है ।

अपनी योजना की सफलता के लिए महामंत्री यौगन्धरायण बहुत सक्रिय है, तदनुसार वह अपनी इस वृहत योजना को महारानी वासवदत्ता

---

1. तापस-वत्सराजम्, प्रथम अंक पृष्ठ 13-23.

से निवेदन करता है और राज्य में आसन्न संकट की ओर संकेत करता है। वह इस सम्बन्ध में रानी वासवदत्ता से सहयोग देने की प्रार्थना करता है और राज्य की रक्षा हेतु उनके योगदान की अपेक्षा करता है। इसी समय पूर्वनिर्धारित योजनानुसार महासेन प्रद्योत का पत्रवाहक प्रवेश करता है। वासवदत्ता को उसकेपिता प्रद्योत का पत्र हस्तगत कराया जाता है-जिसमें राज्य की रक्षा के लिए उल्लिखित उनके उत्सर्ग, त्याग और बलिदान की यौगन्धरायण द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। वासवदत्ता मानसिक रूप से तैयार हो जाती है।[1] इसके बाद रानी वासवदत्ता के धैर्य की परीक्षा के लिए विलासी राजा उदयन का अन्तःपुर में प्रवेश कराया जाता है, इधर वासवदत्ता भावी वियोग की योजना से दुखी होकर आत्म प्रसाधन भी नहीं करती हैं, पर चेटी राजा को यह समझाकर कि पिता के यहाँ से पत्र आने के कारण रानी कुछ उदास हैं, सम्पूर्ण स्थिति को संभाल लेती है। इसी बीच राजा को यह सूचना प्राप्त होती है कि जंगल में शिकार योग्य जानवर हैं। इस सूचना के बाद राजा रानी वासवदत्ता से विदा लेता है और शिकार के लिए वन की ओर प्रस्थान करता है।

सम्पूर्ण घटनाचक्र के मन्थन और विमन्थन से यह स्पष्ट रूपसे प्रतीयमान है कि कविवर अनंग हर्ष ने नाटक की कथावस्तु के इस अंश को मनोवैज्ञानिकता और रोचकता प्रदान की है। वासवदत्ता को सहसा इस महान्, त्याग के लिए न कहकर पहले उसे सहज भाव में तैयार किया जाता है। सर्वप्रथम उसके सामने भावी महान् विपत्ति का पूर्वाभास कराया जाता है जिससे कि वह मनानसिक रूप से चिन्तित हो जाती है। इसी बीच पिता के पत्र

---

1. वासवदत्ता - भातु आर्यः, यन्मया यथा कर्तव्यम् ।
तापस वत्सराजम्, पृष्ठ-20.

से उसे कर्तव्य-बोध कराया जाता है । वह अब मानसिक रूप में दु:सह पति-वियोग का सामना करने के लिए यथाकथंचित् तैयार सी प्रतीत होती है । इसी समय राजा का प्रवेश कराकर उसके हृदय की क्षमता का परीक्षण किया जाता है और उन दोनों के सघन अनुराग को प्रकट कर उसके त्याग की महत्ता प्रकट की गई है । यहाँ यह स्मरणीय है कि घनीभूत अनुराग की इस पृष्ठभूमि में भावी विप्रलम्भ की अनुभूति को तीव्रतर किया गया है । इसी समय शबरों को भेजकर राजा को शिकार के लिए वन में ले जाने का सुगम उपाय निकाल लिया जाता है ।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण योजना सुसंगत और मौलिक बन जाती है जिसका कि 'स्वप्नवासव दत्तम्' नाटक में अभाव दिखाई देता है । यहाँ पर तो वासवदत्ता प्रारंभ में ही मगध के तपोवन के मार्ग में अपने भाग्य से असन्तुष्ट सी दिखाई देती है ।[1]

इसी नाटक के दूसरे अंक के अनुशीलन से विदित होता है कि पूर्व प्रदर्शित प्रेम के अनुरूप ही नायक उदयन, महारानी वासवदत्ता के अग्नि में विदग्ध होकर स्वर्गीय हो जाने पर पशु, पक्षी, लता और वनस्पतियों के मध्य शोकाकुल होकर करुण विलाप करते हैं ।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर अनंग हर्ष यहाँ पर अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक और रघुवंश महाकाव्यम् के अजविलाप से प्रभावित हुए हैं ।[3]

अब जीवन से निराश और विरक्त उदयन को मंत्री रुमण्वान् प्रयाग ले चलने की योजना बनाता है । प्रयाग में सांकृत्यायन नामक ब्राह्मण

---

1. वासवदत्ता - तथा परिश्रम: परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभव: स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अंक, पृष्ठ-11.
2. तापसवत्सराजम् 2*4,5,6,11,13.
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक-4, रघुवंशमहाकाव्यम् 8*10,11,15.

भिक्षु के वेश में पहले से ही विद्यमान है जो वहाँ पर राजा को वासवदत्ता की प्राप्ति के लिए पद्मावती से विवाह कर लेने का उपदेश देता है ।

नाटककार अनंग हर्ष ने नाटक के तृतीय अंक का गुम्फन भी अपने कथानक की संगति बैठाने के लिए ही किया है । तृतीय अंक के विष्कम्भक के व्याज से, लामकायन और उसके शिष्य के मध्य हो रहे वार्तालाप से यह सूचना प्राप्त होती है कि पद्मावती सांकृत्यायनी के प्रभाव में पूर्ण रूप से आ गई है । अब वह पद्मावती घर छोड़कर राजभवन के उद्यान में वत्सराज उदयन की मूर्ति बनाकर उसके पूजन अर्चन में समय व्यतीत करती है । यौगन्धरायण वासवदत्ता के साथ वहीं पहुँच रहा है और इधर से रुमण्वान् राजा के साथ प्रयाग आ रहा है । राजा के साथ विदूषक भी हैं । रुमण्वान् युक्तिपूर्वक राजा की रक्षा का भार विदूषक को सौंप देता है और स्वयं राज्य की रक्षा और युद्ध की तैयारी हेतु राजधानी कौशाम्बी आ जाता है।

इसके अनन्तर भी कवि ने कथावस्तु की संगति के लिए अनेक नूतन घटनाओं की सृष्टि की है । सांकृत्यायनी अपनी योजनानुसार - वियोग - विह्वल पद्मावती को नायक से मिलन हेतु सान्त्वना देती है तो दूसरी ओर वह अप्रत्यक्ष रूप से वासवदत्ता को भी धैर्य से प्रतीक्षा करने और कालयापन करने की सलाह देती है । विरह - व्याकुल पद्मावती द्वारा लता-पाश द्वारा आत्महत्या की चेष्टा भी कवि की मौलिक उद्भावना है ।

उदयन और वासवदत्ता दोनों के द्वारा चिता में जलकर आत्मदाह की घटना को कवि ने जिस नाट्य कौशल से प्रस्तुत किया है, वह उसकी मौलिकता और उसकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचायक है । वासवदत्ता द्वारा आत्मदाह की चेष्टा का उल्लेख यद्यपि कथा सरित्सागर

में प्राप्त है किन्तु उदयन द्वारा आत्मदाह की चेष्टा का उल्लेख अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने उदयन - वासवदत्ता की चर्चित और भूयोभूय: पिष्टपेषित - कथावस्तु में कतिपय मौलिक उद्भावनाऐं प्रस्तुत कर अपने यशस्वी नाट्य कौशल का ही परिचय दिया है ।

'तापस वत्सराजम्' नाटक के साथ एक दुर्योग यह जुड़ा रहा है कि यह एक अत्यन्त सुन्दर, सफल और प्रशस्त नाट्य-रचना होते हुए भी इसका शीघ्र प्रकाशन नहीं हो पाया, इसलिए साहित्यिक मनीषियों का ध्यान इस ओर बहुत विलम्ब से केन्द्रित हो सका किन्तु नवम शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक यह रचना अत्यन्त चर्चित रही है, इसीलिए तत्कालीन काव्य-शास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में इस नाटक के पद्यों का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है । किन्तु बारहवीं शताब्दी के पश्चात् बीसवीं शताब्दी तक विस्तृत 800 वर्ष के दीर्घकाल तक इस नाटक का न तो कोई उल्लेख प्राप्त होता है और न ही कोई प्रकाशित प्रति ही उपलब्ध होती है ।[1]

यह कहना न होगा कि जिस प्रकार भास के नाटक दीर्घकाल तक अप्राप्त रहे और चिरकाल बाद 1902 में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री को त्रावणकोर, राज्य में हस्तगत हुए यही कुछ बात 'तापस वत्सराजम्' नाटक की उपलब्धि के सम्बन्ध में कही जासकती है । डॉ0एस0के0डे की सूचना पर यतिराज सम्पत् कुमार जी ने बर्लिन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से इस नाटक की पाण्डुलिपि की छाया प्रति को हस्तगत करने में सफलता प्राप्त की थी ।

---

1. तापस-वत्सराजम् - प्रस्तावना, पृष्ठ 24.

यह सर्वविदित है कि महाकाल की पाचन शक्ति महान् होती है,वह सभी को अपनी कभी न बुझने वाली जठराग्नि में विदग्ध कर देता है किन्तु जब काल के इस कठोर प्रहार को सहते हुए कुछ रचनायें आगे बढ़ जाती हैं,वे निश्चय ही कालजयी रचनायें होती हैं । 'तापस-वत्सराजम्' एक ऐसी ही कालजयी रचना है । इसमें निश्चित रूप से सत्य,अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त हुआ है । सत्य ही काव्य का वह अमर तत्त्व है जिससे काव्य कालजयी और अमर कहा जाता है । यही सत्य, शिव और सुन्दर होकर राष्ट्र और समाज में जीवन्त रहता है ।[1] उदयन और वासवदत्ता का यह प्रणय सचमुच अलोक-सामान्य और युगयुगान्तरव्यापी है । वह मानव के अन्तर्मन की अतल गहराइयों में प्रविष्ट होकर आज भी रसानुभूति का हेतु बना हुआ है, यह प्रणय-गाथा वस्तुतः शाश्वत सत्य और अमर है । इस अमर प्रणय-कथावस्तु पर आधारित 'तापस-वत्सराजम्' नाटक में कवि का यह प्रतिपादन कि प्रेम का उत्सव,कभी समाप्त नहीं होता', 'सत्य प्रेम' को ही रेखांकित करता है ।[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अनंग हर्ष प्रणीत तापस वत्सराजम्' उदयन-वासवदत्ता के अमर प्रणय की भाँति सुकोमल,सुकुमार एक कालजयी नाट्यकृति है । इसमें विरह और तप से परिपूत,अनल से अदग्ध 'सत्यप्रेम' कापावन और ललित मोहन रूप दर्शनीय है ।

-0-

---

1. धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
   भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥ स्वप्नवासवदत्तम् 1.13

2. किमथवा प्रेमासमाप्तोत्सवः ।
   तापस-वत्सराज-चरितम् 1.14.

तृ ती य - अ ध्या य

विषय-वस्तु का नाट्य-शास्त्रीय विवेचन

तृतीय - अध्याय

विषयवस्तु का नाट्य - शास्त्रीय विवेचन

दृश्यकाव्य को नाटक, रूपक और रूप इत्यादि नामों से अभिहित किए जाने की परम्परा रही है। धीरोदात्तादि नायकों,नायिकाओं तथा अन्य पात्रों के आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक इन चतुर्विध अभिनयों के द्वारा विहित अवस्थानुकरण से जो नटों में "तादात्म्यापत्ति" होती है, इसीलिए इसे नाटक कहा जाता है।[1] यही नाटक दृश्यमान होने के कारण 'रूप' और नट में रामादि की अवस्था के आरोप होने के कारण 'रूपक' भी कहा जाता है।[2] जो रसों पर आश्रित होता है और दस प्रकार का होता है।[3]

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि अनुकरण प्रधान होने के कारण रूपकों में अभेद होने से दस प्रकार के भेद कैसे संभव हो सकते हैं, इसके उत्तर में यह कथनीय है कि कथावस्तु, नायक और रस के भेद से रूपकों में परस्पर भेद है।[4]

वस्तुभेद :

रूपकों में मुख्य रूप से कथावस्तु दो प्रकार की होती है। प्रथम, आधिकारिक कथावस्तु और दूसरी प्रासंगिक कथावस्तु। इसमें जो मुख्य कथावस्तु है,उसे आधिकारिक कथावस्तु कहते हैं, तथा इस अधिकारिक

---

1. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् - दशरूपक 1·7
2. रूपं दृश्यतयोच्यते, रूपकं तत्समारोपात् । दशरूपक 1·7
3. दशधैव रसाश्रयम् , दशरूपक, पृष्ठ 4
4. वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः, दशरूपक 1·11.

कथावस्तु के अंग-रूप में जिन उपकथाओं का समावेश होता है, उन्हें प्रासंगिक कथावस्तु कहा जाता है, यथा रामायण कथा में विभीषण अथवा सुग्रीव - वृत्तान्त या ऐसी कोई अन्य कथा में प्रासंगिक कथावस्तु कही जाती है ।[1]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषयीभूत 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'तापसवत्सराजम्' नाटकों में प्राप्त कथावस्तु के अनुशीलन से विदित होता है कि इन दोनों नाटकों की आधिकारिक या मुख्यकथावस्तु एक ही है और वह है, उदयन-कथा' । आधिकारिक कथावस्तु के सम्बन्ध में आचार्यों का कथन है कि फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहा जाता है और उस फल या फलभोक्ता के द्वारा फलप्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त अथवा कथा आधिकारिक पदवाच्य होती है ।[2] प्रस्तुत सन्दर्भ में पांचाल नरेश आरुणि का पराभव शत्रु से मुक्त राज्याधिकार पुनः प्राप्ति मगध राजकुमारी पद्मावती से विवाह तदनु वासवदत्ता की पुनः प्राप्ति और मगध नरेश दर्शक से मैत्री इत्यादि 'उदयन-कथा' का फल है, इसके स्वामी या भोक्ता स्वयं उदयन हैं । अतः प्रारम्भ से लेकर अन्त तक यौगन्धरायण रूमण्वान् के नीति कौशल से शत्रु - पराभव, पुनः महारानी वासवदत्ता और विनष्टराज्य के भूभाग की प्राप्ति और महाराज दर्शक के साथ सुदृढ़ सम्बन्ध - स्थापना आदि तक की कथा आधिकारिक कथावस्तु है ।[3]

---

1. तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासंगिकं विदुः ।
चौखम्बा प्रकाशन, 1967, दशरूपक 1·11, पृष्ठ 07
2. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी चतत्प्रभुः -
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादधिकारिकम् ॥ दशरूपक 1·12
3. दृष्टा यूयं निर्जिता विद्विषन्तः
प्राप्ता देवी भूतधात्री च भूयः ।
सम्बन्धोऽभूद् दर्शकेनापि सार्धं
किं दुष्प्रापं यन्न लब्धं भवद्भ्यः । 'तापसवत्सराजम्' 6·9पृष्ठ 229

दशरूपक के अनुसार प्रासंगिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है, प्रथम पताका और दूसरी प्रकरी । जो कथा या वृत्त दूसरे अर्थात् आधिकारिक कथा के प्रयोजन के लिए होती है किन्तु प्रसंगानुसार जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध होता है, वह प्रासंगिक वृत्त है । प्रासंगिक इतिवृत्त का प्रमुख ध्येय आधिकारिक वृत्त की फल निर्वहणता में सहायता प्रतिपादित करना है, किन्तु प्रसंगतः उसका स्वयं का भी फल होता है । यथा सुग्रीव कथा का फल या प्रयोजन बालि वध तथा राज्य लाभ है तथा विभीषण-कथा का प्रयोजन लंका के राज्य की प्राप्ति है । यह प्रासंगिक इतिवृत्त भी दो प्रकार का होता है, प्रथम पताका और दूसरी प्रकरी । जो प्रासंगिक कथा अनुबन्ध सहित होती है तथा रूपक में दूर तक चलती रहती है, वह पताका कहलाती है तथा जो कथा केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है, वह 'प्रकरी' कहलाती है । रामायण की कथा में सुग्रीव और विभीषण का वृत्तान्त पताका है, वह दूर तक चलती है । वह मुख्य नायक के पताका चिन्ह की तरह आधिकारिक कथा तथा मुख्य नायक की पोषक होती है, किन्तु पताका का नायक भिन्न होता है, वह पताका नायक कहा जाता है । रामायण में छोटे-छोटे वृत्त प्रकरी हैं यथा श्रमणा शबरी - वृत्तान्त ।[1]

प्रासंगिक कथावस्तु की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्तम् एवं तापस वत्सराजम् में प्राप्त आधिकारिक इतिवृत्त उदयन कथावस्तु के अनुशीलन से विदित होता है कि इन नाटकों में दोनों ही कवियों ने प्रासंगिक कथावस्तु का संनिवेश नहीं किया है । पताका और प्रकरी न तो 'स्वप्न-वासवदत्तम्'

---

1. प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः ।
सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥
दशरूपक 1•13, पृष्ठ-08, चौखम्बा प्रकाशन 1967.

में दिखाई देती है और न ही 'तापसवत्सराजम्' में ही प्राप्त होती है। यहाँ यदि यह कहा जाय कि यौगन्धरायण-वृत्तान्त इस मुख्य कथा का प्रासंगिक इतिवृत्त 'पताका' माना जा सकता है, और यौगन्धरायण नाटक के अन्त तक पताका की तरह उपस्थित रहता है और मुख्य कथा के नायक की सहायता में सदैव तत्पर है किन्तु यहाँ यह अवधेय है कि महामंत्री यौगन्धरायण के सम्पूर्ण व्यापार मुख्यकथा के नायक उदयन की सफलता के लिए समर्पित है। उसका कोई सुग्रीव या विभीषण की भाँति प्रसंगतः अपनी स्वार्थसिद्धि का कोई प्रयोजन नहीं है।[1] इसलिए यौगन्धरायण-वृत्तान्त को 'पताका' नहीं कहा जा सकता। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार प्रासंगिक कथा 'पताका' और 'प्रकरी' का प्रत्येक रूपक में होना कोई अनिवार्य धर्म नहीं है। इन दोनों नाटकों में प्राप्त सभी पात्रों का प्रयोजन वत्सराज उदयन के प्रयोजन की सिद्धि के लिए ही है।

कथावस्तु की दृष्टि से परस्पर साम्य और वैषम्य :

'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'तापस-वत्सराजम्' दोनों ही नाटकों की कथावस्तु का आधार समान है। उदयन और वासवदत्ता की प्रणयकथा ही दोनों नाटकों का प्रतिपाद्य है। गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' इस कथा का मूल स्रोत है। भास और अनंगहर्ष दोनों ही कवियों ने 'बृहत्कथा' से इस कथानक को ग्रहण कर अपने नाटकों की कथावस्तु का गुम्फन किया है। लोकप्रसिद्ध इस कथानक की मुख्य घटना और मूल भाव की रक्षा करते हुए उभय कवियों ने अपनी अपनी कल्पना और धारणा के अनुसार इसे जो स्वरूप दिया है, वह आनन्ददायी और रस संचारी है, फिरभी मुख्य कथावस्तु के

1. प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः।
दशरूपक 1·13.

समान होने पर भी दोनों नाटकों के इतिवृत्त के गुम्फन और प्रतिपादन में पर्याप्त भिन्नता है ।[1]

संस्कृत नाटकों के इतिहास का अनुशीलन, परिशीलन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि कविवर भास ने सर्वप्रथम अपने दो नाटकों 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम्' तथा 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वत्सराज उदयन के जीवन की घटनाओं को नाटकीय रूप दिया था, यद्यपि भास के पश्चात् अनेक कवि जनों ने इस दिशा में प्रयत्न किए हैं किन्तु कोई भी नाटककार भास से बढ़कर कोई कलाकृति प्रस्तुत नहीं कर सका था । कालान्तर में भारतीय नाटककार के रूप में श्री अनंग हर्ष मातृराज का उदय होता है जिसने इसी चर्चित उदयन कथा को आधार बनाकर अपने प्रसिद्ध नाटक तापस वत्सराजम् का प्रणयन कर अपने अपूर्व काव्यत्व और नाट्य-कौशल का परिचय दिया है ।

कविवर अनंगहर्ष ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'तापस-वत्सराजम्' में अपनी शैली के अनुरूप कथावस्तु में कुछ परिवर्तन किये हैं, नूतन उद्भावनाओं और परिकल्पनाओं से इसे अलंकृत किया है । इससे 'तापस वत्सराजम्' नाटक की नाटकीयता और कवि का काव्यकौशल अत्यन्त सुन्दरता के साथ प्रस्फुटित हुए हैं ।

कविवर अनंग हर्ष ने तापस-वत्सराजम् नाटक के प्रारंभ में जो उद्भावना की है, वह सर्वथा नवीन है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम्' एवं 'स्वप्नवासवदत्तम्' के मध्य की कड़ी को जोड़ने के लिए बहुत सुन्दर प्रयास किया है ।

स्वप्नवासवदत्तम् में प्रारंभ में ही वासवदत्ता को प्रोषित-पतिका के वेश में मगध में देखा जाता है, वह किस योजना के अनुसार मगध

पहुँचाई गई है तथा वह व्यक्ति कौन है जो इसे मगध ले गया है, इसका प्रारंभ में कुछ पता नहीं चलता है । यहाँ पर यह भी पता नहीं चलता है कि यहाँ मगधजाने में वासवदत्ता की कितनी स्वेच्छा है तथा उसके साथ कितना धोखा किया जा रहा है या उससे कौन सी बात छिपाई जा रही है । दूसरी ओर तापस वत्सराजम् में वासवदत्ता और यौगन्धरायण के मध्य भेंट की योजना प्रारंभ में ही प्रस्तुत की गई है और निर्धारित योजना के अनुसार ही उसकी स्वीकृति पाकर आगे की योजना को नया रूप दिया जाता है । यहाँ पर वासवदत्ता के धैर्य एवं गोपनीयता की भलीभाँति परीक्षा कर ली जाती है और उसे सम्पूर्ण बातें बतला दी जाती हैं ताकि आगे की योजना की विफलता की आशंका ही न रह जाये । इस कार्य हेतु वासवदत्ता के पिता का भी सहयोग लिया जाता है ।[1]

वासवदत्ता के पिता प्रद्योत एक पत्र उसके पास भेजते हैं और उस पत्र के द्वारा बेटी वासवदत्ता को अपनी भलाई के विषय में स्वयं सोचने के लिए प्रेरित करते हैं ।[2] इस सबका आगे घटित होने वाली घटनाओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

दोनों ही नाटकों में लावाणक दाह की सूचना दी गई है, परन्तु महारानी वासवदत्ता के द्वारा स्थान त्याग कर कारुणिक चित्रण तथा लावाणक दाह की भयंकर ज्वालाओं का आँखों देखा वर्णन जितना जीवन्त और

---

1. तापसवत्सराजम् 1.7, पृष्ठ 14-15.
2. आसज्जन् विषयेषु कार्य-विमुखो यस्म त्वया वार्यते ।
   जामातेति विहाय तन्मयि हर्षं स्वार्थः स्वयम् चिन्त्यताम् ।।
   तापस-वत्सराजम् 1.9, पृष्ठ 19

और प्रभाव पूर्ण रूप से तापसवत्सराजम् में वर्णित है, वह स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में नहीं प्राप्त होता । तापसवत्सराजम् के द्वितीय अंक में लावाणक-दाह की विभीषिका का वर्णन इतना प्रभावकारी है कि उसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हमारे सामने ही अग्नि की ज्वालायें लावाणक ग्राम को आत्मसात् कर रही हैं ।

अग्निदाह के समय कवि उदयन को भी वहाँ उपस्थित कर देता है और उसके द्वारा वासवदत्ता को अग्नि की ज्वालाओं से बचाने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति के रूप में वह वासवदत्ता के कल्पित निधन पर विह्वल हो जाता है और विलाप करता है - यह सब नाटकके प्रमुख रस की पुष्टि के लिए अत्यन्त आवश्यक है । यहाँ पर कवि महारानी वासवदत्ता के प्रति वत्सराज उदयन के अनन्य प्रेम का सुन्दर वर्णन करता है, इनका यह प्रणय आगे घटित होने वाली क्रियाओं का सम्यक् निर्धारण करता है और अभिलषित करुण रस की पुष्टि करता है ।

दोनों ही नाटकों में दाह की सूचना के निरूपण में एक और अन्तर दिखाई देता है । स्वप्नवासवदत्तम् में महारानी वासवदत्ता और महामन्त्री यौगन्धरायण दोनों को दाह की सूचना लगभग एक साथ ही दे दी जाती है किन्तु तापस-वत्सराजम् में ऐसा नहीं है, इसमें सर्वप्रथम महारानी वासवदत्ता के दाह की सूचना राजा को दी जाती है और तत्पश्चात् राजा वासवदत्ता से सम्बन्धित पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, आभूषण इत्यादि देख करके अत्यधिक विलाप करता है, इसके पश्चात् राजा उदयन को यह भी सूचित किया जाता है कि इसी अग्निकाण्ड में महारानी की रक्षा करते हुए यौगन्धरायण की भी मृत्यु हो गई है । यह सब नाटकीय योजना की दृष्टि

से विशेष महत्त्व के हैं ।[1]

तापसवत्सराजम् के अनुशीलन-परिशीलन के पश्चात यह भी विदित होता है कि इसका विदूषक भी रुमण्वान् के समान सम्पूर्ण योजना से सुपरिचित है और योजना के अनुसार, वह आदि से अन्त तक अपना अपेक्षित योगदान भी देता है । इसके बाद वह बड़े युक्तिपूर्ण ढंग से मृत्यु के लिए उद्यत राजा को प्रयाग ले चलने के लिए पूरा सहयोग देता है, इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ स्वप्न-वासवदत्तम् नाटक में लावाणक-दाह की जिस घटना के वर्णन को कुछ ही शब्दों में एक शिष्य के मुख से करवाया जाता है ।[2]वहीं तापस-वत्सराजम् नाटक में लावाणक दाह की घटना अत्यन्त विशद एवं प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की गई है ।

तापसवत्सराजम् में इसके आगे के कथानक का अधिकतम भाग कवि की अपनी कल्पना से प्रसूत है तथा जिसका प्रतिरूप हमें स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में देखने को नहीं मिलता । योजनानुसार रुमण्वान् तथा विदूषक राजा को लेकर सांकृत्यायन के आश्रम तक पहुँचते हैं, वहाँ पहुँचकर रुमण्वान् विदूषक को राजा के जीवन की रक्षा का भार सौंपता है - और झूठा बहाना करके रुमण्वान् राजधानी लौट आता है । विदूषक राजा को लेकर सीधे राजगृह की ओर जाता है, सांकृत्यायन यौगन्धरायण से सम्पर्क स्थापित कराया करता है । इधर सांकृत्यायनी चित्र-दर्शनादि के द्वारा राजकुमारी पद्मावती

---

1. तापस-वत्सराजम् 2·21.
2. ब्रह्मचारी - तस्मिन् मृगया-निष्क्रान्ते राजनि ग्राम-दाहेन सा दग्धा। स्वप्नवासवदत्तम् - पृष्ठ 49
प्रकाशक- रामनारायण बेनी माधव संस्करण-1968.

के हृदय में उदयन के लिए अनुराग उत्पन्न कराती है, इसके पश्चात् राजकुमारी पद्मावती घर से विरक्त हो जाती है और आश्रम में राजा उदयन की प्रतिमा स्थापित करके उसकी पूजा इत्यादि करती रहती है, बाद में राजा उदयन भी वहाँ पहुँच जाता है, यह सब घटना-संयोजन कवि पर अनंग हर्ष की कल्पना का प्रसव है ।

दोनों ही नाटकों में यौगन्धरायण के द्वारा पद्मावती के हाथों में वासवदत्ता के सौंपे जाने का विधान भी भिन्न-भिन्न है । स्वप्न-वासवदत्तम् नाटक में पद्मावती राजमाता के दर्शन के लिए आश्रम में आती है, वहीं तपोवन में सभी के सामने यौगन्धरायण वासवदत्ता को समर्पित करता है और पद्मावती से कहता है कि यह मेरी बहिन है, इसके पति परदेश गए हुए हैं, इसलिए मैं चाहता हूँ कि कुछ समय तक माननीय राजकुमारी जी, इसको अपनी देखरेख में रख लें ।[1] किन्तु तापस-वत्सराजम् में हमें एक शिष्य के द्वारा उसके सौंपे जाने की सूचना मिलती है । यद्यपि दोनों में ही वासवदत्ता को प्रोषित-पतिका के रूप में चित्रित किया गया है तथा दोनों ही नाटकों में यौगन्धरायण को उसके भाई के रूप में चित्रित किया गया है ।[2]

दोनों ही नाटकों में नायिका वासवदत्ता की दाह की घटना के वर्णन में भी भिन्नता दिखाई देती है । स्वप्नवासवदत्तम् में प्रथम अंक में एक ब्रह्मचारी लावाणक ग्राम से आश्रम आता है और वहाँ विश्राम करने के लिए रुक जाता है, कुशल समाचार पूँछने पर वह अपने वेदाध्ययन में हुए विघ्न का कारण बताते हुए कहता है कि लावाणक ग्राम में

---

1. यौगन्धरायण - इयं मे स्वसा । प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्र भवत्या कंचित् कालं परिपाल्यमानाम् । स्वप्नवासवदत्तम् पृष्ठ 33
2. तापसवत्सराजम् , पृष्ठ 68.

रहने वाले राजा उदयन एक दिन जब शिकार पर थे तब उस गाँव में आग लग जाने से उनकी प्रियतमा वासवदत्ता और मन्त्री यौगन्धरायण जलकर मर गए हैं। शिकार से लौटने पर जब राजा को यह दुःखद समाचार मिलता है तो वह उसे आग में कूदकर अपने प्राण देना चाहता है। मन्त्री उन्हें बड़े प्रयत्न से रोकता है और उनकी रक्षा करता है किन्तु दाह की यह घटना तापसवत्सराजम् में भिन्न रूप से वर्णित है। राजा शिकार खेलने के बाद जब गाँव लौटता है तो उसके साथ मन्त्री रूमण्वान् और विदूषक हैं, वहाँ उसे गाँव में हुए अग्निकाण्ड की सूचना दी जाती है, उस अग्निकाण्ड में वासवदत्ता के जल जाने की आशंका से स्वयं भी उसमें जलकर मर जाना चाहता है तथा वासवदत्ता के लिए अत्यन्त करुण विलाप करता है। महारानी वासवदत्ता के द्वारा पालित मृगपोत एवं शुक को देखकर उसकी वेदना तीव्र हो जाती है। मन्त्री और विदूषक उसे सान्त्वना देते हैं, परन्तु वह वासवदत्ता की याद में मूर्च्छित हो जाता है जब उसे चेतना आती है तो उसी समय वहाँ महासेन का लेखवाहक भी आ जाता है। इससे शोक का वातावरण और भी अधिक तीव्र हो जाता है।[1]

तापस-वत्सराजम् में सांकृत्यायनी एवं चित्र-फलक की घटना का कोई रूप स्वप्नवासवदत्तम् में हमें दिखलाई नहीं देता, तापस राजा को तापसी पद्मावती के आश्रम में लाने तथा उसके द्वारा उसकी पूजा करवाने की घटना भी तापस-वत्सराजम् की अपनी विशिष्ट कल्पना है। स्वप्नवासवदत्तम में उदयन को कार्यवश मगध भेजा जाता है, पर तापस-वत्सराजम् में योजनानुसार सिद्धादेश के द्वारा ही मगध भेजा जाता है।

---

1. तापस-वत्सराजम् 2*13, पृष्ठ 46

तापस-वत्सराजम् नाटक की कथावस्तु की एक सर्वोपरि विशेषता यह है कि यहाँ कथानक को मूलयोजना से निरन्तर सम्बद्ध रखा गया है ।[1]

यहाँ पर कथानक दर्शकों की दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता, इसके विपरीत स्वप्नवासवदत्तम् में हम यह देखते हैं कि जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह सब किया गया है,वह लक्ष्य अन्त तक दर्शकों की दृष्टि से ओझल ही रहता है। अन्त में, हमें केवल सफलता की सूचना ही प्राप्त होती है । किन्तु तापस-वत्सराजम् में दर्शकों का भी योजना की प्रगति के साथ बराबर सम्बन्ध स्थापित रहता है । अमात्य-जनों के द्वारा कौशाम्बी तथा मगध में हो रही घटनाओं की प्रगति सूचना बराबर मिलती रहती है । इसी प्रकार तापस वत्सराजम् में निराश पद्मावती के द्वारा लतापाश से आत्महत्या की योजना तथा राजा एवं विदूषक के द्वारा उसकी रक्षा सर्वथा नवीन है ।

दोनों ही नाटकों में नायिका वासवदत्ता के दर्शन की योजना भी भिन्नता के साथ वर्णित है, स्वप्नवासवदत्तम् में वासवदत्ता समुद्र-गृह में सोये हुए राजा को पद्मावती समझ लेती है और उसके पलंग पर बैठ जाती है कि पद्मावती नहीं है,अपितु राजा है,तब वह पलंग के नीचे लटके हुए राजा के हाथ को उठाती है और उसे ऊपर रखने का प्रयत्न करती है,इसी प्रयत्न में स्वप्न में राजा उसका साक्षात्कार कर लेता है ।[2] परन्तु तापस-वत्सराजम् में वासवदत्ता जब विदूषक को जगाने का प्रयास कर रही होती

---

1. तापस-वत्सराजम् 2·13,पृष्ठ 46

2. वासवदत्ता - दिष्ट्या स्वपायते खल्वार्य पुत्रः
यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।
स्वप्नवासवदत्तम् पृष्ठ 170.

है तो राजा अर्धनिन्द्रित अवस्था में उसकी झलक पा जाता है ।

पांचाल नरेश पर वत्सदेश की विजय तथा उसके लिए दर्शक तथा प्रद्योत के द्वारा दी गई सहायता का संकेत दोनों में ही पाया जाता है। यौगन्धरायण के द्वारा वासवदत्ता को ले जाने तथाउदयन और वासवदत्ता के पुनर्मिलन की घटना में भी दोनों में अन्तर पाया जाता है । स्वप्नवासवदत्तम् में वह उसे लेने के लिए उस समय पहुँचता है,जब उसे वह पहचानी जाने वाली ही होती है,किन्तु तापसवत्सराजम् में राजा वासवदत्ता को मगध के आश्रम से ही ले जाता है । नायक-नायिका के पुनर्मिलन के स्थान एवं प्रकार में भी दोनों नाटकों में अन्तर पाया जाता है । स्वप्नवासवदत्तम् के अनुसार प्रद्योत एक चित्रफलक मगध भेजता है जिसे देखकर पद्मावती और वासवदत्ता की धात्री वासवदत्ता को पहचान लेते हैं, उसी समय यौगन्धराण स्वयं प्रस्तुत होकर सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन करता है । परन्तु पुनर्मिलन की यह घटना तापस वत्सराजम् में भिन्न प्रकार से निरूपित की गई है । इसके अनुसार नायक - नायिका का पुनर्मिलन प्रयाग में होता है । मन्त्री और विदूषक इसकी योजना बनाते हैं । राजा की रक्षा का भार विदूषक पर है, प्रयाग में गंगा तट पर चिता बनाई जाती है, वासवदत्ता को किसी बहाने से चिता में जलने से रोका जाता है ।[1] प्रयाग में राजा के साथ विदूषक और पद्मावती हैं, वहाँ पर मन्त्री रुमण्वान् के आने की प्रतीक्षा की जाती है,राजा वहाँ जलती हुई चिता में प्रवेश करना चाहता है,इधर ब्राह्मणवेशधारी यौगन्धरायण चिता में जलने के लिए उद्यत अपनी कल्पित बहिन वासवदत्ता की रक्षा की

---

1. अहो, संज्वलितः भगवान् हुतवहः यावद
तं गत्वा प्रदक्षिणी करोमि ।
तापस वत्सराजम्, पृष्ठ-208,210,211.

पुकार लेकर वहाँ पहुँच जाता है, राजा जब उसे बचाने के लिए जाता है तो उसी समय यौगन्धरायण वासवदत्ता को उसे अर्पित कर देता है । इस प्रकार नायक-नायिका का पुनर्मिलन हो जाता है ।[1]

स्वप्नवासवदत्तम् में प्रमदवन तथा समुद्र-गृह के विशेष दृश्य हैं, ऐसे दृश्यों की योजना तापस-वत्सराजम् में दिखाई नहीं देती । रस की दृष्टि से भी दोनों नाटकों में मौलिक अन्तर प्रतीत होता है । स्वप्न - वासवदत्तम् में मुख्य रूप से विप्रलम्भ श्रृंगार की पुष्टि हुई है,जबकि तापस - वत्सराजम् में मुख्य रूप से करूण रस की पुष्टि हुई किन्तु इतना स्पष्ट है कि स्वप्न-वासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् दोनों ही नाट्यकृतियाँ अपने-अपने रूप तथा अपने अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय है, दोनों का लक्ष्य भिन्न होने से इनके रूप में भिन्नता आ जाना स्वाभाविक है ।

उदयन कथा से सम्बन्धित साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कविवर अनंग हर्ष ने अपने नाटक तापस-वत्सराजम् में मूल कथानक को अपने स्थल पर नए रूप में परिकल्पित किया है। दोनों ही नाटकों में प्रमुख पात्र तथा प्रमुख घटनाचक्र समान हैं,जो निम्नवत हैं- उदयन वासवदत्ता, पद्मावती, यौगन्धरायण एवं रूमण्वान् । प्रमुख घटनाचक्र यथा आरूणि का आक्रमण, लावाणक-दाह, वासवदत्ता का पद्मावती को समर्पण, पद्मावती-विवाह, आरूणि-पराजय, उदयन-वासवदत्ता-पुनर्मिलन, इत्यादि । इसके अतिरिक्त शेष सब कुछ कवि कल्पना प्रसूत है ।

तापस-वत्सराजम् नाटक के शीर्षक के अनुसार उदयन और पद्मावती के तापस बन जाने की कल्पना कविवर अनंग हर्ष की मौलिक देन

---

1. तापस-वत्सराजम्, पृष्ठ 214-215.

है, अन्य सम्पूर्ण घटनाचक्र इसी लक्ष्य का अनुसरण करता है कि विचार करने परयह प्रतीत होता है कि प्रथम अंक की सम्पूर्ण कवि कल्पना मौलिक युक्ति-युक्त और सुसंगत है । सर्वप्रथम तापस-वत्सराजम् के प्रथम अंक में कंचुकीयों तथा चेटी की चिन्ता से हमें यह विदित होता है कि उदयन विलास में डूबा हुआ है और वह राज्य के कार्य की उपेक्षा कर रहा है; उसकी इस उपेक्षा से पांचाल नरेश आरुणि वत्सराज पर आक्रमण करता है जिसके प्रति उदयनउदासीन है । यहीं पर एक शिष्य के आत्मकथन से यह विदित होता है कि राज्य की सुरक्षा से चिन्तित मन्त्रियों ने एक योजना बनाई है ।[1] इसी योजना के अनुसार सांकृत्यायनी परिव्राजिका का वेश बनाकर राजा के चित्र के साथ राजगृह जाती है, इधर यौगन्धरायण स्वयं वासवदत्ता के पिता प्रद्योत महासेन के पास जाता है और उसे राज्य के संकट से अवगत कराता है । प्रद्योत को विश्वास में लेकर वह उनकी बेटी वासवदत्ता के लिए पत्र लिखवा लेता है, दूसरी ओर लामकायन ब्राह्मण को सिद्ध का वेश बनाकर प्रयाग भेज दिया जाता है । इस कार्य हेतु राजा के मित्र विदूषक को भी विश्वास में ले लिया जाता है और उसे सारी योजनाएँ बतला दी जाती हैं ; यौगन्धरायण वासव-दत्ता को सम्पूर्ण योजना की जानकारी देता है और उसे इस योजना में अपना योगदान देने के लिए राजी कर लेता है । इस सम्बन्ध में मगध के राजा से भी बातचीत चलाई जाती है ।

अपनी योजना के अनुसार महामन्त्री यौगन्धरायण महारानी वासवदत्ता के पास पहुँचता है और महारानी से राज्य पर आसन्न संकट की बात बतलाता है । और इसमें उनसे सहयोग की अपेक्षा करता है.जब मानसिक

---

1. तापस - वत्सराजम्, पृष्ठ 12-13.

रूप से वासवदत्ता को भावी विपत्ति के प्रति संकेत किया जाता है और उसके द्वारा साम्राज्य की रक्षा के लिए प्रेरित किया जाता है तो उसे उसी समय पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार महासेन प्रद्योत का पत्रवाहक पत्र लेकर आ जाता है ।[1] पत्र में अभिव्यक्त त्याग और बलिदान सम्बन्धी विचारों के लिए महासेन की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है । इस प्रकार वासवदत्ता को राज्य रक्षा की योजना में सहयोग देने के लिए मानसिक रूप से पूर्णतया तैयार कर लिया जाता है, तभी उसको वह महान् कार्यभार सौंपा जाता है जो उपर्युक्त योजना में सहायक होता है । इसके पश्चात् वासवदत्ता के धैर्य और निश्चय की परीक्षा के लिए उसके समक्ष राजा को भी उपस्थित किया जाता है ।

इस सम्पूर्ण घटना-चक्र का अनुशीलन-परिशीलन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि कविवर अनंगहर्ष ने सम्पूर्ण घटना की प्रस्तुति मनोवैज्ञानिक रूप से की है । वासवदत्ता को सहसा इतना बड़ा त्याग करने को नहीं कहा जाता है,उसे इसके लिए धीरे-धीरे तैयार किया जाता है,जिससे वह स्वयं राज्य रक्षा हेतु चिन्तित हो जाती है,फिर उसी मानसिक स्थिति के मध्य ही उसके पिता प्रद्योत का पत्र दिया जाता है जिसमें महान बलिदान की प्रेरणा है और असहनीय पति-वियोग को सहने की बात कही गई है ।[2] इसी समय राजा भी वहाँ उपस्थित होता है, इस अवसर पर वासवदत्ता की कार्यभार वहन की क्षमता का परीक्षण किया जाता है तथा दूसरी ओर नायक-नायिका के बीच सघन अनुराग का निरूपण करके

---

1. तापस-वत्सराजम्, पृष्ठ 17.
2. तापस-वत्सराजम् अंक-1•9, पृष्ठ 19.

उसके त्याग की महानता दिखलाई जाती है, नायक-नायिका का यह अनुराग आगे विप्रलम्भ-गर्भित करुण-रस को तीव्र बना देता है । इसी समय वहाँ शबर जाति के लोग उपस्थित होते हैं और राजा को शिकार के लिए जंगल में ले चलने का सुगम उपाय निकाल लेते हैं । इस प्रकार यह सम्पूर्ण योजना सुसंगत और मौलिक है किन्तु स्वप्न-वासवदत्तम् में उपर्युक्त योजना के दर्शन नहीं होते हैं । स्वप्नवासवदत्तम् में हम प्रारंभ में ही वासवदत्ता को मगध के तपोवन के मार्ग में अपने भाग्य से असन्तुष्ट रूप में देखते हैं । यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि उसका वह त्याग स्वतः स्फूर्त नहीं है प्रत्युत ऊपर से आरोपित प्रतीत होता है ।[1]

तापस-वत्सराजम् का दूसरा अंक भी बहुत सुन्दर है । यहाँ हम यह देखते हैं कि अपने पूर्व प्रदर्शित प्रेम के अनुरूप ही राजा उदयन वासव-दत्ता की मृत्यु पर विलाप करता है । इस अंक में वासवदत्ता से सम्बन्धित पशु-पक्षी लता और वनस्पति आदि की उपस्थिति प्रदर्शित की गई है जिससे राजा के शोक में तीव्रता आ जाती है,यहाँ पर योजना के कार्यान्वित होने की सूचना महाराज प्रद्योत को भी दे दी जाती है और इधर जीवन से निराश और विरक्त राजा मन्त्री रुमण्वान् के साथ प्रयाग की ओर प्रस्थान करता है।[2] वहाँ पर सामकायन नामक ब्राह्मण भिक्षु के वेश में पहले से ही विद्यमान है,वह राजा से कहता है कि यदि वह वासवदत्ता की पुनः प्राप्ति चाहता है तो उसे पद्मावती से विवाह कर लेना चाहिए ।

तापस वत्सराजम् नाटक के तृतीय अंक का बहुत कुछ भाग कवि

---

1. स्वप्न-वासवदत्तम् 1.4
2. तं मामितो नयतमिष्ट-पर्व प्रयागम् । तापस-वत्सराजम् 2.22.

ने अपनी योजनानुसार स्वयं उद्भावित किया है । तीसरे अंक में प्राप्त विष्कम्भक से हमें विदित होता है कि सांकृत्यायन और उसके शिष्य के बीच में वार्तालाप हो रहा है जिससे यह विदित होता है कि सांकृत्यायनी ने पद्मावती को प्रभावित कर लिया है और वह घर बार छोड़कर अपने राज्य-भवन के उद्यान में ही उदयन की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा में लगी हुई है, इधर यौगन्धरायण वासवदत्ता को लेकर वहीं जा रहा है और मन्त्री रुमण्वान् राजा को लेकर प्रयाग पहुँच रहा है । उनके साथ विदूषक भी हैं, वहाँ पर रुमण्वान् बड़ी चतुरता के साथ राजा से छूटकर राजधानी कौशाम्बी को लौट आया है, जहाँ पर वह राज्य की स्वयं देखभाल करता है, इधर विदूषक राजा की रक्षा में तत्पर्य है ।[1]

इसके पश्चात् हम देखते हैं कि कवि ने कथावस्तु को अनेक नवीन घटनाओं के साथ प्रस्तुत किया है । सांस्कृत्यायनी अपनी योजनानुसार एक ओर वियोगिनी पद्मावती को सान्त्वना देती है तो दूसरी ओर वह अप्रत्यक्ष रूप से वासवदत्ता को भी सांत्वना देती है । एक समय की बात है कि निराश पद्मावती लता पाश से आत्म-हत्या की चेष्टा करती है, यह कवि की मौलिक उद्भावना है । इसके आगे एक स्थल पर उदयन और वासवदत्ता दोनों चिता में जलकर आत्मदाह करना चाहते हैं । इस घटना का संयोजन भी कवि की मौलिक उद्भावना है । यद्यपि कथा-सरित्सागर में वासवदत्ता के द्वारा आत्मदाह की चेष्टा का वर्णन मिलता है, परन्तु उदयन द्वारा आत्मदाह के लिए तत्पर होने का संकेत और कहीं हमें नहीं मिलता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि कविवर श्री अनंग हर्ष मातृराज ने अपने प्रसिद्ध नाटक

---

1. तापस वत्सराजम् अंक -3 पृष्ठ 65.

तापस-वत्सराजम् में कतिपय मौलिक उद्भावनाओं का समावेश किया है।[1]

तापस-वत्सराजम् की समीक्षा :

यद्यपि तापस-वत्सराजम् नाटक की कथावस्तु अत्यन्त प्राचीन और अत्यधिक पिष्टपेषित रही है किन्तु फिरभी कवि ने अपनी नव-नवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा से इसे नवीन रूप और विधान प्रदान किया है, जिससे यह नाट्यकृति सहृदयों और रसिकों के हृदय में अपना स्थान बना चुकी है । यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि तापस-वत्सराजम् नाटक के प्रणेता नाटककार अनंग हर्ष प्रसिद्ध नाटककार भास की प्रख्यात-कृति स्वप्नवासवदत्तम् से संभवतः समानता करने का प्रयत्न करते हैं जिसमें उन्हें अनुकूल सफलता भी मिलती है । यदि तापस वत्सराजम् नाटक के विधान में और उसके प्रणयन में कोई नवीनता न होती तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह कृति स्वप्नवासव - दत्तम् के समक्ष ठहर नहीं सकती थी ।

तापसवत्सराजम् के नाटक के प्रथम अंक के ही रचना-विधान में कवि ने कवित्व और नाट्य-कौशल का परिचय दिया है जिससे कवित्व की दृष्टि से वह वस्तुतः स्वप्नवासवदत्तम् से कहीं अधिक उन्नति कोटि का प्रतीत होता है । इसमें वर्णित यौगन्धरायण के विधान से मुद्राराक्षसम् में वर्णित चाणक्य के विधान का स्मरण हो आता है । महामन्त्री चाणक्य की योजनाओं की तरह महामन्त्री यौगन्धरायण की योजनायें अपराजेय प्रतीत होती हैं ।[2]

वासवदत्ता के द्वारा किए गए अभिवादन के उत्तर में यौग-न्धरायण अत्यन्त सारगर्भित शब्दों में कहता है कि आप अपने भर्ता के अभ्युदय

---

1. तापस-वत्सराजम्, अंक-2, पर्व 3.
2. तापस-वत्सराजम्, अंक-1, पृष्ठ 19, 20, 21, 22.

की कामना करने वाली हूँ, इसके बाद यौगन्धरायण एक मनोविशेषज्ञ राजनीतिज्ञ की भाँति उसके समक्ष मुख्य प्रयोजन को सहसा सामने न लाकर धीरे-धीरे उसे उसके सामने प्रस्तुत करता है । वासवदत्ता के सामने उसके वहाँ आने का कारण पूछे जाने पर वह अत्यन्त चतुरता के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी बात कहता है -

कौशाम्बीं परिभूय नः कृपणकैर्विदिषिभिः स्वीकृतां
जानास्येव तथा प्रमादपरतां पत्युर्नयद्वेषिणः ।
स्त्रीणां च प्रियविप्रयोग-विधुरं चेतः सदैवात्र मे,
वक्तुं नोत्सहते मनः परमतो जानातु देवी स्वयम् ।'[1]

यहाँ पर यौगन्धरायण'वक्तुंनोत्सहते' अपने इस कथन से अपनी सम्पूर्ण बात ही कह दी है ।

यहाँ पर महासेन प्रद्योत की ओर से वासवदत्ता के नाम पत्र प्राप्त करवाने की योजना भी बड़ी महत्वपूर्ण और नाटकीय है । इस पत्र में पिता की ओर से पुत्री के लिए नारी सुलभ मोह को त्यागकर कर्तव्य के पालन करने का अच्छा उपदेश किया गया है । कहीं वासवदत्ता इस प्रकार के त्याग की बात को सुनकर विचलित न हो जाय, इसलिए यौगन्धरायण महासेन द्वारा प्रेषित उस पत्र के संदेश की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है ।[2] इस प्रकार वह आगे आने वाले कार्यभार को संभालने के लिए वासवदत्ता को तैयार कर लेता है और अन्ततः, उसकी स्वीकृति भी प्राप्त कर लेता है ।

इसके पश्चात् कवि ने वासवदत्ता के मानसिक संघर्ष को दिखलाने

---

1. तापसवत्सराजम् 1.7
2. यौगन्धरायणः - साधु महासेन ! साधु । नापत्यस्नेहात् कर्तव्यम् अतिक्रामसीति । - तापसवत्सराजम् अंक-1, पृष्ठ 19.

का प्रयत्न किया है, वह इसके लिए राजा उदयन को वहाँ प्रस्तुत करता है। ऐसे अवसर पर वासवदत्ता के सामने राजा उदयन की प्रस्तुति उसी प्रकार प्रतीत होती है जैसे सीता का परित्याग करने का निश्चय कर लेने के बाद राम के समक्ष सीता की उपस्थिति। इस दृश्य में कवि ने वासवदत्ता को जिस मानसिक संघर्ष की स्थिति में उपस्थित किया है तथा जिस नाटकीयता के साथ उसे संकट से बचाया है, वह सब प्रशंसनीय है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तापस-वत्सराजम् के नाटक के प्रथम अंक की सम्पूर्ण योजना बड़ी सुन्दर मार्मिक, सजीव और हृदय स्पर्शी है।

तापस-वत्सराजम् का द्वितीय अंक नाटकीयता की दृष्टि से उतना सुन्दर नहीं बन पड़ा है, परन्तु चरित्र की दृष्टि से तथा रस परिपोष की दृष्टि से यह अंक भी प्रभावशाली है। यहाँ पर कवि ने अनुराग की पृष्ठभूमि में उदयन के वैराग्य तथा उसके जीवन की निरपेक्षता की संगति बैठाई है। वासवदत्ता की स्मृति में उससे सम्बन्धित वस्तुओं को देखकर नायक करुण विलाप करता है। उसका यह करुण विलाप उत्तर रामचरितम् के पंचम अंक और अभिज्ञान-शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक की स्मृति दिलाता है, इस अंक में करुणा की जो धारा प्रवाहित हुई है, वह सहृदयों के हृदयों को संस्पर्श करने वाली है। कतिपय उदाहरण दर्शनीय है -

दृष्टिर्नामृतवर्षिणी स्मित-मधुप्रस्यन्दि वक्त्रं न किं,
स्नेहार्द्रं हृदयं न चन्दन-रसस्पर्शानि चाङ्गानि वा।
किं स्वल्लव्यपदेन किञ्चिदमिदं क्रूरेण दग्धाग्निना,
नूनं व्यामोहोऽन्य एव दहनस्तस्येदमाचेष्टितम् ॥[1]

---

1. तापस-वत्सराजम् 2.9.

इसी प्रकार एक अन्य पद्य में राजा उदयन अग्नि की हृदय - हीनता और उसकी क्रूरता का बहुत सुन्दर चित्रण करता है -

"उत्कम्पिनी भयपरिस्खलितांशुकान्ता,
ते लोचने प्रतिदिशं विधुरे क्षिपन्ती ।
क्रूरेण दारुणतया सहसैव दग्धा,
धूमान्धि तेन दहनेन न वीक्षितासि ।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि घटना-चक्र की दृष्टि से कथानक इस अंक के आगे नहीं बढ़ पता है परन्तु रस-परिपाक की दृष्टि से इस अंक का विशेष महत्त्व है ।

तीसरे अंक में विष्कम्भक लम्बा है, यद्यपि इसमें लम्बे कथानक को संक्षिप्त करने का प्रयास किया गया है । इस अंक की बहुत ही महत्त्वपूर्ण नाटकीय देन है - कवि द्वारा सांकृत्यायनी की उद्भावना ।[2] यह स्पष्ट है कि कवि की इस उद्भावना से नाटक में संगति आ गई है, क्योंकि हम देखते हैं कि सांकृत्यायनी के प्रयास से ही उदयन और पद्मावती के विवाह की संगति बन पाती है । जहाँ एक ओर स्वप्नवासवदत्तम् में वियोगिनी वासवदत्ता को अत्यन्त कठोर क्षणों में कोई सहानुभूति के दो शब्द कहने वाला भी नहीं मिलता, वहीं दूसरी ओर तापसवत्सराजम् में सांकृत्यायनी की योजना से दोनों ही वियोगिनी नायिकाओं को सांत्वना दिलाने का प्रयत्न हो जाता है जो कि नाटक के कथानक के विकास के लिए परमावश्यक है, किन्तु इस अंक के अन्त में कविकृत मध्याह्न-वर्णन नाटक की दृष्टि से महत्त्वहीन है । यद्यपि इसका जातीय

---

1. तापसवत्सराजम् 2.16
2. ततः प्रविशति सांकृत्यायनी, तापसवत्सराजम्, पृष्ठ 79.

महत्त्व हो सकता है ।

चौथे अंक के पूर्वार्द्ध में कथात्मकता अधिक है और अभिनयात्मकता कम है । इसके अन्त में पद्मावती के द्वारा लतापाश से आत्महत्या का दृश्य यद्यपि नाटकीय है फिरभी यह उद्भावना परम्परा-वांछिनी है । नाटकीय कौशल की दृष्टि से इस अंक की योजना दुर्बल प्रतीत होती है । कुछ यही बातें पंचम अंक के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है ।

तापसवत्सराजम् नाटक का छठा अंक नाटकीयता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, इसमें अभिनय, मानसिक - संघर्ष और संशय इत्यादि प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत किया गया है ।[1] इसमें पर्याप्त गतिशीलता दिखाई देती है । और यहाँ पर नाटक अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचता हुआ दिखलाई देता है । नायक और नायिका दोनों ही आत्मदाह के लिए एक ही स्थान पर जा पहुँचते हैं, दोनों ही एक - दूसरे के मन्तव्य से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं, केवल इस योजना के सूत्रधार ही इसे भलीभाँति जानते हैं । जीवन के इन निराश क्षणों में दोनों अनन्य प्रेमियों की पुनर्मिलन जिस नाटकीयता से कराया गया है,वह नाटककार श्री अनंग हर्ष के नाट्य कौशल का निदर्शन है ।[1]

यह सब होते हुए भी तापसवत्सराजम् नाटक की कतिपय नाटकीय दुर्बलतायें हमें दिखलाई देती है । यद्यपि संस्कृत-नाटकों में पद्यों का प्रयोग काव्यशास्त्रियों और नाटककारोंद्वारा मान्य है किन्तु जिस रूप में उनकी योजना इस नाटक में की गई है,वह अवश्य ही नाटकीय दृष्टि से आपत्तिजनक और अवांछनीय है । हम देखते हैं कि इसनाटक का दूसरा अंक सम्पूर्ण रूप से काव्यात्मक है, इसमें करुण जैसे सुकुमार रस की निष्पत्ति के लिए

---

1. तापसवत्सराजम् 6.6.

शार्दूल-विक्रीडित जैसे दीर्घ एवं कठिन छंदो की योजना उचित नहीं कही जा सकती, इसी अंक के प्रारम्भ में बड़े-बड़े श्लोकों के द्वारा अग्नि की ज्वालाओं तथा उसके द्वारा किए गए विनाशका वर्णन करना नाटकीय दृष्टि से उचित नहीं है ।[1]

तापसवत्सराजम् नाटक के स्वगत भाषण भी बहुत लम्बे हैं, जिससे नाटकीयता में बाधा पहुँचती है । नाटक का यह दोष आदि से अन्त तक दिखलाई देता है । सांकृत्यायन तथा उसके शिष्य, वासवदत्ता तथा पद्मावती, राजा तथा विदूषक के क्रमशः तृतीय और पंचम अंक के वार्तालापों में कथा का वेग इतना मन्द हो गया है जिससे नाटकीयता में गति अवरूद्ध हो जाती है।

तापसवत्सराजम् के पंचम अंक में कुंजरक के द्वारा प्रस्तुत युद्ध-वर्णन क्लिष्ट समस्त-शैली में प्राप्त होता है जो नाटक के लिए उचित नहीं है ।यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि हम एक श्रोता के रूप में युद्ध का वर्णन सुन रहे हैं । रंगमंच पर एक ही पात्र के द्वारा लम्बे-लम्बे वर्णनों को प्रस्तुत करना नाटक की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त है किन्तु तापसवत्सराजम् में ऐसे अनेक स्थल प्राप्त होते हैं । सम्पूर्ण पंचम और द्वितीय अंक एक दृश्य में समाप्त हो जाते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि रंगमंच की दृष्टि से तापसवत्सराजम् का महत्त्व अधिक नहीं है ।

फिरभी तापसवत्सराजम् नाटक प्राचीन काल में अपनी नाट्य-कला और काव्यकला के लिए चर्चित रहा है । प्राचीन काल के नाट्य-काव्य-शास्त्रियों ने उसे अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है । इसका कारण इसकी नाट्यकला और काव्यकला ही है ।[2] प्राचीनकाल में नाट्यकला की दृष्टि से

1. तापसवत्सराजम् 6•6, अंक-2
2. वही, प्रस्तावना, पृष्ठ 24-25.

यह नाटक इतना सफल था कि इसकी रचना के बाद लगभग दो सौ वर्षों तक अनेक प्रमुख आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रन्थों में नाटक के विभिन्न अंगों के उदाहरणों के रूप में इसके अनेक पद्यों स्थलों और प्रसंगों को उद्धृत किया है। इसी प्रकार आनंदवर्धनाचार्य से लेकर भोजदेव तक सभी आचार्यों ने अनेक स्थलों पर रस, भाव, ध्वनि और अलंकार आदि के परिपोष के लिए इस नाटक से अनेकानेक पद्यों तथा प्रसंगों को उद्धृत किया है। इससे इस नाटक के शास्त्रीय पक्ष का महत्व अत्यधिक है। दशरूपककार धनिक धनंजय के अनुसार नाटक रसों पर आश्रित होता है।[1] और भरतमुनि का भी कथन है कि रस के बिना कोई भी अर्थ प्रवृत्त नहीं होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत नाटकों में अभिनय की अपेक्षा रस का अधिक महत्व है। इसीलिए संस्कृत नाटककारों का ध्यान रंगमंच की अपेक्षा रस-निष्पत्ति की ओर अधिक रहा है। इस दृष्टि से विचार करने पर तापसवत्सराजम् एक सफल नाट्यकृति है जिसमें विप्रलम्भ-श्रृंगार-मिश्रित करुण-रस अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रकट हुआ है।

दूसरी ओर जब हम स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें भास की नाट्यकला का उज्जवल रूप दिखाई पड़ता है। नाट्यकला के अन्तर्गत सभी नाटकीय तत्वों का समावेश होता है। जहाँ तक कथावस्तु का प्रश्न है, दोनों ही नाटकों श्री स्वप्नवासवदत्तम् और तापस - वत्सराजम् का स्रोत वृहत्कथा, कथा-सरित्सागर और लोक प्रचलित उदयन - वासवदत्ता की प्रणय कथा रही है। स्वप्नवासवदत्तम् प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण का उत्तरार्द्ध है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में पूर्व भाग की कथावस्तु प्राप्त होती

---

1. दशधैव रसाश्रयम्। दशरूपक 1.7, पृष्ठ 4

है । स्वप्नवासवदत्तम् में नाटक की पंचसन्धियाँ पंचअवस्थाएँ और पाँच-अर्थप्रकृतियाँ यथोचित रूप से प्राप्त होती हैं । यह एक अच्छे नाटक की विशेषता है । भास वस्तुत: एक रससिद्ध प्रख्यात नाटककार थे । सहज - सुबोध भाषा, स्वाभाविक शैली, यथार्थवर्णन, चरित्रों का उदात्तीकरण, भावों का जीवन्त प्रवाह उनके नाटक की प्रमुख विशेषतायें हैं । विशुद्ध मौलिकता तथा कल्पना-वैचित्र्य के कारण उनके नाटक कहीं-कहीं नाट्यशास्त्र के नियमों के विपरीत होते हुए भी संस्कृत-साहित्य की स्थायी निधि हैं ।[1] नाटक की कथावस्तु को प्रभावोत्पादक घटनाओं द्वारा विकसित करने के लिए उन्होंने ऐसी शैली का प्रस्फुरण किया है कि उनमें स्वाभाविकता तथा गतिशीलता के साथ रस का सम्यक् एवं समुचित परिपाक हुआ है ।

स्वप्नवासवदत्तम् में घटना की एकता और सार्थकता, घटनाओं का प्रतिघात तथा गति, कवित्व, चरित्रचित्रण तथा स्वाभाविकता और अभिनय के अनुकूल संवादयोजना आदि यथोचित रूप से प्राप्त होते हैं । सप्राणता, सजीवता, क्रियाशीलता एवं चरित्रनिर्माण की तीव्रता के कारण उनका यह नाटक विलक्षण है । कविवर भास में मौलिकता तथा कल्पनाशक्ति का अजस्र स्रोत था । उनके बुद्धि-विलास तथा नाटकीय-कला द्वारा अनुप्राणित उनकी कृतियों से सुस्पष्ट है कि वे नाटकीय तत्वों के सहज सर्जक थे ।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रथम अंक में ही कविवर भास ने मुद्रालंकार के द्वारा नाटक के प्रमुख पात्रों का नामोल्लेख करके परिचय दिया है जो उनकी अपनी विशेषता है ।[2]

---

1. भासनाटकचक्र - बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 25-30.
2. सूत्रधार - उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ।
स्वप्नवासवदत्तम् 1·1, पृष्ठ 2.

पात्रों का चरित्र-चित्रण भास ने अपने नाटक में बड़ी कुशलता से किया है । उनका प्रत्येक पात्र अपना स्वयं का व्यक्तित्व रखता है, पात्रों की विशेषताओं का विकास भी बड़े व्यवस्थित ढंग से नाटक में हुआ है । भास ने अपने इस नाटक में मानव जीवन की उदात्त कल्पना करके उसका निर्वाह करते हुए पवित्र आदर्श की स्थापना की है । कहना न होगा कि कविवर भास अपने वर्णन चातुर्य और नाट्य नैपुण्य के द्वारा अनुपस्थित पात्रों या उपर्युक्त घटनाओं को रंगमंच पर उपस्थित या घटित किए बिना ही प्रेक्षकों के मन में उनका ऐसा आभास करा देते हैं, मानोउनका प्रत्यक्ष चित्रण हो रहा हो ।[1]

भास ने अपने इस नाटक में प्रेम, करुणा और विस्मय के दृश्य अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए हैं, नाटक के संवाद बड़े ही चुस्त संक्षिप्त अनायासपूर्ण तथा नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं । उनके इस नाटक में अनावश्यक विवरण और विस्तार नहीं मिलता है ।

भास की शैली में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण नैसर्गिक हैं ; किन्तु उनका स्वप्नवासवदत्तम् नाटक विशेष रूप से प्रसाद गुण से ओतप्रोत है । जो एक सुन्दर नाटक के लिए सुन्दर गुण है । भास कवि पांडित्य-प्रदर्शन नहीं करते, वे अपनेविचारों और भावों को स्वाभाविक रूप से प्रकट होने देते हैं । स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का अनुशीलन करने से विदित होता है कि कविवर भास पात्रों तथा भावों के अनुकूल शब्द-चयन और उनके परिमित चयन में अत्यन्त दक्ष हैं । वे कठिन और समास बहुला पदावली का कभी प्रयोग नहीं करते हैं। स्वाभाविक पद-विन्यास तथा भाव सौष्ठव के साथ, प्रवाह पूर्ण कोमलकान्त - पदावली - सभी को आनंदातिरेक से भाव विभोर कर देती है । अनावश्यक

---

1. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - चन्द्रशेखर शास्त्री, पृष्ठ 98.

वर्ण विस्तार से दूर, लाघव और सरसता से युक्त उनका पद-विन्यास संस्कृत के नाट्य-साहित्य में अद्वितीय है। उनकी पदयोजना हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है। प्रसादगुणयुक्त सरल पदों का समावेश नाटक के प्रवाह को निर्बाध रखता है। घटनाओं तथा दृश्यों के यथोचित वर्णन करने पर वे सिद्धहस्त हैं। अलंकारों का चयन बड़ा स्वाभाविक है, शब्दों के साथ साथ सुन्दर अलंकार प्रयोग द्वारा श्रोता के हृदय में वे गूढ़तम भावों को भी प्रविष्ट करा देते हैं। भास को उपमाओं के लिए प्रकृति के ही उपादान विशेष रूप से अभीष्ट हैं। उदाहरण के लिए स्वप्नवासवदत्तम् में वे कहते हैं कि मृत्यु के समय में कौन किसकी रक्षा कर सकता है, रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को धारण कर सकता है, यह संसार वनों के तुल्य धर्मवाला है जो समय-समय पर कट जाता है और फिर से उग आता है।[1] इसी प्रकार उपमालंकार का निम्नांकित मनोरम उदाहरण भी दर्शनीय है - यथा

"कालक्रमेण जगत: परिवर्तमाना, चक्रारपंक्तिरिव
गच्छति भाग्यपंक्ति: ।"[2]

इस प्रकार मधुर शब्दावली, भावों का सबल प्रवाह और रस का पूर्ण परिपाक भास की नाट्य शैली की विशेषता है। इस नाटक में कहीं भी कृत्रिमता तथा किसी प्रकार का आडम्बर दिखलाई नहीं देता है। यद्यपि कालिदास और भवभूति आदि नाटककारों की भाँति भास में कल्पना की इतनी ऊँची उड़ान नहीं है, फिरभी उनके नाटक में मानव जीवन की उदात्त-चेतना सहज रूप में प्राप्त होती है। वे उच्च से उच्च भावों को सरलतम भाषा में व्यक्त कर देते हैं। उनकी यह विशेषता उनके नाटक का प्राण है।

---

1. क: कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति
   एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले-काले छिद्यते रुह्यते च ।
   स्वप्नवासवदत्तम् 6·10
2. वही, 1·4

समालोचकों ने एक बार भास के नाटकों की परीक्षा का आयोजन किया था, उन्होंने भास के नाटकों को समालोचना की अग्नि में तपाया था, परन्तु उनका स्वप्नवासवदत्तम् नाटक आलोचना की अग्नि में नहीं जल सका, अर्थात् परीक्षण के पश्चात् यह नाटक श्रेष्ठतम् नाटक के रूप में ख्याति को प्राप्त हुआ था। इसीलिए नवम शताब्दी के राजशेखर कहते हैं कि आलोचकों ने परीक्षा के लिए भास के नाटक चक्र को अग्नि में फेंक दिया था किन्तु अग्नि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक को जला नहीं सका।[1]

वस्तुत: स्वप्नवासवदत्तम् महाकवि भास की नाट्यकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 6अंकों का, सभी नाटकीय गुणों से सम्पन्न यह नाटक भास की अपूर्व प्रतिभा का परिचायक है। सच बात तो यह है कि रंगमंच की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्तम् संस्कृत का एक सफल नाटक है।

स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु में यद्यपि उदयन नायक हैं; फिरभी कथावस्तु के विकास में महामन्त्री यौगन्धरायण काविशेष योगदान है। अवन्ति कुमारी महारानी वासवदत्ता अग्निदाह में भस्म हो गई है और उनके साथ ही महामन्त्री यौगन्धरायण भी जल गया है। इस प्रवाद के प्रचारित हो जाने के बाद मन्त्री की योजना केअनुसार वत्सराज उदयन का मगध राजकुमारी पद्मावती के साथ विवाह हो जाता है और उसके भाई दर्शक की सहायता से उदयन अपने खोये हुए राज्य को पुन: प्राप्त कर लेता है। बस इतने से लघु कथानक को कवि ने छ: अंकों में विभाजित कर दिया है। कवि ने इस नाटक में घटना की एकता और सार्थकता, कवित्व, चरित्र-चित्रण और सरल सम्वाद-योजना आदि से अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

---

1. भास - नाटक - चक्रेऽपि च्छेकै: क्षिप्ते परीक्षितुम्।
   स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावक:।
   काव्य-मीमांसा, राजशेखर, पृष्ठ-55.

इस कथावस्तु का प्रमुख विषय है अटल, दृढ़ और अमर प्रेम की विजय, जिसके लिए किसी प्रकार का बलिदान साधारण है। स्वप्नवासवदत्तम् के चरित्रों का विकासक्रम बड़ा ही रुचिकर एवं समीचीन है। पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। नायक उदयन का चरित्र, पत्नीव्रत का पवित्र आदर्श है। वासवदत्ता, पतिपरायणा तथा पतिहित के लिए सर्वस्व त्याग देने वाली आदर्श पत्नी है। उसी प्रकार उच्च विचारों वाली राजकुमारी पद्मावती भी नारी जगत् का श्रृंगार है।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के नामकरण में भी कवि ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। इसमें स्वप्न का दृश्य अत्यन्त ही भावपूर्ण और नाटकीयता से ओत-प्रोत है। यह स्वप्न, नाटक के पंचम अंक में घटित होता है। नाटक का नायक उदयन महारानी वासवदत्ता के प्रथम प्रणय की याद में विह्वल है और उसके रूप सौन्दर्य के चिन्तन में मग्न है। उसी समय उसे नींद आ जाती है। वह स्वप्न देखने लगता है। स्वप्न में उसे अपनी प्रियतमा वासवदत्ता का साक्षात्कार होता है। वासवदत्ता उसके प्रश्नों का उत्तर देती है। स्वप्न की इस घटना के पश्चात् राजा को अपनी प्रेयसी के जीवित रहने और कालान्तर में प्राप्त हो जाने की दृढ़ आशा हो जाती है। स्वप्नोद्भूत यह आशा ही पति-पत्नी के निश्चित मिलन का मार्ग प्रशस्त करती है। यही नाटक का अन्त भी है। कवि इस स्वप्न दृश्य से इतना प्रभावित और प्रसन्न है कि संभवतः इसी घटना पर इसका नामकरण कर देता है, जो इस नाटक के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। नाटक में आरम्भ से अन्त तक विप्रलम्भ - श्रृंगार का अच्छा परिपाक हुआ है।

दशरूपक के अनुसार रूपक के इतिवृत्त को निम्नांकित पाँच अर्थ प्रकृतियों पाँच अवस्थाओं तथा पाँच सन्धियों में विभक्त किया गया है, जो निम्नवत् है -

	अर्थप्रकृतियाँ	अवस्थायें	सन्धियाँ
1-	बीज	आरम्भ	मुख
2-	बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
3-	पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
4-	प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
5-	कार्य	फलागम	उपसंहृति

अर्थ प्रकृतियाँ नाटकीय इतिवृत्त के पाँच तत्व है ।[1] सम्पूर्ण नाटकीय इतिवृत्त उपर्युक्त नाटकीय तत्वों में विभक्त होते हैं । बीज, वृक्ष के बीज की तरह वह तत्व है, जो अंकुरित होकर नायक के कार्य या फल की ओर बढ़ता है । बिन्दु वह स्थिति है, जब बीज पानी में गिरे हुए तेल की बूंद की तरह फैलता है ; इस दशा में इतिवृत्त का बीज फैलकर व्यक्त होने लगता है । पताका और प्रकरी का सभी नाटकों में प्रयोग अनिवार्य नहीं है ।[2] इसलिए स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् दोनों नाटकों में पताका और प्रकरी प्राप्त नहीं होते ।

आरम्भ से फलागम तक पाँच अवस्थाएं नाटकीय इतिवृत्त की गति सूचित करती हैं । यह देखा जाता है कि मानव का जीवन एक सीधी रेखा की तरह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचता । वह टेढ़ामेढ़ा होता हुआ अपने

---

1. बीजबिन्दु-पताकाख्यप्रकरी-कार्यलक्षणः
   अर्थप्रकृतयः पंचता एताः परिकीर्तिताः । दशरूपक 1.18, पृष्ठ 14
2. रत्नावली : भूमिका-साहित्य भण्डार मेरठ-1967 संस्करण, पृष्ठ 46.

उद्देश्य तक पहुँचता है । मानव का जीवन संघर्ष से भरा हुआ है । संघर्ष ही उसे गति देते हैं । वह संघर्ष की चट्टानों को तोड़ता हुआ, उन पर विजय प्राप्त करता हुआ आशा और उल्लास के साथ आगे बढ़ता है । हम भारतीयों को इस बात में पूर्ण विश्वास है कि जीवन के संघर्षों और विघ्नों पर अवश्य विजय प्राप्त होगी । भारतीय संस्कृति के अनुसार अपने-अपने लक्ष्य तथा उद्देश्य की प्राप्ति में सभी को सफलता मिलेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। भारत के निवासी 'फलागम' में पूर्ण विश्वास रखते हैं । मानव जीवन का लक्ष्य ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति है । भारतीयों की धारणा कभी पश्चात्यों की तरह निराशावादी नहीं रही है । इसलिए यहाँ के नाटक प्रायः सुखान्त होते हैं ।[1]

नाटकीय कथावस्तु की प्रथम अवस्था आरम्भ है । इस अवस्था के अन्तर्गत नायक में किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होती है, यह दूसरी बात है कि उसका प्रकाशन कोई दूसरा पात्र करे । दूसरी अवस्था प्रयत्न है, इस अवस्था में नायक उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यत्न-शील होता है । तीसरी अवस्था प्राप्त्याशा में विघ्नबाधा इत्यादि के विचार कर लेने के बाद नायक को लक्ष्य प्राप्ति की संभावना हो जाती है । चौथी अवस्था नियताप्ति में उसे सफलता का पूरा विश्वास हो जाता है और पाँचवी अवस्था में वह फलागम तक पहुँच जाता है । उदाहरण के लिए स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक में लावाणक ग्राम में अग्निदाह के पश्चात् नायक उदयन वासवदत्ता से पुनर्मिलन के लिए आकुल और व्याकुल हो जाता है । नायक की नायिका से पुनर्मिलन

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 508,509.

की इच्छा आरम्भ है । इसके पश्चात् नायिका के पुनर्मिलन के लिए पद्मावती से विवाह प्रयत्न है, राजा के द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता का मिलन प्राप्त्याशा है और नियताप्ति भी है । छठे अंक में नायक-नायिका का मिलन फलागम है । इसी प्रकार अवस्था के क्रम में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति इत्यादि पाँच सन्धियों का भी विभाजन किया जा सकता है ।

इसी प्रकार तापसवत्सराजम् नाटक में भी पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाएं और पाँच नाटक सन्धियाँ प्राप्त होती हैं । यहाँ भी लावाणक ग्राम में अग्निदाह के पश्चात् प्रियतमा वासवदत्ता से सम्बन्धित वस्तुओं पशुओं और पक्षियों को देखकर नायक, नायिका से पुनर्मिलन की तीव्र इच्छा रखता है जो आरम्भ है । रानी के वियोग में तापसवेश धारण करने वाला उदयन अपने मन्त्रियों के सहयोग से पद्मावती से विवाह आदि की योजना प्रयत्न है । वासवदत्ता से विदूषक का मिलन और विदूषक के द्वारा राजा से वासवदत्ता के स्वप्न में मिलने की बात बतलाना प्राप्त्याशा है जो पँचम अंक में दिखाई देती है । छठे अंक में यौगन्धरायण से मिलन और अन्तत: वासवदत्ता से पुनर्मिलन नियताप्ति और फलागम है । इसी प्रकार इस नाटक में क्रमश: मुखसन्धि, प्रतिमुख संधि, गर्भसन्धि, विमर्श सन्धि और उपसंहृत संधि आदि नाटक की पाँच सन्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

दोनों ही नाटकों में विष्कम्भक और प्रवेशक का संयोजन किया गया है । उदाहरण के लिए स्वप्नवासवदत्तम् के छठे अंक के प्रारम्भ में मिश्र विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है, जहाँ पर प्रतिहारी कंचुकीय परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसमें राजा उदयन की रानी वासवदत्ता की

घोषवती वीणा की प्राप्ति की सूचना दी गई । और महाराज उदयन से सूर्यामुख महल से उतरने की भी सूचना दी गई । इसी प्रकार इसी नाटक के द्वितीय और चतुर्थ अंक में प्रवेशक का संयोजन किया गया है, जहाँ पर चेटी और कुंजरिका परस्पर वार्तालाप करते हैं तथा दूसरे स्थल पर चेटी और विदूषक का वार्तालाप होता है ।

इसी प्रकार तापसवत्सराजम् में प्रथम अंक के प्रारम्भ में विष्कम्भक का प्रयोग प्राप्त होता है । जहाँ पर चेटी और कैंचुकीय वार्तालाप करते हैं । इसी प्रकार द्वितीय अंक के प्रारम्भ में भी विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है,जहाँ पर विनीत भद्र अग्निदाह की भयानकता की सूचना देता है । तृतीय अंक के प्रारम्भ में भी विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है । जहाँ माणवक और लामकायन की बातचीत होती है । प्रवेशक का प्रयोग छठे अंक में किया गया है, जहाँ पर चेटी पद्मावती को सूचना दे रही है । इसीप्रकार दोनों नाटकों में भरतवाक्यम् का प्रयोग किया गया है जिससे नाट्यशास्त्र की प्राचीन परम्परा का परिपालन हुआ है ।

इन दोनों ही नाटकों में नाट्यशास्त्र के नियमानुसार अर्थोपक्षेपक भी प्राप्त होते हैं जिनमें से 'विष्कम्भक' और 'प्रवेशक' मुख्य रूप से इन दोनों नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं । भूत और भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की सूचना देने वाले अर्थोपक्षेपक को विष्कम्भक कहते हैं । इसके सूचक मध्यम श्रेणी के पात्र होते हैं । 'प्रवेशक' भी घटनाओं की सूचना पूर्ववत् दी जाती है । परन्तु इसमें सूचक पात्र अधम श्रेणी के होते हैं । नीच पात्रों से युक्त होने के कारण नाटक के आरम्भ में प्रवेशक का प्रारम्भ नहीं होता है, किन्तु विष्कम्भक कहीं भी प्रयुक्त हो सकता है, विष्कम्भक दो प्रकार का

होता है, शुद्ध-विष्कम्भक तथा मिश्र- विष्कम्भक । शुद्ध-विष्कम्भक मेंसभी पात्र मध्यम श्रेणी के तथा संस्कृत बोलने वाले होते हैं, परन्तु मिश्र-विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी तथा मिश्रश्रेणी दोनों प्रकार के पात्र होते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उदयन और वासवदत्ता की प्रणय-कथा से गुम्फित ये दोनों नाटक - 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'तापसवत्सराजम्' संस्कृत के श्रेष्ठ नाटक हैं । इन दोनों नाटकों में यदि कुछ साम्य है तो वैषम्य भी है, दोनों में नाटकीयता भी है और काव्यात्मकता भी है । दोनों में ही चरित्र का उदात्तीकरण और नायक-नायिका का सत्य और पवित्र प्रेम अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रस्फुटित हुआ है ।

0000000
00000
000
0

/:/

च तु र्थ - अ ध्या य

पात्रों का तुलनात्मक चरित्र - चित्रण

:/

च तु र्थ - अ ध्या य

पात्रों का तुलनात्मक चरित्र-चित्रण

नायक :

कथावस्तु के बाद रूपकों का दूसरा भेदक नेता या नायक होता है ।[1] नेता शब्द के साथ नायक का सम्पूर्ण परिवार आ जाता है । नायक, नायक के साथी, नायिका, नायिका की सखियाँ इत्यादि प्रतिनायक और उसके साथी सभी नेता के अंग माने जाते हैं । नाटक इत्यादि के इतिवृत्त का नायक वही बन सकता है जो विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर प्रियबोलनेवाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मन वाला, वाग्मी, कुलीन, स्थिर मनवाला और युवक होता है । वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा कला तथा मान से युक्त होता है । वह शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है ।[2] नाट्यशास्त्र के अनुसार नायक चार प्रकार का होता है। यह भेद नायक की प्रकृति के आधार पर किया गया है । भरतमुनि ने पात्रों को प्रकृति के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया है - (1) उत्तम प्रकृति, (2) मध्यम प्रकृति, (3) अधम प्रकृति । यहाँ पर प्रकृति का अर्थ है स्वभाव । स्वभाव के अनुसार ही पात्रों के यह भेद किए जाते हैं । प्रकृति के अनुसार ही पात्रों के व्यापार होते हैं । उत्तम प्रकृति वाला व्यक्ति सदा उदात्त व्यापारों में ही अनुरक्त होता है । वह ऐसा कोई भी कार्य नहीं करता

---

1. वस्तुनेता रसस्तेषां भेदकः, दशरूपक 1·11, पृष्ठ 7
2. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
   रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरोयुवा,
   बुद्ध्युत्साहस्मृति प्रज्ञाकलामान-समन्वितः, ।
   शूरोदृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥
   दशरूपक 2·12, पृष्ठ संख्या-75,

जिससे उसकी गम्भीरता तथा सहानुभूति को कभी धक्का लगे। मध्यम प्रकृति का कार्य साधारण लोगों का व्यापार होता है। अधम प्रकृतिवाला पुरुष स्वभाव से ही नीचे की ओर जाने वाला होता है। एक बार जिस पात्र की जो भी प्रकृति स्वीकृत कर ली जाती है, इसे नाटक में उसी प्रकार निर्वाह करना पड़ता है। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार पात्रों का बोलचाल व्यवहार, संगति और भाषण, वचन इत्यादि सब उसकी प्रकृति के अनुकूल होने चाहिए।

दशरूपक के अनुसार नायक चार प्रकार के होते हैं।[1] ये चारों प्रकार के नायक "धीर" तो होते ही हैं, धीरत्व के अतिरिक्त इनमें अपनी-अपनी प्रकृतिगत विशेषता भी पाई जाती है। नायक का पहला प्रकार, धीर ललित है। दूसरा 'धीर प्रशान्त', तीसरा 'धीरोदात्त' और चौथा 'धीरोद्धत' उपर्युक्त इन चारों नायकों के उदाहरण क्रमशः वत्सराज उदयन, चारुदत्त, राम तथा भीमसेन हैं।

(1) धीर ललित :

धीर ललित वह नायक है जो सर्वथा निश्चिन्त रहता है। वह कोमल स्वभाव का होता है, सुखी रहता है तथा नृत्यगीतादि कलाओं में आसक्त रहता है।[2] धीर ललित नायक राज्यपाट की या दूसरी चिन्ताओं से मुक्त होता है। वह कला का प्रेमी और रसिकवृत्ति का होता है। प्रेम उसका उपास्य होता है, वह भोग-विलास में लिप्त रहता है, तथा प्रायः अनेक पत्नीवाला होता है। 'धीर ललित' नायक अधिकतर राजा ही होता

---

1. भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्, दशरूपक 2·3, पृष्ठ 79
2. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।
दशरूपक 2·3 पृष्ठ 79.

है । इसका राज्यकार्य आदि मंत्री संभाले रहते हैं और वह अन्त:पुर की चहर दीवारी में प्रेम-क्रीड़ा किया करता है । वह नवयुवतियों और सुन्दरियों के प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन करता रहता है । अपने इस व्यापार में वह अपनी महारानी से सदैव डरता हुआ सशंकित रहता है । स्वप्नवासवदत्तम् तथा तापसवत्सराजम् नाटकों का नायक वत्सराज उदयन ऐसा ही 'धीर ललित' नायक है ।[1]

§2§ धीर प्रशान्त :

धीर प्रशान्त प्रकृति का नायक धीर प्रकृति से सर्वथा भिन्न होता है । कुल की दृष्टि से शान्त प्रकृति का होता है । शान्त प्रकृति प्राय: ब्राह्मण या वैश्य में होती है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि धीर प्रशान्त नायक या तो ब्राह्मण होता है या तो वैश्य होता है । शूद्रक के मृच्छकटिक का नायक चारुदत्त तथा भवभूति के मालती-माधव का नायक 'माधव' धीर प्रशान्त है । वे दोनों ही कुल से ब्राह्मण हैं ।[2]

§3§ धीरोदात्त :

धीरोदात्त प्रकृति का नायक भी प्राय: राजा या राज्यकुलोत्पन्न होता है । वह निरभिमानी, अत्यन्त गम्भीर, स्थिर तथा अविकत्थन होता है, जिस व्रत को वह धारण कर लेता है, उसे छोड़ता नहीं है । धीरोदात्त नायक, नायक के सम्पूर्ण आदर्शों से युक्त होता है । उत्तररामचरितम् नाटक के नायक श्रीराम धीरोदात्त नायक हैं ।[3]

---

1. राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्त: समस्तो भर:
   सम्यक्पालनलालिता: प्रशमिताशेषोपसर्गा: प्रजा: ।
   प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
   काम: काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सव: ॥ रत्नावली 1·9, पृष्ठ-13
2. सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक: । दशरूपक 2·3, पृष्ठ-80
3. महासत्त्वोऽतिगम्भीर: क्षमावानविकत्थन: ।
   स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रत: ॥ दशरूपक 2·4, पृष्ठ-84

§4§ धीरोद्दत :

धीरोद्दत नायक घमण्डी, ईर्ष्यापूर्ण आत्मश्लाघी और छली होता है । परशुराम अथवा 'भीमसेन' धीरोद्दत नायक हैं ।

नाट्यशास्त्र में नायक का एक दूसरे प्रकारका भी वर्गीकरण पाया जाता है । यह वर्गीकरण उसके प्रेम व्यापार एवं तत्सम्बन्धी व्यवहार के अनुरूप होता है । प्रेम की अवस्था में नायक के दक्षिण, शठ, धृष्ट तथा अनुकूल यह चार रूप देखे जा सकते हैं । ये रूप अपनी परिणीता पत्नी के प्रति किए गए उसके व्यवहार में पाए जाते हैं, दक्षिण नायक एक से अधिक प्रियाओं को एक ही तरह से प्यार करता है । स्वप्नवासवदत्तम्, तापस-वत्सराजम् और रत्नावली नाटिका का नायक वत्सराज उदयन दक्षिण नायक है । शठनायक अपनी ज्येष्ठानायिका के साथ खराब व्यवहार तो नहीं करता, परन्तु उससे छिप-छिपकर दूसरी नायिकाओं से प्रेम करता है । धृष्ट नायक धोखेबाज होता है, वह ज्येष्ठानायिका कीचिन्ता नहीं करता है । अनुकूल नायक सदा एक नायिका के प्रति ही आसक्त रहता है । उत्तररामचरितम् नाटक के नायक श्रीराम अनुकूल नायक हैं जो केवल सीता के ही प्रति आसक्त हैं ।[1] नाट्यशास्त्र के अनुसार नायक में आठ प्रकार के सात्त्विक गुणों का होना पाया जाता है -§1§ शोभा, §2§ विलास, §3§ माधुर्य, §4§ गम्भीरता, §5§ स्थैर्य, §6§ तेज, §7§ लालित्य एवं §8§ औदार्य ।[2]

---

1. दशरूपक 2·6,7 पृष्ठ 87-91
2. शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यतेजसी ।
   ललितौदार्यमित्यष्टौ सत्त्वजाः पौरुषा गुणाः ॥
   दशरूपक 2·10, पृष्ठ 94.

नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है और नायक के साथी पताका नायक और पीठ मर्द कहलाते हैं । नायक के राज्यकार्य तथा धर्मकार्य देखने वाले उसके सहायक मन्त्री, सेनापति आदि होते हैं । प्रेम के समय नायक के सहयोगी और सहकारी विदूषक तथा विट आदि पात्र होते हैं । नाटककार अपनी आवश्यकतानुसार अपने नाटकों में पात्रों का संयोजन करता है ।

उदयन :

वत्सराज उदयन के चरित्र-चित्रण के लिए प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् इन तीनों नाटकों का अनुशीलन परिशीलन अत्यन्त आवश्यक है । यह सर्वविदित है कि प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का पूर्वभाग या प्रस्तावना है । प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम् के अनुसार वत्सराज उदयन संगीत प्रेमी तथा वीणा वादन में सिद्धहस्त हैं । वह गजशास्त्र का निष्णात विद्वान् है । गजशास्त्र का विद्वान् होने के कारण वह दुष्ट से दुष्ट हाथियों को पकड़ लेता है, वह वासुकि नामक सर्पराज के अनुज वसुनेमि द्वारा प्रदत्त घोषवती नामक वीणा के बजाने में अत्यन्त निपुण हैं, वह गज सम्बन्धी वशीकरण विद्या को जानता है । वह घोषवती वीणा बजाकर दुष्ट से दुष्ट हाथी को भी वश में कर लेता है । यह कहा जाता है कि वत्सराज उदयन महाभारत के प्रमुख पात्र वीरवर अर्जुन के वीरपुत्र अभिमन्यु के वंशानुक्रम में पच्चीसवीं पीढ़ी के सन्तान थे ।[1] एक ओर वे जहाँ उच्चकुलीन विद्वान्, गुणज्ञ और संगीतकला के पारंगत विद्वान् हैं तो वहीं दूसरी ओर वे सर्वांग - सुन्दर, रूपवान्, तेजस्वी और ललित स्वभाव के धनी हैं ।

---

1. राजा - शतानीकस्य पुत्रः, सहस्रानीकस्यनप्ता ,
प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, भूमिका, डॉ0प्रभाकर शास्त्री, जयपुर-1981
पृष्ठ 74

वत्सराज उदयन को श्रेष्ठ हाथियों को वश में करने का बहुत शौक रहा है। गजशास्त्र के अनुसार हाथियों में नीलवर्ण का हाथी सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उदयन को यह सूचना मिलती है कि "नागवन" में एक नील हाथी है, जो दुर्दान्त और दुर्दमनीय है, वह इस सूचना पर अपनी घोषवती वीणा लेकर नीलगज को पकड़ने के लिए नागवन जाता है।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम् नाटक के अनुसार इस घटना से सम्बन्धित दूसरा पक्ष भी है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत महासेन यह चाहता था कि वत्सराज उदयन उसकी आधीनता स्वीकार करें, वह इस संबंध में अनेक प्रयत्न भी करता है किन्तु उसे सफलता नहीं मिलती है। वह सर्वगुण सम्पन्न राजा उदयन से अपनी प्रियपुत्री वासवदत्ता का विवाह करना चाहता है। वह इसके लिए नागवन में नीलगज की घटना को प्रचारित करता है, और राजा उदयन को नागवन में पहुँचने के लिए बाध्य कर देता है। उदयन नागवन में दिखाई देने वाले नील हाथी को पकड़ने के लिए जाते हैं। उस हाथी के समीप पहुँचते ही नकली नील हाथी के पेट से अनेक योद्धा निकलकर उदयन को गिरफ्तार कर लेते हैं और उसे प्रद्योत के पास राजधानी उज्जयिनी ले जाते हैं, वहाँ पर कंचुकीय उदयन की वीणा को प्रद्योत के सामने प्रस्तुत करता है, जिसे वह अपनी बेटी के पास भेज देता है। इधर उदयन वासवदत्ता को वीणा बजाने की शिक्षा देता है। महामन्त्री यौगन्धरायण की राजनीति और दक्षता से उदयन भद्रवती हथिनी में वासवदत्ता को बैठाकर अपनी राजधानी लौट आता है। प्रद्योत पहले ही अपनी पुत्री का विवाह वत्सराज उदयन से करना चाहते थे।[1] किन्तु उन दोनों के भाग जाने पर वह

---

1. यौगन्धरायणः एवं सम्बन्धं मन्यते महासेनः।
प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् अंक-4 पृष्ठ 167.

चित्रफलक के द्वारा उनकी अनुपस्थिति में दोनों का विवाह सम्पन्न कर देते हैं। उदयन और वासवदत्ता का प्रणय अपूर्व है । दोनों ही नायक-नायिका प्रथम दृष्टि में एक दूसरे से प्रणय में आबद्ध हो जाते हैं । उदयन और वासवदत्ता की यह प्रणय-कथा इतनी मादक और आनन्ददायनी रही है कि कविकुल-गुरु-कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध कृति मेघदूतम् में उदय-कथा के प्रेमी रसिक वृद्धजनों का उल्लेख करना नहीं भूलते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि अभी भी उज्जयिनी के निवासी उदयन-वासवदत्ता-प्रणयकथा एक दूसरे के सुनाते हैं और आनन्दित होते हैं ।[1]

स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् नाटकों के अनुसार जब हम उदयन का चरित्र-चित्रण करते हैं तो उससे विदित होता है कि प्रद्योतसुता वासवदत्ता उदयन से अत्यधिक स्नेह करती है और उदयन भी वासवदत्ता से अत्यधिक स्नेह करता है । यह बात तो इसी घटना से सिद्ध हो जाती है कि दोनों प्रेमी प्रेम के बन्धन में बंधकर उज्जयिनी से छिपकर भाग आए थे, दोनों नाटकों के अध्ययन से विदित होता है कि वह इतना अधिक विलासी तथा कामप्रिय है कि वासवदत्ता के सौन्दर्य में आसक्त हो जाने के कारण अपने राज्यकार्य की उपेक्षा कर देता है । इसीलिए राजा उदयन को ~~वासवदत्ता~~ वासवदत्ता के प्रेम में आसक्त और विलास में डूबा हुआ समझकर पाँचाल नरेश वत्सदेश पर आक्रमण करता है और राज्य के बड़े भाग पर अपना अधिकार जमा लेता है । तापसवत्सराजम् नाटक के अनुसार राज्य की रक्षा के प्रति उदयन का उपेक्षाभाव यौगन्धरायण के उस कथन से विदित होता है,जब वह महारानी

---

1. प्राप्यावन्तीनुदयन-कथाकोविदग्रामवृद्धान् ।
मेघदूतम् 1·30.

वासवदत्ता से राज्य की स्थिति पर बात करता है । यौगन्धरायण वासवदत्ता से कहता है कि आप जानती हैं कि नीच शत्रुओं ने आक्रमण करके हमारी कौशाम्बी में अधिकार कर लिया है । इधर आपके पति राजनीति से द्वेष करते हैं और वे राज्य की स्थिति के प्रति असावधान हैं ।[1]

यौगन्धरायण के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदयन में दूरदर्शिता और राजनयिक सूझ-बूझ की कमी है । वह प्रजापालन की अपेक्षा अपने सुख और उपभोग का ध्यान अधिक रखता है । यदि उसे यौगन्धरायण और रुमण्वान् जैसे राजभक्त और दूरदर्शी बुद्धिमान् मन्त्री न मिले होते तो अवश्य ही उसका राज्य विनष्ट हो जाता और वह पांचाल नरेश आरुणि का दास बन जाता । ऐसा प्रतीत होता है कि उदयन की अपेक्षा महारानी वासवदत्ता को अपने राज्यरक्षा की ज्यादा चिन्ता है । इसीलिए वह महामन्त्री की योजनानुसार अपने पति, राज्य तथा प्रजाजनों की रक्षा के लिए एक सामान्य प्रोषित भर्तृका नारी का जीवन बिताने के लिए प्रस्तुत हो जाती है । यहाँ दोनों नाटकों के अध्ययन से यह भी प्रतीत होता है कि राजा उदयन वासवदत्ता जैसी रूपयौवनसम्पन्न प्रेमिका को पाकर विलास में इतना अधिक डूब जाता है कि उसे अपने सामने स्थित विनाश भी दिखाई नहीं देता है ।

उदयन में न तो धैर्य दिखाई देता है, न वीरता दिखाई देती है और न ही दूरदर्शिता दिखाई देती है । एक श्रेष्ठराजा के लिए ये आवश्यक

---

1. कौशाम्बीं परिभूय नः कृपणकैर्विद्वेषिभि स्वीकृतां
जानास्येव तथा प्रमादपरतां पत्युर्नयद्वेषिणः ॥
तापसवत्सराजम् 1·7, पृष्ठ 14.

वासवदत्ता से राज्य की स्थिति पर बात करता है । यौगन्धरायण वासवदत्ता से कहता है कि आप जानती हैं कि नीच शत्रुओं ने आक्रमण करके हमारी कौशाम्बी में अधिकार कर लिया है । इधर आपके पति राजनीति से द्वेष करते हैं और वे राज्य की स्थिति के प्रति असावधान हैं ।[1]

यौगन्धरायण के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदयन में दूरदर्शिता और राजनयिक सूझ-बूझ की कमी है । वह प्रजापालन की अपेक्षा अपने सुख और उपभोग का ध्यान अधिक रखता है । यदि उसे यौगन्धरायण और रुमण्वान् जैसे राजभक्त और दूरदर्शी बुद्धिमान् मन्त्री न मिले होते तो अवश्य ही उसका राज्य विनष्ट हो जाता और वह पांचाल नरेश आरुणि का दास बन जाता । ऐसा प्रतीत होता है कि उदयन की अपेक्षा महारानी वासवदत्ता को अपने राज्यरक्षा की ज्यादा चिन्ता है । इसीलिए वह महामन्त्री की योजनानुसार अपने पति, राज्य तथा प्रजाजनों की रक्षा के लिए एक सामान्य प्रोषित भर्तृका नारी का जीवन बिताने के लिए प्रस्तुत हो जाती है । यहाँ दोनों नाटकों के अध्ययन से यह भी प्रतीत होता है कि राजा उदयन वासवदत्ता जैसी रूपयौवनसम्पन्न प्रेमिका को पाकर विलास में इतना अधिक डूब जाता है कि उसे अपने सामने स्थित विनाश भी दिखाई नहीं देता है ।

उदयन में न तो धैर्य दिखाई देता है, न वीरता दिखाई देती है और न ही दूरदर्शिता दिखाई देती है । एक श्रेष्ठराजा के लिए ये आवश्यक

---

1. कौशाम्बीं परिभूय नः कृपणकैर्वैरिभिः स्वीकृतां
   जानास्येव तथा प्रमादपरतां पत्युर्नयद्वेषिणः ॥
   तापसवत्सराजम् 1·7, पृष्ठ 14.

गुण माने जाते हैं । उसके जो प्रशंसनीय गुण हैं, उसकी कामदेव जैसी सुन्दरता, आदर्श प्रेमी और श्रेष्ठ पति । वस्तुत: वह एक आदर्श प्रेमी व आदर्श पति है। उसके लिए उसकी प्रेमिका का जीवन और प्रेम ही सब कुछ है ।[1] वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम अचल और निष्कपट है । दोनों ही नाटकों में अग्निदाह से वासवदत्ता के जल जाने की बात प्रचारित की गई है । वह इस समाचार से इतना व्यथित होता है कि स्वयं को भी वह उसी अग्नि में भस्मसात् कर देना चाहता है किन्तु मन्त्रीगण उसे अग्नि में प्रवेश करने से रोक देते हैं । वह वासवदत्ता के जले हुए आभूषणों को अपने वक्ष से लगाता है, वह मूर्छित हो जाता है । जागृत होने पर वह वासवदत्ता को स्मरणकर कारुणिक विलाप करता है । उसके इस अनन्य प्रणय का वर्णन एक ब्रह्मचारी करता है । वह कहता है कि इस समय उस राजा के समान न तो कोई चक्रवाक है और न विशिष्ट रमणियों से अलग हुए ऐसे कोई दूसरे ही व्यक्ति हैं । वह नारी धन्य है जिसे उसका पति इतना अधिक प्रेम करता है । निःसन्देह पति के इस अनन्य प्रेम के कारण जली हुई भी वासवदत्ता न जले हुए के समान है ।[2]

तापसवत्सराजम् में भी वासवदत्ता के दाह का समाचार सुनकर वह विह्वल हो जाता है और अग्नि की कठोरता के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करता है । वह कहता है कि क्या तुम्हारी दृष्टि अमृत की वर्षा करने वाली नहीं थीं, क्या तुम्हारा मुख हास्यरूपी मधु को प्रवाहित

---

1. किम् अथवा प्रेमासमाप्तोत्सव: ।
तापसवत्सराजम् 1·14

2. नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः, धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 1·13 पृष्ठ 55.

नहीं करता था, क्या तुम्हारा हृदय प्रेम से भीगा हुआ नहीं था ?, क्या शरीर के प्रत्येक अवयव चंदन के स्पर्श के समान ठंडे नहीं थे ? पता नहीं किस अंग में अपने कदम जमाकर इस निर्दयी अग्नि ने तुम्हें जला दिया है । निश्चित रूप से वज्र निर्मित यह कोई दूसरी अग्नि है ; जिसने यह अनुचित कार्य किया है ।[1] इसी नाटक के तृतीय अंक में राजा विदूषक से कहता है कि वासवदत्ता को जलाने वाली अग्नि के बुझ जाने पर भी वह अग्नि अभी भी मुझे निरन्तर जलाये जा रही है, दुःख के वेग से भ्रम में पड़ा हुआ मैं जो अपनी प्रिया के साथ-साथ नहीं चला गया तापस होकर मिथ्या ही मैं अपने को समझ रहा हूँ । वस्तुतः मैंने प्रेम के अनुरूप कार्य नहीं किया है । मुझे भी अपनी प्रियतमा के साथ ही चला जाना चाहिए था । तापस बना हुआ उदयन अपने मित्र विदूषक से पुनः कहता है कि वासवदत्ता के नाम का ही मैं जप करता हूँ । उपदेश रूप में गुरु द्वारा दिया गया मन्त्र न जाने कहाँ लुप्त हो गया है । चित्त में सदैव प्रियतमा की मूर्ति का ध्यान रहता है । किसी अन्य का ध्यान नहीं । उसकी ही बातें कानों में निरन्तर सुनाई देती हैं । मुनियों द्वारा दिए गए धर्म के उपदेश सुनाई नहीं देते हैं । तपस्या करते हुए भी मेरे मन में जो कुछ आता है, देवी वासवदत्ता उसके पीछे-पीछे हर समय विद्यमान रहती है ।[2]

---

1. दृष्टिर्नामृतवर्षिणी स्मित-मधुप्रस्यन्दि वक्त्रं न किं,
स्नेहार्द्रं हृदयं न चन्दन-रस-स्पर्शानि चांगानि वा ।
कस्मिंल्लब्धपदेन किं कृतमिदं क्रूरेण दग्धाग्निना,
नूनं वज्रमयोऽन्य एव दहनस्तस्येदमाचेष्टितम् ।
तापस-वत्सराजम् 2•9, पृष्ठ 43

2. तन्नामैव ममैति जप्यपदके: क्वाप्यन्यतस्तेर्गतं,
नित्यं सा लिखितेव चेतसि सदैव ध्येयं विधेयं न तत् ।

••••शेष अगले पृष्ठ पर

वस्तुत: सम्पूर्ण नाटक में तथा उसके अन्त तक हम देखते हैं कि उदयन वासवदत्ता की याद में आँसू बहाता रहता है ।[1] हम यह देखते हैं कि वासवदत्ता के अभाव में उदयन का जीवन सारहीन हो जाता है । उससे पुनर्मिलन की एक आशा है और वह है सिद्धादेश । सिद्धादेश के द्वारा उसे यह विश्वास है कि वासवदत्ता से उसका पुनः र्मिलन होगा, ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धादेश से सत्यता को प्रमाणित होने तक वह अपने प्राण धारण किए है । अन्त में उसे जब यह विश्वास होने लगता है कि वासवदत्ता से पुनर्मिलन की आशा नहीं है तो वह चिता में जलकर अपना प्राणान्त कर देना चाहता है । इधर स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का जब हम अवलोकन करते हैं तो देखते हैं कि राजा का वासवदत्ता-वियोगजन्य संताप असहनीय है, वह अपनी आँखों से सदैव वासवदत्ता को प्रत्यक्ष की तरह देखता है । वासवदत्ता को भूलना उसके लिए एक बड़ी समस्या है । उसका राजकुमारी पद्मावती से दूसरा विवाह हो चुका है और नवपरिणीता वधू पद्मावती का सौन्दर्य भी अद्वितीय है । फिरभी उसका सौन्दर्य राजा को आकर्षित नहीं कर पाता, इसीलिए वह विदूषक से कहता है कि यद्यपि राजकुमारी पद्मावती अपने रूप शील और माधुर्य से बहुत प्रिय है, फिरभी वासवदत्ता में आसक्त मेरे मन को वह खींच नहीं सकती ।[2] इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वह अपनी दूसरी

.....तद्भाव: श्रुतिमामनन्ति न पुनर्धर्मोपदेशा मुने-
र्यन्मे यात्तितपस्यतोऽपि हृदये देव्या तदन्वीयते ।"
तापसवत्सराजम् 3.12, पृष्ठ 91

1. कष्टं केवलमेव राजतनया दग्धा वराकी मया ।
तापसवत्सराजम् 6.4, पृष्ठ 203

2. पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यै:
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ।
स्वप्नवासवदत्तम् 4.5 पृष्ठ 126.

पत्नी पद्मावती से कम प्रेम करता है। वह जब पद्मावती की शिरोवेदना की बात सुनता है तो उससे वह व्याकुल हो जाता है और मन में अनेक प्रकार की आशंकायें करते हुए कहता है कि रूप सम्पत्ति तथा गुणों से युक्त प्रिय दूसरी पत्नी को प्राप्त करके पहली चोटसे दुखी हुआ भी मेरा शोक अब कुछ कम सा हो गया था किन्तु भुक्तभोगी होने के कारण मै पद्मावती को भी उसी तरह वासवदत्ता के समान दिवंगत होने वाली समझ रहा हूँ।[1]

वह वासवदत्ता को स्वप्न में देखता है और अपने प्रश्नों का उत्तर मांगता है। यह उसके आसक्ति की चरमसीमा है। वह उससे पूँछता है कि क्या तुम मुझसे नाराज हो? यदि तुम नाराज नहीं हो तो तुमने अलंकार क्यों नहीं धारण किए। विदूषक के यह कहने पर कि वासवदत्ता की मृत्यु हो चुकी है, आपने स्वप्न देखा होगा। इस पर वह भावविभोर होकर कह उठता है कि यदि वह स्वप्न है तो मेरा न जागना ही अच्छा होता औरयदि यह मेरा मतिभ्रम है तो वह मेरा मतिभ्रम चिरकाल तक बना रहे।[2]

तापसवत्सराजम् नाटक के अनुसार पद्मावती से दूसरा विवाह उदयन को रुचिकर नहीं है, इस द्वितीय विवाह से उसके मन में यह प्रतीति होती है जैसे कि वह वासवदत्ता को प्रति विश्वासघात करने जा रहा है।

---

1. रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्यशोकः।
   पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥
   स्वप्नवासवदत्तम् 5.2 पृष्ठ 153.

2. यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्।
   अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमोऽह्यस्तु मे चिरम् ॥
   स्वप्नवासवदत्तम् 5.9. पृष्ठ 176

तुलनीय- स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ॥ अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.10.

दूसरा विवाह उसे महापातक जैसा प्रतीत होता है । वह इस प्रसंग में पद्मावती का मुख से नाम भी नहीं लेना चाहता । शोकाकुल होकर वह कहता है कि हे देवी ! मेरी आँखें कभी तुम्हारे मुख से हटकर कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं करती थीं, मेरा वक्ष सदैव तुम्हारे शयन के लिए शय्या के रूप में प्रस्तुत रहता था, मैंने यह भी तुमसे कहा था कि तुम्हारे बिना यह सम्पूर्ण संसार मेरे लिए शून्य हो जाता है, वही मैं दूसरा विवाह करने का विचार करूँगा, इस प्रकार की कल्पना कोई भी नहीं कर सकता था । पर तुम्हारे वियोग में सन्यास की दीक्षा का पाखण्ड करने वाला मैं हे प्रियतमे। दूसरे विवाह के लिए स्वीकृति देकर न जाने क्या अनर्थ करने के लिए प्रस्तुत हो गया हूँ ।[1]

उक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि उदयन वासवदत्ता के प्रति प्रेमान्ध है । उसका प्रेम एकांगी प्रतीत होता है । इसलिए वह स्वयं अपनी आँखों से पद्मावती की भक्ति और त्याग को देखकर भी वह उसे अपना स्नेह नहीं दे पाता है ।[2] पद्मावती के प्रति उदयन का प्रेम हार्दिक और स्वाभाविक नहीं है क्योंकि पद्मावती के साथ उसका विवाह उसके अनुराग के कारण नहीं अपितु सिद्धादेश के अनुरूप वासवदत्ता की प्राप्ति के लिए होता है।[3]

---

1. चक्षुर्यस्य तवाननादपगतं नाभूत्क्वचिन्निर्वृतं,
   येनैषा सततं त्वदेकशयनं वक्षःस्थली कल्पिता ।
   येनोक्तासि विना त्वया मम जगच्छून्यं क्षणाज्जायते,
   सोऽयं दम्भधृतव्रतः प्रियतमे कर्तुं किमप्युद्यतः ॥
   तापस-वत्सराजम् 4·13, पृष्ठ 128
2. तापस-वत्सराजम् 4·8 पृष्ठ 119
3. तापसवत्सराजम् 4·12,14 पृष्ठ 126-130.

पद्मावती के पास भी प्रेमी और स्पन्दनशील हृदय है, उसे भी अपने प्रेम का प्रतिदान चाहिए किन्तु उदयन को इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं है । यद्यपि नायक का पद्मावती से दूसरा विवाह हो गया है, फिरभी जब उसे वासवदत्ता से मिलने की आशा नहीं रहती है तब वह नवपरिणीता स्नेह की मूर्ति पद्मावती की चिन्ता न करते हुए वासवदत्ता की स्मृति में चिता में जलकर प्राणान्त कर देना चाहता है । उदयन के चरित्र की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि जिस राजकुमारी पद्मावती ने उसके स्नेह में पागल होकर अपना घरबार छोड़ दिया, तपस्विनी का रूप धारण कर कठोर साधना की, उसके साथ नायक का परिणय भी हो गया ; फिरभी उसे जीवन की देहली पर खड़ा करके चिता में कूदने की इच्छा करना उसकी हृदयहीनता का परिचायक है । जहाँ एक ओर वासवदत्ता के प्रति उसके हृदय की उदारता और उसका आदर्श प्रेम प्रशंसा के योग्य है, वहीं दूसरी ओर पद्मावती के प्रति उसकी यह संकीर्णता निन्दनीय है ।

दोनों नाटकों के मन्थन और विमन्थन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वासवदत्ता के प्रेम ने उदयन को अन्धा बना दिया है । इसीलिए नायक का सम्पूर्ण जीवन उसी में केन्द्रित होकर वासवदत्तामय हो गया है । महामन्त्री यौगन्धरायण के जल मरने के समाचार से वह इसलिए दुखी होता है कि उस पर अपने सम्पूर्ण राज्य का भार सौंप कर वह स्वयं सुखोपभोग में डूब सकता था ।[1]

नाटककार कविवर अनंग हर्ष ने यद्यपि अपने नाटक में वत्सराज

---

1. रागान्धे मयि कस्य मास्ति मनः खेदस्समुत्पद्यते
कस्मिन्नु राज्यभरं निवेश्य सकलं सेवे सुखानीच्छया ॥
तापसवत्सराजम् 2.18, पृष्ठ 53.

को प्रमुख स्थान दिया है और उसी के नाम से नाटक का नामकरण भी किया है, फिरभी जब हम तुलनात्मक रूप से समीक्षा करते हैं तो पाते हैं कि तापस - वत्सराजम् का नायक स्वप्न-वासवदत्तम् के नायक की उच्चता को प्राप्त नहीं कर सका है । कविवर अनंग हर्ष ने अपनी कृति में उदयन के प्रेमी पक्ष का ही भरपूर चित्रण किया है और अपनी सम्पूर्ण शक्ति उसके एकांगी प्रेम के वर्णन में लगा दी है । और नायक के जीवन से सम्बन्धित अन्य पक्षों की उपेक्षा की है । किन्तु कविवर भास के स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में यह बात नहीं है । यद्यपि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में भी वासवदत्तागत प्रेम की प्रधानता है परन्तु नवविवाहिता राजकुमारी पद्मावती के प्रति राजा का सर्वथा निरपेक्ष भाव नहीं है । स्वप्नवासवदत्तम् का नायक उदयन वासवदत्ता के प्रेम में अन्दर ही अन्दर चाहे जितना विगलित होता रहा हो, परन्तु उसने अपनी इस चिन्ता को पद्मावती पर कभी व्यक्त होने नहीं दिया है ।[1] नायक यह कदापि नहीं चाहता कि उसके इसप्रकार के व्यवहार से नवविवाहिता पद्मावती के हृदय को किसी प्रकार का कोई आघात लगे । स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के चतुर्थ अंक में राजा की आँखों में वासवदत्ता की स्मृति के कारण आँसू उमड़ रहे हैं । उसी अवसर पर वहाँ पद्मावती प्रवेश करती है और वह विदूषक से राजा की आँखों में आँसुओं का कारण पूछती है । राजा उसके उत्तर में पद्मावती से कहता है कि शरदऋतु के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल काश पुष्प का कण हवा में उड़कर आँखों में पड़ गया है ।[2] राजा अपने मन में कहता है कि नवविवाहिता राजकुमारी पद्मावती रोने का वास्तविक कारण सुनकर बहुत

---

1. राजा : पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
स्वप्नवासवदत्तम् 4•5, रामनारायनलाल बेनी माधव 1961 संस्करण इलाहाबाद, पृष्ठ 126

2 स्वप्नवासवदत्तम् 4•8, पृष्ठ 140

दुखी होगी । यद्यपि यह बहुत गम्भीर प्रकृति की है किन्तु नारियों का स्वभाव बहुत कातर होता है । इसलिए मुझे अपने आँसुओं के वास्तविक कारण को नहीं बतलाना चाहिए ।[1]

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के उदयन में लोकव्यवहार की उदारता है और इसका परिणाम पद्मावती के उस टिप्पणी में मिलता हैं, जहाँ वह कहती है कि चतुर व्यक्ति का सेवक भी चतुर ही होता है । यदि सेवक मूर्ख होता तो यहाँ झट से कह देता कि राजा वासवदत्ता की याद में रो रहे हैं तब कितनी विषम स्थिति हो जाती ।[2] इसी प्रकार अंतिम दृश्य में वह जिस स्नेह और सम्मान के साथ पद्मावती को अपने बराबर के आसन पर बैठने का आदर देता है वह उसके दक्षिण्य एवं पद्मावती के कोमल हृदय की रक्षा के भाव का ही परिचायक है ।

इसके अतिरिक्त स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में और भी ऐसे प्रसंग है जिनसे सिद्ध होता है कि उसने वासवदत्ता के प्रति अपने अगाध स्नेह के कारण अपनेमन और बुद्धि का सन्तुलन खोया नहीं है । धर्म,नीति और लोकव्यवहार का वह बराबर ध्यान रखता है । उदयन को महान् पाण्डवों से उत्तराधिकार में स्वाभिमान और शौर्य मिला था । वह पाण्डववंशीय राजाओं की 26वीं पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है । इसलिए वह राजोचित गुणों से भी सम्पन्न है । जब मगध राज का कंचुकीय उसे युद्ध में चलने

---

1. इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वाभावस्तु कातर: ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 4·9, पृष्ठ 141.

2. पद्मावती : [आत्मगतम्] अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । जयत्वार्यपुत्र: । इदं मुखोदकम् ।
स्वप्नवासवदत्तम्, पृष्ठ 139.

के लिए बुलाने आता है तो वह वीरोचित शब्दों में कहता है कि मैं अभी आक्रमण करके विशाल हाथियों एवं घोड़ों से पार किए हुए और चलाये हुए बाणों रूपी भयंकर लहरों वाले महासागर के समान युद्ध में घोर कर्म करने में चतुर उस आरुणि को मार डालता हूँ ।[1] ऐसे वाक्य कोई वीर और साहसी राजा ही कह सकता है, भीरु और विलासी नहीं । नाटक के अन्त में, महासेन का कंचुकीय वत्सराज उदयन को उसके साहस और उत्साह के लिए बधाई देते हुए कहता है कि जो उत्साही होते हैं, वे ही राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं ।[2]

अज्ञातवास के बाद जब वासवदत्ता पुनः प्रकट होती है तो राजा उस पर कोई संदेह नहीं करता । इसी प्रकार रुमण्वान् के रहस्य को नितान्त गोपनीय रखने पर वह आश्चर्य तो करता है, किन्तु उस पर क्रुद्ध नहीं होता है । प्रमोदवन में अपने आँसुओं का सत्य कारण इसलिए नहीं बताता कि इससे पद्मावती को दुःख होगा । इतना ही नहीं वह मगधराजा कर युद्ध के लिए दर्शक से सहायता प्राप्त करने में सफल होता है । इससे इसकी व्यावहारिक कुशलता का परिचय प्राप्त होता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वप्नवासवदत्तम् का नायक उदयन एक ओर साहस, उत्साह और धैर्य का परिचय देता है तो दूसरी ओर वह धर्म, नीति और लोकव्यवहार का बराबर ध्यान रखता है । इस दृष्टि से तापसवत्सराजम् नाटक का नायक उदयन बहुत पीछे

---

1. उपेत्य नागेन्द्रतुरंगतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरंगभंगे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 5·13, पृष्ठ 183

2. प्रायेण नरेन्द्र श्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।
स्वप्नवासवदत्तम् 6·7, पृष्ठ 206.

रह जाता है । यहाँ पर उसका प्रेम आधीन और अन्धा दिखाई देता है । इस नाटक में हम उसे आदि से अन्त तक व वासवदत्ता के लिए रोते ही पाते हैं और उसमें राजोचित गुणों का अभाव दिखाई देता है ।[1]

अतः स्पष्ट है कि कविवर भास ने अपने नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में नायक उदयन के जिस चरित्र का गुम्फन किया है, वह प्रशंसनीय है, किन्तु कविवर अनंग हर्ष अपने नाटक के नायक के चरित्र की सृष्टि उसके वंशानुकूल नहीं कर सके हैं ।

नायिका :

नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकों में नायिका का भी उतना ही महत्व है जितना नायक का स्थूल रूप से नायिका को तीन तरह का माना जा सकता है ।[2]

{1} स्वकीया : यह नायक की स्वयं की विवाहिता पत्नी होती है । जैसे- 'उत्तररामचरितम्' नाटक की नायिका सीता ।

{2} अन्याक : वह नायिका जो नायक की पत्नी नहीं है । यह तो किसी व्यक्ति की अविवाहिता हो सकती है या तो किसी की विवाहिता पत्नी । परस्त्री या अन्य पत्नी का नायिका के रूप में प्रयोग नीति और धर्म के विरुद्ध होने के कारण नाटकादि में इसका प्रयोग नहीं कियाजाता है ।

{3} सामान्या : इसे साधारण स्त्री या गणिका कहते हैं । अनेक रूपकों में विशेष रूप से प्रकरण आदि में इसका प्रयोग किया जाता है । उदाहरण के लिए 'मृच्छकटिकम्' की नायिका वसन्तसेना गणिका ही है । हम देखते हैं कि

---

1. राजा {सास्रम्} हा देवि क्वासि, मे प्रयच्छ प्रतिवचनम् ।
तापसवत्सराजम् अंक-05 पृष्ठ 159
2. स्वान्या साधारण स्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा ॥
दशरूपक 2·15, पृष्ठ 98.

अवस्था और प्रकृति के अनुसार नायिका के तेरह भेद होते हैं । और उसकी दशा के अनुसार नायिका के आठ भेद भी होते हैं ।[1]

नायक के गुणों की भाँति नायिका में भी गुणों की स्थिति मानी जाती है । नायिका में ये गुण उसके आभूषण या अलंकार कहे जाते हैं। यह गणना में बीस हैं । इन बीस अलंकारों में पहले तीन शारीरिक गुण हैं । दूसरे सात अयत्नज हैं तथा बाकी दस स्वभावज हैं जो निम्नांकित हैं - भाव, हाव,हेला, शोभा,कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता,औदार्य, धैर्य, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित तथा विहृत आदि ।[2]

वासवदत्ता :

वासवदत्ता स्वप्नवासवदत्तम् तथा तापसवत्सराजम् दोनों नाटकों की प्रधान स्वकीया नायिका हैं, उसमें महारानी के अनुरूप तथा प्रधान नायिका के अनुकूल रूप-लावण्य,गम्भीरता, बुद्धिमत्ता, संवेदनायुक्त नैतिकता और नाट्यशास्त्र में वर्णित नायिका के भावादि अनेक गुण विद्यमान हैं । तापस-वत्सराजम् का नामकरण कवि ने नायक को प्रधान मानकरके ही किया है और स्वप्नवासवदत्तम् के नामकरण में कवि ने नायिका को प्रधानता दी है । फिर भी कविवर अनंग हर्ष ने अपने नाटक में वासवदत्ता के जिस उन्नत व्यक्तित्व का चित्रण किया है,वह भास के नाटक में प्राप्त नहीं होता है ।

---

1. आसामष्टावस्था: स्युः स्वाधीनपतिकादिका: ॥
दशरूपक 2.13, पृष्ठ 113.

2. यौवने सत्त्वजा: स्त्रीणामलंकारास्तु विंशति: ।
भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजा: ॥
दशरूपक 2.30, पृष्ठ 121.

तापसवत्सराजम् नाटक की नायिका की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह यौगन्धरायण आदि मन्त्रियों की योजना से पूरी तरह अवगत है।[1] इतना ही नहीं उसके पिता प्रद्योत भी इस योजना से सुपरिचित हैं । नाटक के प्रारम्भ में विष्कम्भक से विदित होता है कि पांचाल नरेश आरुणि वत्सदेश पर आक्रमण की तैयारी कर चुका है और इधर वत्सराज उदयन इस विपरीत स्थिति चिन्तित नहीं है । वह अपने सुख-विलास में डूबा हुआ है किन्तु उसका महामन्त्री यौगन्धरायण अपने राज्य की रक्षा के लिए चिन्तित है और वह अपनी योजनानुसार वासवदत्ता के पिता प्रद्योत को विश्वास में लेता है तथा वासवदत्ता को भी अपनी योजना बताता है और राज्य की रक्षा के लिए उसके सहयोग की रक्षा करता है । इधर प्रद्योत अपनी पुत्री वासवदत्ता के लिए पत्र द्वारा यह सन्देश भेजता है कि वह राज्यकाज के विमुख एवं भोग-विलास में रत अपने पति को नहीं समझा रही है । वह अपनी पुत्री वासवदत्ता से राज्य की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा बलिदान हेतु उद्यत रहने के लिए प्रेरित करता है।[2] हम देखते हैं कि महारानी वासवदत्ता यह सुनकर घबड़ाती हैं बल्कि अपने गंभीर स्वभाव का ही परिचय देती हैं । यौगन्धरायण उसे सम्पूर्ण योजना की जानकारी देता है और उस योजना में उसके द्वारा किए जाने वाले योगदान की अपेक्षा करता है । यह क्षण वासवदत्ता के चरित्र में कठोरतम परीक्षण के क्षण कहे जा सकते हैं । यद्यपि क्षणभर के लिए वह इस महान् उत्तरदायित्व के भार

---

1. यौगन्धरायण : भर्तुः प्रतीपतरणे नौरिव बहुभिर्नियुक्ता ॥
तापसवत्सराजम् 1·13, पृष्ठ 23.

2. महासेन: वासवदत्ते विषयेषु कार्यविमुखो यन्न त्वया वार्यते ।
वामाचेति विहाय तन्मयमपि कृत्वं स्वार्थः स्वयं चिन्त्यताम् ॥
तापसवत्सराजम् 1·9, पृष्ठ, 19.

को वहन करने के विचार से किंचित् विचलित सी हो जाती है । इस योजना के अनुसार उसे दीर्घकाल तक अपने पति से वियुक्त रहना है । इस बात से वह कम्पित हो जाती है । इस बात का उसके प्रेमी हृदय पर ऐसा आघात लगता है कि वह कुछ समय के लिए मूर्छित तक हो जाती है किन्तु हम देखते हैं कि वह बड़े धैर्य से अपने को संभाल लेती है और महामन्त्री की योजनानुसार राज्य की रक्षा के लिए अपना कोई भी योगदान देने के लिए प्रस्तुत हो जातीहै।

इसी अवसर पर वहाँ राजा का आगमन होता है । इससे वासवदत्ता के साहस और उसकी दृढ़ता की परीक्षा होती है । अपने प्रियतम की उपस्थिति में उससे दीर्घकालीन वियोग का विचार और भी अधिक असह्य हो जाता है । वह उदयन को देखकर इतनी भावाधीन हो जाती है कि अपने पूर्ण प्रयत्न के बावजूद भी वह अपने भावों को राजा और विदूषक से पूरी तरह छिपा नहीं पाती, परन्तु उन्हें सर्वथा व्यक्त भी नहीं होने देती है । इस समय वह संकटापन्न मानसिक स्थिति में दिखाई देती है । उसका वह नारी हृदयजो कि एक दिन उदयन के प्रेम से उन्मत्त होकर माता-पिता की अनुमति के बिना ही उदयन के साथ भागने पर विवश हो गया था । आज वही उसका हृदय राजा से एक बहुत बड़ा छल करने और एक गहरे रहस्य को छिपाने में कातर दिखाई देता है ।[1] नाटककार ने इस अवसर पर अत्यन्त सुन्दरता के साथ वासवदत्ता के हृदय की कोमलता एवं दृढ़ता को सामने रखने का प्रयत्न किया है,और उसके स्नेह तथा सौजन्य को व्यक्त किया है । राजा जब वासवदत्ता को वहाँ देखता है तो वह अपने भाव छिपाने की चेष्टा करती है । तब राजा उससे कहता है कि हे देवी सहसा देखने पर तुम उमड़ते हुए

---

1. राजा: प्रियाम्बे सलिल: प्रसाधनविधिर्देव्या न सम्पादित: ।
तापसवत्सराजम् 1·15, पृष्ठ 25.

आसुओं से व्याकुल दृष्टि धारण कर रही हो । विषमता से निकलते हुए श्वासों को और से छोड़ रही हो । यद्यपि मेरा कौतूहल स्थिर है फिरभी चिन्ताकुल तुम बोल नहींरही हो । हे प्रिये । क्या तुम पुनः पहले की तरह नवविवाहिता वधू की भाँति आचरण कर रही हो ।[1]

नायक और नायिका में कहां तो एक ओर इतना अनन्य-प्रेम, अनन्य-आसक्ति और दूसरी ओर कहांतो राज्य की रक्षा के लिए इतना कठोर कर्तव्य-पालन और इतना सुकोमल प्यार का बन्धन । महामन्त्री यौगन्धरायण ने उसे जो कठोर कार्य सौंपा है तथा उसके लिए जिन कठोर स्थितियों का सृजन किया है,उसे देखकर कोई भी भावुक सहृदय का हृदय उसके प्रति सहानुभूति और श्रद्धा से बिना भरे नहीं रह सकता है । वासवदत्ता जैसी प्रेमिका नायिका के लिए स्वेच्छा से इतने बड़े बलिदान के लिए तैयार कर पाना कोई सरल कार्य नहीं था ।

दोनों ही नाटकों के अनुसार नायिका वासवदत्ता एक सचमुच भारतीय पतिव्रता नारी है और अपने पति के प्रति उसके मन में अगाध/स्नेह है। वह अपने पति के कल्याण के लिए सभी प्रकार का कष्ट उठाने तथा त्याग करने को तत्पर रहती है, परन्तु पति की विपत्ति को सहन नहीं कर सकती । स्वप्नवासवदत्तम् के अनुसार वह यौगन्धरायण की योजना बिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकार कर लेती है । योजना की सफलता तक उसे अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं किन्तु उसमें भी वह आनन्द का अनुभव करती है क्योंकि उसमें उसके पति का हित निहित है । उसके लिए पति का सुख ही सर्वस्व है।

---

1. राजा: वहसि सहसा दृष्टा दृष्टिं कुताकुलवाकुलां,
विकृतविषमोद्भिन्नान् श्वासानतीव विमुंचसि ।
वदसि न चिरं ध्यान्क्षामामयि स्थिरकौतुके,
पुनरपि गताकिंत्वं मुग्धे तदेव वधूव्रतम् ॥
तापसवत्सराजम् 1·18, पृष्ठ 28.

एक समय की बात है कि नवविवाहिता पद्मावती रुग्ण हो जाती है ।[1] इस समाचार से उसे असह्य पीड़ा होती है क्योंकि उसका पति पद्मावती की अस्वस्थता से बहुत दुखी हो जाता है । एक तो उसका वियोग, दूसरा मनोविनोद का एक मात्र साधन पद्मावती की अस्वस्थता इसलिए वह कह उठती है कि मेरे आर्यपुत्र की विश्राम स्थान यह पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई है, यह बड़े खेद की बात है ।[2]

राजा उदयन वासवदत्ता की कल्पित मृत्यु का समाचार सुनकर अपने प्राण त्यागने को तैयार हो जाता है । वासवदत्ता के प्रति वत्सराज उदयन के अनन्य प्रेम को देखकर ब्रह्मचारी का यह कथन सचमुच बहुत ठीक है कि वह स्त्री धन्य है जिसका पति मरने के पश्चात् भी उसे इस प्रकार स्मरण करता है।[3]

तापसवत्सराजम् के अनुसार देवालय में राजा के दर्शन का प्रसंग ही उदयन के प्रति नायिका के प्रगाढ़ प्रेम का परिचय देता है जब तक उसे यह विदित नहीं होता कि देवालय में उदयन साक्षात् नहीं है अपितु उसकी मूर्ति है, तब तक उसके हृदय में उसे देखने की तीव्र लालसा दिखाई देती है । एकओर उदयन के दर्शन के लिए अदम्य प्रलोभन है तो दूसरी ओर रहस्योद्भेदन हो जाने का महान् भय भी है । वस्तुतः उदयन के प्रति उसका प्रेम महान् है । वह उसकी पाषाण-मूर्ति को ही देखकर स्नेह से रोमांचित हो जाती है । वह अपनी

---

1. चेटी : दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्ष-वेदनया दुःखिता ।
   स्वप्नवासवदत्तम् अंक-5, पृष्ठ 165.

2. वासवदत्ता: आर्यपुत्रस्य विश्रामस्थानभूता इयमपि नाम पद्मावती अस्वस्था जाता ।
   स्वप्नवासवदत्तम् अंक-5, पृष्ठ 167.

3. धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता, भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ।
   स्वप्नवासवदत्तम् 1.13, पृष्ठ 55.

इस भावना की सूचना सांकृत्यायनी के अतिरिक्त और किसी को प्रकट नहीं होने देती है । सांकृत्यायनी वासवदत्ता के धैर्य और संयम की प्रशंसा करती हुई कहती है कि राजा की ओर आकृष्ट हुई पद्मावती के हाथ में अपने प्रियतम के चित्र को देखते ही वह अपने दुःख को अन्दर ही अन्दर छिपा रही है ।[1] किन्तु अपने भावों को प्रकट नहीं होने देती है । किन्तु वासवदत्ता का अगाध प्रेम उसके उत्तरदायित्व के मार्ग में बाधक नहीं बनता है ।[2]

वासवदत्ता के उज्ज्वल चरित्र में प्रशंसनीय विदग्धता भी विद्यमान है, वह इस सम्पूर्ण वियोग-व्यथा को बड़ी शान्ति और धैर्य के साथ सहन करती है, न तो उसमें घबड़ाहट का भाव दिखाई देता है और न ही वह राजा, मन्त्री अथवा अपने भाग्य के प्रति किसी प्रकार का कोई क्रोध करती है । उसके चरित्र में हमें कहीं भी हृदय-क्षुद्रता और संकीर्णता के दर्शन नहीं होते हैं । उसकी सहनशीलता प्रशंसनीय है । पद्मावती उदयन के प्रति वासवदत्ता के आदर्श प्रेम की बहुत प्रशंसा करती है । तापसवत्सराजम् नाटक की वासवदत्ता, सीता के समान अपने सुख दुःख के प्रति सर्वथा निरपेक्ष दिखाई देती है और अपने पति के सुख को अपना सुख समझकर सब कुछ सहने के लिए तत्पर रहती है । जहाँ एक ओर उसके चरित्र में दृढ़ता है, वहीं दूसरी ओर उसमें अति विनम्रता भी है, उसमें अभिमान के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते हैं।

तापसवत्सराजम् की नायिका में जो एक विशिष्ट गुण परिलक्षित होता है तो वह यह है कि उसमें राजनीतिक जागरूकता, स्वप्नवासव-

---

1. सांकृत्यायनी : दयितं विलोकयन्ती तद्गतमनसोऽपि हस्तगतमस्याः ।
   अन्तर्नियमित-दुःखा न मनागपि विकृतिमायाति ॥
   तापसवत्सराजम् 3•8, पृष्ठ 86
2. वासवदत्ता:- नास्मि ईदृशी, विस्रब्धा भव ।
   तापसवत्सराजम्- चतुर्थ अंक, पृष्ठ 138.

दत्तम् की अपेक्षा अधिक है । वह राजनैतिक स्थितियों को यहाँ अधिक समझती है । तभी उसमें वह अपना स्वयं योगदान समझती है । योगन्धरायण जब उसे राज्य की आन्तरिक तथा बाह्य स्थितियों को अवगत कराता है तो वह शीघ्र ही सहयोग हेतु अपनी सहमति दे देती है ।[1] इस हेतु पिता की ओर से प्राप्त संदेश का भी वह यथावत् पालन करती है ।[2]

तापसवत्सराजम् के अनुसार वासवदत्ता युवती होने पर भी अत्यधिक चतुर और दूरदर्शी है । हमें उसमें चारित्रिक दृढ़ता, विचार-शीलता, त्याग, अनन्य प्रेम, साहस, धैर्य और सहिष्णुता इत्यादि दुर्लभ गुण दिखाई देते हैं । यह जानते हुए भी कि राजकुमारी पद्मावती उसके प्रिय पति से स्नेह करती है,उसको पाने के लिए प्रयत्नशील है लेकिन हम कहीं भी वासवदत्ता में पद्मावती के प्रति ईर्ष्याभाव नहीं देखते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी पात्र जो महारानी वासवदत्ता के सम्पर्क में आया है; वह उसके स्वभाव पर मुग्ध हो गया है । यद्यपि तापसवत्सराजम् नाटक में नाटककार का ध्यान विशेष रूप से नायक के चरित्र-चित्रण में अत्यधिक केन्द्रित रहा है, फिरभी वासवदत्ता अपने जन्मजात-गुणों और चरित्र की उदारता के कारण नाटक में एक महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बन गई है । उसका निश्छल स्नेह और उसका त्याग उसे महान् बना देता है । उसका गर्वहीन स्वाभिमान, वासनाहीनप्रेम, दुर्बलताहीन सरलता, स्वाभाविक नारीगत माधुर्यादि गुण, चारित्रिक दृढ़ता और दूरदर्शिता सभीने सम्मलित रूप से उसके रूप और चरित्र

---

1. तापसवत्सराजम् 1·7, पृष्ठ 14.
2. महासेन: वासवजिन्वर्येणु कार्यविमुखी मन्न त्वया वार्यते ।
   जामातेति विहाय तन्मयि रुषं स्वार्थस्त्वयं चिन्त्यताम् ॥
   तापसवत्सराजम् 1·9, पृष्ठ 19.

को सामान्य नायिका के स्तर से बहुत ऊपर उठा दिया है ।

स्वप्नवासवदत्तम् के अनुसार वासवदत्ता उदयन के हृदय की एक मात्र अधिकारिणी है । यहाँ वासवदत्ता अपनी सपत्नी राजकुमारी पद्मावती के संरक्षण में जीवन-यापन कर रही है । ऐसी विकट स्थिति में उसके अन्त:करण में छिपे ईर्ष्या के भाव कभी-कभी उसे कोसने लगते हैं । हम देखते हैं कि इस नाटक के तृतीय अंक में जब धात्री राजकुमारी पद्मावती से वासवदत्ता के सामने कहती है कि राजकुमारी तुम्हारी सगाई हो गई है तो वासवदत्ता पूँछती है कि किसके साथ इनकी सगाई हुई है ? तब धात्री कहती है कि किसी दूसरे उद्देश्य से आए हुए उदयन के कुल, शिल्प, शास्त्रज्ञान, यौवन तथा सौन्दर्य को देखकर महाराज ने उसे राजकुमारी पद्मावती के दान का संकल्प लिया है ।[1] उधर चेटी कहती है कि हमारी महारानी का विचार है कि आज ही उत्तम नक्षत्र है, इसलिए आज ही वरकन्या के हाथों में कंगन बाँधने का मंगलाचरण हो जाना चाहिए । इस समाचार से वासवदत्ता कहती है कि जैसे-जैसे यह शीघ्रता कर रही है, वैसे-वैसे मेरा हृदय शून्य होता जा रहा है।[2]

विवाह के आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण अन्त:पुर के चौसाले में पद्मावती को छोड़कर वासवदत्ता प्रमदवन आ जाती है और दुर्भाग्य से अपने प्रियतम के द्वितीय विवाहजन्य दुख को किसी प्रकार शान्त करती है, और घूमते हुए कहती है कि मै विपत्ति में फंस गई हूं । मेरे प्रियतम आर्यपुत्र आज से पराये हो गए हैं ।[3] वासवदत्ता के इस कथन से उसके हृदय की व्यथा के गहरे भाव अभिव्यक्त होते हैं । उसके हृदय मन्दिर का आराध्यदेव आज

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् - तृतीय अंक, पृष्ठ 79.
2. वासवदत्ता : [आत्मगतम्] यथा यथा त्वरते तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम्।
स्वप्नवासवदत्तम् - तृतीय अंक, पृष्ठ-82.
3. वासवदत्ता: अहो । अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीय:संवृत्त: ।
स्वप्नवासवदत्तम् - तृतीय अंक, पृष्ठ 83.

अन्य हृदय में प्रतिष्ठित हो रहा है । यह उसके लिए नितान्त असह्य है । इसीलिए वह पद्मावती के विवाह संस्कार के समय वहाँ से प्रमदवन चली जाती है किन्तु फिरभी वह निरन्तर सचेष्ट है कि महामन्त्री योगन्धरायण की योजना किसी प्रकार सफल हो जाये । जब वह पद्मावती के साथ विवाह होने के पश्चात राजा के मुख से यह सुनती है कि वासवदत्ता में अनुरक्त मेरे मन को पद्मावती आकर्षित नहीं कर पा रही है । यह सुनकर वासवदत्ता को अत्यधिक आनन्दानुभूति होती है । अन्त में, वह कह उठती है कि इस कथन से मेरे प्रियतम ने मुझे इस दुःख का पुरस्कार दे दिया है । मेरे पति उनकी इस स्नेहानुभूति से अज्ञातवास के अवसर पर मेरे आनन्द का कारण बन गई है ।[1]

कविवर भास के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि वासवदत्ता नारी सुलभ समस्त गुण दोषों से युक्त हैं, फिरभी वह एक आदर्श महिला है, विधाता की कमनीय कला का विशुद्ध उदाहरण है ।

स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् दोनों नाटकों की नायिकाओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह विदित होता है कि तापसवत्सराजम् की नायिका 'वासवदत्ता' नाटक की सम्पूर्ण योजना से अवगत है । किन्तु स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की नायिका केवल उसकी धूमिल रूपरेखा से ही अवगत है । वह सर्वथा अंधकार में नहीं है । वह यह भी जानती है कि उसके पिता प्रद्योत मन्त्रियों की इस योजना की सफलता चाहते हैं । इसलिए उसे किसी से कोई शिकायत नहीं है जबकि स्वप्नवासवदत्तम् की नायिका की स्थिति इन सबसे बहुत कुछ भिन्न है । इस नाटक में महामन्त्री योगन्धरायण नायिका

---

1. वासवदत्ता : दन्तं वेतनमस्य परिखेदस्य, अहो अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते । "(स्वप्नवासवदत्तम्, अंक-4, पृष्ठ-127)

को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यभार सौंपता है किन्तु स्वप्नवासवदत्तम् में ऐसा अवसर ही नहीं उपस्थित होता है जबकि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में वह प्रारंभ में ही अपने साथ सामान्य जनों की तरह व्यवहार करने के विषय में योगन्धरायण से शिकायत करती है ।[1] तापसवत्सराजम् की नायिका जहाँ एक ओर अपने कर्तव्यपालन के प्रति अत्यन्त जागरूक है,वहीं दूसरी ओर स्वप्न-वासवदत्तम् की नायिका अपनी विपत्तियों के लिए रोती रहती है । तापस-वत्सराजम् की नायिका अपने व्यवहार और प्रेम में अधिक धैर्यवान एवं प्रौढ़ है, उसमें पद्मावती के प्रति कहीं कोई ईर्ष्या नहीं है और न प्रेम में किसी प्रकार की विलासिता की गन्ध ही है । जबकि स्वप्नवासवदत्तम् की नायिका इनसे सर्वथा मुक्त नहीं है ।

स्वप्नवासवदत्तम् की नायिका के पास मानसिक व्यथा के क्षणों में कोई सांत्वना देने वाला नहीं है जबकि तापसवत्सराजम् में इस हेतु सांकृत्यायनी की योजना बनाई गई है । प्रतिकूल परिस्थितियों में शिकायत न करने एवं अपने निश्चय पर दृढ़ रहने की जो विशेषता है, तापसवत्सराजम् की नायिका में पाई जाती है, वह स्वप्नवासवदत्तम् की नायिका में नहीं ।

राजकुमारी पद्मावती के प्रति दोनों नाटकों की नायिकाओं का व्यवहार उनके स्वभाव के अन्तर को स्पष्ट कर देता है । इस दृष्टि से तापसवत्सराजम् की नायिका का स्थान स्वप्नवासवदत्तम् कीनायिका से कहीं अधिक उन्नत प्रतीत होता है । जब वह युवती पद्मावती को यौवन का सुख भोग त्यागकर तापस वेश में देखती है,उससे उसको बड़ा कष्ट होता है । वह

---

1. योगन्धरायण: नात्र चिन्ता कार्या ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्य-पंक्तिः ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 1·4, पृष्ठ 12.

स्नेह और सहानुभूति से उससे व्यवहार करती है, इससे प्रभावित होकर पद्मावती वासवदत्ता को अपने हृदय का सारा रहस्य बता देती है । अपने पति के प्रति राजकुमारी पद्मावती के अनुराग और त्याग को देखकर वासवदत्ता बहुत प्रभावित होती है और उसके प्रति किसी प्रकार की ईर्ष्या मन में नहीं आने देती है ।[1] इसके विपरीत वह उसके प्रेम को खुले हृदय से उसकी प्रशंसा करती है तथा उसकी प्राप्ति के लिए उसे सान्त्वना देती है ।

तापसवत्सराजम् के छठे अंक से विदित होता है कि पद्मावती के प्रति उसका स्नेह ईर्ष्याहीन है । यहाँ वासवदत्ता आत्मदाह के लिए तत्पर और उसकी सखी कान्चन माला इस विपत्ति के लिए पद्मावती को भी दोषी ठहराने की भावना से कहती है कि पद्मावती भी आपको दुखी कर रही है। सुना है उसके साथ विवाह भी तुम्हें पुन: पाने के लिए किया गया है.इस पर वासवदत्ता बिना विलम्ब के ही उसको सावधान करते हुए कहती है कि इस विषय में पद्मावती से कोई मतलब नहीं हैऔर इस सम्बन्ध में मुझसे कुछ न कहना । वह अपनी विपत्ति के लिए किसी रूप में भी पद्मावती को दोष नहीं देती है ।[1]

नाटक के अन्त में, स्पष्टरूप से प्रतीत होता है कि जब पद्मावती को उसकी वास्तविकता का पता लगता है तो वह वासवदत्ता से क्षमा याचना के लिए उसके पैरों में गिर जाती है । इस पर वासवदत्ता बड़े स्नेह से राजकुमारी पद्मावती को उठाती है और अपने गले से लगाती है और कहती है कि हे ! उदार - हृदया पद्मावती ! उठो, मै तुम्हारी

---

1. वासवदत्ता : अपेहि,किमत्र पद्मावत्या,न किंचिदई भणितव्या ।
तापसवत्सराजम् अंक-6,पृष्ठ 208.

सहेली ही हूँ, मुझे तुम कुछ और मत समझो ।[1] यहाँ पर उसके इन शब्दों में जो स्नेह और सौजन्य प्रकट होता है। उसके दर्शन हमें स्वप्नवासवदत्तम् की नायिका के उन शब्दों में नहीं होते, जो कि उसने ऐसे ही अवसर पर कहे हैं।[2]

तापसवत्सराजम् की नायिका के द्वारा की गई आत्मदाह की योजना यद्यपि उसके चरित्र की दुर्बलता कही जा सकती है, परन्तु उसकी यह भावना किसी निराशा या पराजय से उत्पन्न नहीं, अपितु कर्तव्य भावना से ही उत्पन्न प्रतीत होती है। वह उस युग की नारी प्रतीत होती है जबकि कोई पतिव्रता स्त्री इस बात को अपने लिए सबसे बड़ा पाप या कलंक समझती थी कि उसके कारण ही उसके पति को अनेक प्रकार से दुःखी होना पड़ता है। सम्भवतः अपने इसी तथाकथित पाप के प्रायश्चित के लिए तापसवत्सराजम् की नायिका वासवदत्ता आत्मदाह की योजना का निर्माण करती है।

पद्मावती :

स्वप्नवासवदत्तम् के और तापसवत्सराजम् के अनुसार पद्मावती नाटक की दूसरी स्वकीया कनिष्ठा नायिका है। यह दोनों नाटकों की उप नायिका है। दोनों ही नाटकों में इसका प्रथम दर्शन कन्या के रूप में होता है। यह मगध नरेश दर्शक की छोटी बहन है। वह युवती है तथा अत्यन्त सुन्दरी भी है। वह स्वभाव से उदार है, धर्मप्रिय है, सहानुभूतिशील और

---

1. वासवदत्ता : आर्य महानुभावे, उत्तिष्ठ, सख्येव ते अहं,
मा मामन्यथा सम्भावय ।
तापसवत्सराजम् अंक-6, पृष्ठ 215.

2. वासवदत्ता : उत्त्थ्ठोऽत्तिष्ठाऽवर्थिवे । उत्तिष्ठ । अर्थिन्यं नाम
शरीरमपराध्यति ।
स्वप्नवासवदत्तम्, अंक-6, पृष्ठ 234.

प्रतिभा सम्पन्न महिला है । वह जब आश्रम जाती है तो वह आश्रमवासियों तपस्वियों को विविध वस्तुओं के दान की घोषणा करवाती है जिसे जलपात्र चाहिए वह जलपात्र ले ले और जिसे वस्त्र चाहिए, वह वस्त्र ग्रहण कर ले और जिसे गुरु को देने के लिए दक्षिणा चाहिए, वह दक्षिणा प्राप्त कर ले । राजकुमारी पद्मावती धर्म में आनन्द लेने वालों से प्रेम करती हैं और वह तपस्वियों की कृपामात्र चाहती हैं ।[1]

पद्मावती का स्वभाव अत्यन्त निर्मल है, स्नेह और सौहार्द से भरा हुआ है । जब यौगन्धरायण वासवदत्ता को उसके पास धरोहर के रूप में सौंपता है तो शीघ्र कहती है कि ठीक है कि वह आर्या अब मेरी आत्मीय हो गई है ।[2] दोनों का पारस्परिक स्नेह बहुत प्रगाढ़ हो जाता है । ब्रह्मचारी द्वारा जब वह उदयन का शोक सुनती है तो उसे दुःख का अनुभव होता है । जब वह उसकी मोह-मुक्ति का समाचार सुनती है तो वह ईश्वर को धन्यवाद देती है ।

स्वप्नवासवदत्तम् के अनुसार पद्मावती के हृदय में अपने पति के लिए अपार स्नेह है । वह अपने पति में किसी प्रकार का दोष देखना या सुनना नहीं चाहती हैं । स्वयं कष्ट उठाकर उसे सुखी देखने के लिए प्रयत्नशील रहती है। एक बार चेटी पद्मावती से कहती है कि उदयन आपकी अपेक्षा वासवदत्ता पर अधिक प्रेम करते हैं । इसलिए वह अदाक्षिण्य है तो वह तुरन्त

---

1. काँचुकीय : कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं ... (as printed: कस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याधिकं दीयताम् ।)
स्वप्नवासवदत्तम् 1·8, पृष्ठ 30.

2. पद्मावती : भवतु भवतु आत्मीयेदानीं संवृत्ता ।
स्वप्नवासवदत्तम्- अंक प्रथम, पृष्ठ 39.

चेटी को रोकते हुए कहती है कि सखी ऐसा मत कहो । आर्यपुत्र दाक्षिण्य ही हैं जो इससमय भी देख आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करते हैं ।[1]

तापसवत्सराजम् नाटक के अनुसार राजा उदयन जब पद्मावती को तपस्वनी के रूप में देखता है तो वह उसकी अद्‌भुत रूपराशि को देखकर चकित हो जाता है । वह कभी उसे साक्षात् रति कहता है, कभी उसे वनदेवता कहता है और कभी साक्षात् शरीर को धारण करने वाली देवी के रूप में उसे समझता है ।[2] इतना सब होते हुए भी पद्मावती अभिमान से रहित है, वह कोमल और भावुक हृदय की नवयुवती है । यौगन्धरायण के वहाँ से चले जाने पर वासवदत्ता को रोते हुए देखकर वह स्वयं रोने लगती है ।[3]

पद्मावती अपने दुःख को स्वयं ही सहना चाहती है, किसी को अपना दुःख सुनाकर उसे दुःखी नहीं करना चाहती है । वासवदत्ता जब उससे प्रव्रज्या धारण करने का कारण पूछती है तो वह उत्तर में कहती है कि तुम्हें उसके जानने से क्या लाभ होगा, अवश्य ही मेरी यह बात तुम्हें दुःखी करेगी । लेकिन वह सखी के अनुरोध को त्याग नहीं सकती । वह उसे हृदय का सारा रहस्य प्रकट करदेती है । वह वासवदत्ता के सुख-दुःख का ध्यान रखती है ।

तापसवत्सराजम् के अनुसार पद्मावती एक शुद्ध हृदयवाली

---

1. पद्मावती : मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः य इदानीमप्यार्याया
   वासवदत्ताया गुणान् स्मरति ।
   स्वप्नवासवदत्तम्, अंक-4, पृष्ठ 128.
2. राजा : निर्दग्धे मकरध्वजे रतिरतोऽपि स्याद् गृहीतव्रता ।
   तापसवत्सराजम् 3.14, पृष्ठ 103.
3. वासवदत्ता: कथम् एषा महानुभावा मां दुःखितां प्रेक्ष्य बाष्पपर्याकुलमुखी
   संवृत्ता ।
   तापसवत्सराजम् अंक तृतीय, पृष्ठ 70.

प्रेमिका है । प्रेम के मार्ग में आगे चरण बढ़ाकर पीछे हटना उसने सीखा नहीं है । उसका दृढ़ विश्वास है कि हृदय का दान केवल एक बार ही हो सकता है । उसमें पुनर्विचार के लिए कोई अवकाश नहीं है । नाटक के अनुशीलन से हमें विदित होता है कि मन्त्रियों की योजना के अनुसार जब उसका हृदय एक बार उदयन के गुणों पर अनुरक्त हो जाता है तो फिर उदयन-विराग भी उसे विरक्त नहीं कर सकता है । वासवदत्ता के लावाणक ग्राम में विदग्ध हो जाने के समाचार से उदयन तपस्वी का वेश धारण कर लेता है, तो पद्मावती भी उसी के अनुसार तपस्विनी बन जाती है और प्रेम-योगिनी का रूप धारण कर लेती है । पद्मावती के द्वारा तापस वेश-धारण किए जाने का कारण पूछने वाली वासवदत्ता से वह कहती है कि मैं अधिक क्या कहूँ, उदयन के गुणों के प्रेम के कारण मेरा मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया है ।[1] पद्मावती ने मन से राजा उदयन का वरण कर लिया है, इसलिए अपने अनन्य प्रेम के कारण उदयन के चित्र की ही वह आराधना करती है । यह उसके अनन्य प्रेम का निदर्शन है ।

पद्मावती 'अतिथि देवो भव' के अनुसार अतिथि सत्कार के प्रति बहुत जागृत है । आश्रम में कोई अतिथि आया है, यह सुनते ही वह अर्घ्य की सामग्री लेकर उसके पूजन अर्चन के लिए दौड़ पड़ती है । स्वयं अपने प्रेमी को साक्षात् अपने घर पर आया हुआ देखकर उसका हृदय तरंगित हो उठता है ।

यह विडम्बना ही कही जायेगी कि जिस प्रियव्यक्ति के गुणों पर रीझकर वह परोक्ष में ही उसे अपना हृदय अर्पित कर देती है, जिसके लिए वह अपना घर छोड़ देती है; राजसुख और वैभव छोड़ देती है, और उसकी

---

1. पद्मावती : किं तव एतेन ज्ञातेन, अवगमेतव्यं प्रियसत्त्वे दुःखमुत्पादयति।
तापसवत्सराजम्, तृतीय अंक, पृष्ठ 73.

प्राप्तिके लिए तापस वेश धारण करती है, वही प्रिय जब वहाँ सामने आता है तो वह उसके निश्छल समर्पण को अपनी अन्य मनस्कता और उदासीनता से ठुकरा देता है किन्तु पद्मावती का अत्यन्त कोमल हृदय अपने अनन्य प्रेम की इस अवज्ञा को सहन नहीं कर पाता है, इसलिए विफल रहने पर अपने जीवन का ही अन्त कर देना चाहती है ।[1] इसी भाव से प्रेरित होकर वह बाह्य रूप से अपने को प्रसन्न सी दिखाती हुई अकेले लता मण्डप में पहुँच जाती है और वहाँ पर लतापाश से अपने जीवन का अन्त कर देना चाहती है । पद्मावती अपने इस कठोर उद्देश्य में सफल हो जाती, यदि समय पर राजा उदयन और विदूषक वहाँ न पहुँच जाते ।

उदयन के प्रति पद्मावती का प्रेम अत्यन्त पवित्र और निष्कपट है तथा अन्त में, सच्चे प्रेम की विजय होती है । राजा लता मण्डप में पहुँचकर स्वयं उससे कहता है कि इस बन्धन को छोड़ दीजिए और मेरा प्रिय कार्य कीजिए । मेरा यह एक स्नेहपूर्वक किया हुआ अनुरोध स्वीकार कीजिए आप जिसे चाहती हैं वह व्यक्ति आपके समाने उपस्थित है ।[2]

पद्मावती जब राजा के द्वारा स्पष्ट शब्दों में वासवदत्ता के प्रति प्रेम के दृढबन्धन के कारण अपनी उपेक्षा की बात सुनती है तो वह उसके प्रेम की दृढ़ता की प्रशंसा करती है कि यह स्थिर प्रेम वाले व्यक्ति हैं,

---

1. पद्मावती : हा तात ! हा अंब ! हा भ्रातर: !
अश्रुतशीले बद्धस्नेहां परयत दुहितरम् अत्र म्रियमाणां माम्
तापसवत्सराजम् अंक-चार, पृष्ठ 135.

2. राजा : विमुञ्च पाशमिमं कुरु मे प्रियं, प्रणयमेकमिमं प्रतिमानय ।
असहने किमिदं क्रियते त्वया, प्रणयवानयमस्मि तवागत: ॥
तापसवत्सराजम् 4·17, पृष्ठ 139.

इसीलिए मैं इन पर अनुरक्त हूँ ।[1]

दोनों ही नाटकों के अनुसार पद्मावती वासवदत्ता के प्रति उदयन के प्रेम को देखकर न दु:खी होती है,न ईर्ष्या करती है । वासवदत्ता के प्रति वह आदर का भाव रखती है । जब भी उसका वह नाम लेती है तो उसके नाम से पूर्व 'आर्या' शब्द का प्रयोग अवश्य करती है । इतना ही नहीं चित्रफलक में अवन्तिका के समान वासवदत्ता का रूप देखकर वह वासवदत्ता के जीवित होने के विचार से अत्यन्त प्रसन्न होती है । जब वासवदत्ता प्रकट होती है तो वह ईर्ष्या से रहित होकर अपने स्वभाविक स्नेह का परिचय देते हुए उसके पैरों में गिरकर क्षमा माँगते हुए कहती है कि -बहन,सखीजन के व्यवहार से मैंने शिष्टाचार का अतिक्रमण किया है । इसलिए मै आपके पैरों में गिरकर आपको प्रसन्न करतो हूँ । वे स्वप्नवासवदत्तम् के विदूषक के अनुसार पद्मावती तरुणी, दर्शनीय, क्रोध न करने वाली, मधुरभाषिणी और उदार व्यवहार वाली नायिका है ।[2]

तापसवत्सराजम् नाटक के अनुसार राजा जब पद्मावती के साथ विवाह कर लेता है,फिरभी वह वासवदत्ता की याद करता रहता है, तब भी पद्मावती को उससे कोई शिकायत नहीं होती है । इस बात से पद्मावती के प्रेम में कोई कमी दिखाई नहीं देती है । इस पर यहाँ विदूषक उसके त्याग औरधैर्य की प्रशंसा करता है । पद्मावती के चरित्र की यह अपूर्व

---

1. पद्मावती :अयो; स्निग्ध-सौहृद एव इति, अतएव मे एतस्योपरि अभिनिवेश: ।
   तापसवत्सराजम्,अंक-4,पृष्ठ 147.

2. विदूषक: तत्रभवती पद्मावती तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहंकारा, मधुरवाक्,सदाक्षिण्या ।
   स्वप्नवासवदत्तम्,अंक-04,पृष्ठ 130.

विशेषता है कि वह अपने स्वार्थ को अपने पति के स्वार्थ से ऊपर नहीं समझती है। इसी की पूर्ति के लिए वह अपने प्रियतम के लिए अपने जीवन का बलिदान करती है। राजा भी उसके इस अभूतपूर्व बलिदान और अनन्य प्रेम से अत्यधिक प्रभावित है। वह हृदय से उसके अनन्य प्रेम का अनुभव करता है, परन्तु वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त आसक्ति के कारण वह अपने को विवश पता है। वह कहता है कि बड़े खेद की बात है कि मैंने इस बेचारी कन्या को अपने उदासीनता पूर्ण कार्यों से जलाया ही है, कोई सुख नहीं दिया है।[1]

अन्त में, हम कह सकते हैं कि पद्मावती में नारी हृदय की स्वाभाविक प्रतिक्रिया का अभाव और संघर्ष का कोई संकेत उसके चरित्र में दिखलाई नहीं देता है, किन्तु उसके चरित्र में हमें जो दृढ़ता और धैर्य दिखलाई देता है, वह साधारण नारी-हृदय में दुर्लभ है। पद्मावती के चरित्र में दुर्बलतायें बहुत कम दिखलाई देती हैं; दृढ़ता अधिक दिखलाई देती हैं।

हम यह कह सकते हैं कि तापसवत्सराजम् नाटक की पद्मावती त्याग, दृढ़ता और बलिदान में स्वप्नवासवदत्तम् की पद्मावती से बहुत आगे हैं। अनन्य प्रेम और अपने अलोक-सामान्य सौजन्य के लिए पद्मावती एक स्मरणीय नारी-पात्र है।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में वासवदत्ता और पद्मावती के अतिरिक्त अनेक नारी पात्र वर्णित है जिनमें तापसी, चेटी, पद्मिनिका, मधुकरिका, धात्री, विजया आदि किन्तु ये नारी पात्र नायिका और उपनायिका की सहायता करने वाले हैं। इनका चरित्र-चित्रण प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

---

1. राजा : कष्टं केवलमेव राजतनया दग्धा वराकीमया।
तापसवत्सराजम् 6·4, पृष्ठ 203.

में विस्तार भय से अनावश्यक प्रतीत होता है ।[1]

इसी प्रकार तापसवत्सराजम् में भी वासवदत्ता और पद्मावती के अतिरिक्त अनेक नारी-पात्रों की सृष्टि हुई है । जो इस नाटक की नायिका और उपनायिका की सहायता करने वाले और कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं ।[2] जिनमें नटी, सांकृत्यायनी, चेटी, कोसलिका, तापसी, प्रतीहारी और कांचनमाला आदि । इन सभी नारी पात्रों का चरित्र-चित्रण विस्तार भय से अवांछनीय है ।

यौगन्धरायण :

स्वप्नवासवदत्तम् और तापस-वत्सराजम् दोनों ही नाटकों में यौगन्धरायण एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र है । यदि यह कहा जाय कि उक्त दोनों ही नाटकों के तथा सूत्रों का वह सूत्रधार है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । दोनों नाटकों में यौगन्धरायण का परिचय हमें प्रथम अंक से ही प्राप्त होता है । नाटकों के अंतिम अंक में भी यौगन्धरायण की उपस्थिति विद्यमान है फिरभी यौगन्धरायण का प्रभाव सम्पूर्ण नाटक में पूर्णतया ओत-प्रोत है ।[3]

हम देखते हैं कि दोनों ही नाटकों के सम्पूर्ण क्रियाकलापों का

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, प्रकाशक-रामनारायणलाल बेनीमाधव, 1968, संस्करण
2. तापसवत्सराजम्: साहित्य भण्डार, मेरठ-1969, संस्करण
3. ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो यौगन्धरायणः अवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च ।
   स्वप्नवासवदत्तम्, अंक-1, पृष्ठ-08.

संचालन यौगन्धरायण की योजनानुसार ही होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ही नाटकों के सम्पूर्ण पात्र यौगन्धरायण के हाथ के खिलौने हैं, इसीलिए नाटकों के सभी पात्रों को वह जैसे चाहता है, उन्हें नचाता है । उसमें इतनी निपुणता और कौशल है कि अन्त तक किसी पात्र को यह विदित नहीं होता कि नेपथ्य में इस कथा सूत्र का कौन संचालन कर रहा है । यद्यपि कुछ पात्र जो उसके विश्वस्त हैं, उन्हें अपनी योजना का ज्ञान वह स्वयं करा देता है । यौगन्धरायण के बुद्धि कौशल और उसकी दूरदृष्टि को देखकर आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है । उसकी स्वामी भक्ति और कार्य करने की क्षमता अपूर्व है ।[1]

यौगन्धरायण वत्सराज उदयन का महामन्त्री है और राजनीति में चाणक्य के समान दूरदर्शी है । यह दोनों ही नाटकों की कथावस्तु का एक प्रकार से केन्द्र बिन्दु जैसा प्रतीत होता है । यौगन्धरायण उदयन की स्वामी भक्त मन्त्री है, वह अपने स्वामी तथा राज्य के हित के लिए सर्वस्व त्यागकर सकता है । वह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक राज्य और स्वामी के लिए अनेक प्रकार की आपत्तियों को सहन करता है । राजा उदयन उसकी प्रशंसा करते हुए कहता है कि हे ! यौगन्धरायण, आपने कृत्रिम पागल जैसी चेष्टाओं, युद्धों, शास्त्रसम्मत परामर्शों और प्रयत्नों के द्वारा निःसन्देह विपत्ति सागर में डूबते हुए हमको उबारा है ।[2]

---

1. यौगन्धरायण : (कर्णं दत्वा) कथम् - हहा प्युत्सारयति ।

स्वप्नवासवदत्तम् 1·3, पृष्ठ 08.

2. राजा : मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।

भवद्भिः खलु वयं मज्जमाना: समुद्धृताः । ।।

स्वप्नवासवदत्तम् - 6·16, पृष्ठ 232.

यौगन्धरायण एक प्रखर प्रज्ञावान और कार्यकुशल मन्त्री है । स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में हम देखते हैं कि जब पद्मावती दान की घोषणा करती है, वह शीघ्र याचक बनकर उपस्थित हो जाता है और अपनी निपुणता के कारण वासवदत्ता को अपनी भगिनी के रूप में राजकुमारी पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखने का प्रबन्ध कर देता है ।[1] यह यौगन्धरायण की बुद्धि का विलास है जो शत्रु आरुणि से अधिकृत राज को उदयन पुनः प्राप्त कर लेता है । यौगन्धरायण गुणग्राही मन्त्री है । उसे गुणों की और क्षमता की अद्भुत पहचान है । अपने कनिष्ठ मन्त्री रूमण्वान् के कार्य की वह मुक्त कंठ से प्रशंसा करता है । वह कहता है कि सचमुच रुमण्वान् प्रशंसनीय है, वह राजा की रक्षा में तत्पर है जिसके हाथ में राजा की देखभाल होती है, उसी के हाथ में सब कुछ निहित होता है ।[2]

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के यौगन्धरायण के साथ तापसवत्सराजम् नाटक यौगन्धरायण की तुलना करने पर हमें विदित होता है कि तापसवत्सराजम् का यौगन्धरायण कहीं अधिक दूरदर्शी सफल एवं जागरूक है । वह यह जानता है कि पूर्ण विश्वास के लिए बिना तथा पूरी तरह परीक्षण किए बिना किसी व्यक्ति को कोई महान् कार्यभार सौंपना उचित नहीं है, क्योंकि किसी भी कठिन परिस्थिति के आने पर सम्पूर्ण योजना का रहस्य प्रकाशित हो सकता है । किसी की इच्छा के बिना किसी से कोई महत्त्वपूर्ण

---

1. यौगन्धरायण: धीरा कन्येयं दृष्ट-धर्मप्रचारा शक्ता चारित्र्यं
   रक्षितुं मे भगिन्याः ।
   स्वप्नवासवदत्तम् 1·9, पृष्ठ 34
2. यौगन्धरायण: तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ।
   स्वप्नवासवदत्तम् 1·15, पृष्ठ 59.

और रहस्यात्मक कार्य नहीं कराया जा सकता है । इसीलिए वह बड़ी निपुणता के साथ महारानी वासवदत्ता के समक्ष राष्ट्र के महान् संकट का चित्र प्रस्तुत करता है और अपनी योजनानुसार वासवदत्ता को स्वेच्छा से उसमें योगदान करने के लिए सहमत कर लेता है ।[1] वह अपनी योजना के अनुसार वासवदत्ता के पिता प्रद्योत के द्वारा लिखित पत्र को अपने आप न पढ़कर कांचनमाला से पढ़वाता है[2] और प्रद्योत के द्वारा वासवदत्ता के लिए कहे संदेश को सुनकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है । अन्त में, वासवदत्ता को राज्य की रक्षा हेतु सम्पूर्ण योजनाओं से अवगत कराकर अपने कार्य में व्यस्त हो जाता है । यह योगन्धरायण की दूरदर्शिता का परिणाम है कि हम वासवदत्ता को कहीं भी बड़े से बड़े संकट की स्थिति में अपनी योजना से विचलित हुए नहीं देखते। हम देखते हैं कि वह "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक की वासवदत्ता की भाँति संकट में घबड़ाती नहीं है और प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने भाग्य को कोसती नहीं है ।

तापसवत्सराजम् के सभी पात्र विदूषक, रुमण्वान्, सांकृत्यायन, सांकृत्यायनी, सिद्धार्थक आदि महामन्त्री यौगन्धरायण की योजना के अनुसार अपने-अपने कार्य में तत्पर है और यौगन्धरायण की योजना के वशवर्ती हैं । यौगन्धरायण की योजना के अनुसार ही सांकृत्यायनी उदयन का चित्र लेकर राजगृह जाती है और वह वहाँ उदयन के गुणों का वर्णन करके तथा उसका चित्र दिखा करके राजकुमारी पद्मावती को उदयन के प्रति अनुरक्त कराने में सफल हो जाती है । इसीलिए जब राजकुमारी पद्मावती उदयन के तापस

---

1. वक्तुं नोत्सहते मनः परमतो जानातु देवी स्वयम् ।
   तापसवत्सराजम् 1·7, पृष्ठ 14
2. योगन्धरायण – कांचनमाले, वाच्य त्वमेव ।
   तापसवत्सराजम् अंक-1, पृष्ठ 18.

होने का वृत्तान्त सुनती है तो वह स्वयं ही तापस वेश धारण कर वहीं आश्रम में रहने लगती है। इसी बीच यौगन्धरायण ब्राह्मण वेश में वहाँ आता है और वासवदत्ता को प्रोषित-पतिका के रूप में पद्मावती के पास कुछ समय के लिए छोड़कर आगे की योजनाओं को सफल करने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है।[1]

चतुर्थ अंक में गुप्तचर सिद्धार्थक से विदित होता है कि उसने इस बीच में मगध और अवन्ती दोनों राज्यों से अपने शत्रु आरुणि के विरुद्ध सैनिक सहायता प्राप्त कर ली है और इधर वह सांकृत्यायनी से निरन्तर सम्पर्क बनाये हुए है, दोनों ओर के कार्यों की प्रगति की वह निरन्तर समीक्षा कर रहा है। यौगन्धरायण की तथाकथित कल्पित-मृत्यु का समाचार सुनकर वत्सराज उदयन उसकी प्रशंसा में कहता है कि मेरे प्रेम से विवेकहीन होकर प्रमाद करने पर अब किसका मन खिन्न होगा। किसको सम्पूर्ण राज्य का भार सौंप कर इच्छानुसार सुख भोग करूँगा। अब यौगन्धरायण के चले जाने पर मेरे साथ युद्ध स्थल में आगे-आगे भयंकर शत्रु की सेना को विनाश करने वाला कौन होगा। महामन्त्री यौगन्धरायण के दूर चले जाने पर अब मैं किस आशा के सहारे जीवित रहूँगा।[2]

---

1. चेटी : यथा साम्प्रतमेव केनापि ब्राह्मणेन भर्तृदारिकायै प्रोषित-भर्तृका ब्राह्मणी समर्पिता [तापसवत्सराजम् अंक-3, पृष्ठ 67]

2. राजा: रागान्धे मयि कस्य माद्यति मनः खेदस्समुत्पद्यते,
कस्मिन् राज्यभरं निवेश्य सकलं सेवे सुखानीच्छया।
दुर्वृत्तारिवरूथिनी प्रमथनः कः स्यान्ममाग्रेसरः,
कामाशामवलम्ब्य सम्प्रति गते दूरं त्वयि प्राणिमि॥
तापसवत्सराजम् 2·18, पृष्ठ 53

इसी प्रकार नाटक के प्रायः सभी पात्र महामन्त्री यौगन्धरायण के युद्ध-कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।

महामन्त्री यौगन्धरायण में जैसा बुद्धि-विलास था, वैसा ही युद्ध कौशल भी था । पाँचाल नरेश के विरुद्ध उसने संग्राम में जो कौशल दिखलाया, वह अद्भुत था । वत्सराज उदयन यौगन्धरायण के सम्बन्ध में कहता है कि महामन्त्री यौगन्धरायण विपत्ति रूपी समुद्र में मेरे लिए जहाज के समान थे और उसके पराक्रम को सिंह भी प्राप्त नहीं कर सकते । परिहास की बातें यौगन्धरायण से ही मैंने सीखीं थीं । यौगन्धरायण के किन-किन गुणों का स्मरण करके, आँसू बहाया जाय, वह सभी गुणों का निधान था ।[1]

अपनी सम्पूर्ण योजनाओं में सफल हो जाने पर भी उसमें कहीं भी गर्व या अभिमान का भाव दिखलाई नहीं पड़ता है । उसकी विनम्रता का इससे बड़ा परिणाम और क्या हो सकता है कि वह चिता में जलने के लिए तैयार वासवदत्ता से कहता है कि आपको इस प्रकार का कष्ट देने का अपराधी मैं ही हूँ और अन्त में, अपने आपको अपराधी कहकर राजा से अपने अपराध के लिए क्षमा चाहता है ।

यह केवल महामन्त्री यौगन्धरायण का बुद्धि कौशल है कि उसने आक्रान्ता आरुणि से वत्स-प्रदेश की रक्षा की और इतना बड़ा संकट उपस्थित हो जाने पर भी राजा और महारानी में से किसी की भी हानि नहीं होने दी । उसने सभी संभावित संकटों का सामना करने के लिए पहले

---

1. राजा : पोतः साक्षात्त्वं विपद्वारिराशौ
तस्मिं शौर्यं नान्वपूर्वं मृगेन्द्रैः ।
क्रीड़ालापास्त्वत्त एव प्रवृत्ताः
किं किं स्मृत्वा रोदिमित्वद्गुणानाम् ॥
तापसवत्सराजम् 2·19, पृष्ठ 54.

से ही बड़ी सुनियोजित योजना तैयार कर ली थी । इसीलिए सभी ओर से राजा को पूर्ण सफलता प्राप्त होती है । अन्त में, हम कह सकते हैं कि इन नाटकों में यौगन्धरायण का बुद्धि-कौशल मुद्राराक्षस नाटक के महामन्त्री चाणक्य के बुद्धि-कौशल से और नीति प्रयोग से किंचित कम नहीं है ।

विदूषक :

विदूषक संस्कृत नाटकों का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है । वह नाटक में हास्य तथा व्यंग्य की रचनाकर नाटकीय मनोरंजन का साधन बनता है, किन्तु उसका इससे भी गम्भीर कार्य है । वह राजा के अन्तःपुर का आलोचक भी बनकर आता है । कभी-कभी वह संवाद में अपनी चतुरता का संकेत करता है किन्तु स्थूल रूप से वह मोदक प्रिय और मूर्ख दिखलाई पड़ता है । विदूषक ब्राह्मण जाति का होता है, उसकी वेशभूषा, चाल-ढाल, व्यवहार तथा बात-चीत का ढंग हास्यजनक होता है । विदूषक राजा का विश्वास पात्र व्यक्ति होता है, जिसे राजा अपनी गुप्त प्रेम मन्त्रणा तक बता देता है । वह कभी-कभी राजा के गुप्त प्रेम व्यवहार में सहायक भी होता है ।[1]

स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् इन दोनों ही नाटकों में कवियों ने विदूषक का प्रयोग किया है । स्वप्नवासवदत्तम् के अनुशीलन से विदित होता है कि विदूषक केवल हास्य रस का साधन और भोजन भट्ट ही नहीं है, वरन् वह सदैव राजा के साथ रहकर उसके प्रत्येक कार्य में सहायता करता है । वह अपनी सजगता के कारण राजा को सभी विषम परिस्थितियों से बचा लेता है और एक आदर्श मित्र की भाँति उसे अपने कर्तव्य कर्मों में प्रेरित

---

1. हास्यकृच्च विदूषकः । दशरूपक 2·9, पृष्ठ 93.

करता है, जब राजा वासवदत्ता की याद में रोने लगता है और वहाँ अचानक पद्मावती आजाती है,उस समय वह बड़ी सावधानी से पद्मावती को राजा की आँखों में आँसू आने का कारण बतलाता है कि काश के फूल की धूल हवा में उड़कर आँखों में पड़ जाने से आँसू आ गए हैं,इसलिए उनके मुख धोने का जल आप लीजिए ।[1] फिर वह राजा को स्मरण दिलाकर कि आपको मगधेश्वर के साथ स्वागत समारोह में चलना है, शीघ्र प्रस्थान के लिए यह कहकर वहाँ से हटा देता है । स्वप्नवासवदत्तम् का विदूषक भोजन के प्रति अधिक रुचि नहीं रखता है । वह अजीर्ण होने से भयभीत है, जब चेटी उससे भोजन न करने का कारण पूँछती है तो वह कहता है कि कोयल के अक्षि परिवर्तन की भाँति मुझ भाग्यहीन का कुक्षिपरिवर्त न हो गया है ।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का विदूषक अत्यधिक स्वामि-भक्त और सेवक है । मानव के सम्पूर्ण गुण, सुजनता, सहानुभूति करुणा इत्यादि उसमें पूर्ण रूप से विद्यमान हैं । वह राजा के दु:ख में दु:खी और सुख में सुखी रहता है । इसीलिए वह राजा का विश्वास-पात्र है । राजा अपनी दोनों पत्नियों के सम्बन्ध में उससे अपने विचारों को व्यक्त करता है ।[2]

---

1. विदूषक : भवति ! वातनी तेन काशकुसुमरेणनाऽक्षिणिनिपतितेन साश्रुपातं तत्रभवतो मुखम् ।
तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम् ।
स्वप्नवासवदत्तम् अंक-4, पृष्ठ 138.

2. विदूषक : भो मा एवं भण, एषा खलु दास्यादुहिता ज्ञातिकुलप्रवृत्तिः अवश्यम् अदुःखितमपि स्त्रीजनं रोदयति ।
तापसवत्सराजम् अंक-1, पृष्ठ 29.

तापसवत्सराजम् नाटक के अनुशीलन से विदित होता है कि इसनाटक का विदूषक अत्यन्त गम्भीर और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यभार को निभाने वाला है। वह संस्कृत नाटकों के अन्य विदूषकों की भाँति वाचाल, मूर्ख और पेटपूजा करने वाला नहीं है। राष्ट्र की रक्षा के लिए मन्त्रियों ने जो गुप्त योजना बनाई है, वह स्वयं ही उसका एक सदस्य है। वह राजा की रक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है, वह रात-दिन छाया की भाँति राजा का अनुसरण करता है और मन्त्रियों की योजना को राजा से मना नहीं करता है। यौगन्धरायण को कल्पित मृत्यु पर राजा को शोकाकुल देखकर वह स्वयं भी रोने लगता है और जानता हुआ भी अनजान सा बनकर कहने लगता है -"हे ! मन्त्रीवर, हम सबको छोड़कर महारानी के साथ जाते हुए आपने बड़ा दुष्कर कार्य किया है।"[1]

हम देखते हैं कि रुमण्वान् एवं उसकी सहमति से ही राजा को प्रयाग में सामकायन के पास ले जाया जाता है और वहाँ से राजा की रक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व विदूषक को सौंपकर रुमण्वान् स्वयं कौशाम्बी लौट जाता है, विदूषक को आगे के सम्पूर्ण कार्यक्रमविदित हैं और उसी के अनुसार वह किसी बहाने से राजा को लेकर राजगृह पहुँचता है और शोकाकुल राजा को अनेक प्रकार से धैर्य और सान्त्वना देता है। वह धीरे-धीरे राजा को दूसरे विवाह के लिए प्रेरित करता है और इसी दृष्टि से वह राजा को पद्मावती के तपोवन में ले चलता है और वहाँ थकान का बहाना करके ऐसा लेट जाता है कि पद्मावती के द्वारा राजा की अर्चनाकिये जाने तक उठने का

---

1. विदूषक : [रुदन्] हा अमात्य ! अस्मान् परित्यज्य देवीमनुगच्छन् दुष्करमध्यवसितोऽसि ।
   तापसवत्सराजम्, अंक-3, पृष्ठ 54.

नाम नहीं लेता है और बीच में बातें बनाबना कर राजा का ध्यान पद्मावती की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है ।

चतुर्थ अंक में लतापाश में शरीर त्याग के लिए उद्यत पद्मावती के पास राजा को वह यथासमय ले जाता है, जिससे पद्मावतीकिमृत्युपाश से रक्षा हो जाती है । तापसवत्सराजम् नाटक का विदूषक प्रत्युत्पन्नमति है और उसकी दृष्टि भी बहुत पैनी है; वह यथासमय बातें बनाकर स्थिति को संभाल लेता है, उसमें जहाँ कठोर उत्तरदायित्व को निभाने की दृढ़ता एवं बुद्धि की चतुरता है, वहीं उसमें हृदय की कोमलता भी है । प्राणान्त के लिए उद्यत और वासवदत्ता के लिए व्याकुल राजा को देखकर वह कहता है कि आपकी यह दशा देखकर मेरा हृदय अत्यन्त दुःखी हो रहा है ।[1]

संस्कृत के अन्य नाटकों के विदूषक प्रायः भोजनप्रिय और विनोदीस्वभाव के होते हैं, किन्तु तापसवत्सराजम् नाटक के विदूषक में भोजन-प्रियता और परिहास बहुत कम तथा परिसीमित मात्रा में देखा जाता है । उसका परिहास मृदु हैऔरउसमें भोजनप्रियता अधिक नहीं है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तापसवत्सराजम् का विदूषक अनेक अंशों में अन्य नाटकों के विदूषकों से भिन्न है । इस नाटक के अन्तर्गत घटित होने वाली घटनाओं में उसका अपना विशिष्ट योगदान है और वह अपने मन्त्रियों की योजना के अनुसार अपना योगदान देने में पीछे नहीं रहता है । इस नाटक का विदूषक उत्तरदायित्व को निभाने वाला

---

1. विदूषक: सर्वमेतदिदं वृत्तं जानामि तथापि एतद्वयस्यस्य व्यवसितम् प्रेक्ष्य आक्षिप्यत इव मे हृदयम् ।
तापसवत्सराजम् अंक-6, पृष्ठ 202.

गम्भीर और संयत पात्र है । नाटक में सूत्रधार, रूमण्वान्, लामकायन, विनीत भद्र, लेखवाहक, शिष्य, कंचुकीय, कुंजरक, माणवक और शबर आदि अनेक पात्र हैं किन्तु विस्तार भय से इन सब का चरित्र-चित्रण यहाँ अपेक्षित नहीं है ।

निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि दोनों ही नाटककार 'भास' एवं 'अनंगहर्षमातृराज' पात्रों के चरित्रांकन में अत्यन्त निपुण और नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के धनी हैं ।

0000000
00000
000
0

:/

पंचम - अध्याय

संवाद - योजना

:/

पंचम - अध्याय

संवाद योजना :

नाटकों में संवादों का अतिशय महत्व है । संवादों के द्वारा नाटक का कथानक आगे बढ़ता है और अपनी चरमसिद्धि को प्राप्त करता है । नाटकों के संवाद के विषय में नाट्यशास्त्रियों ने बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें बतलाई हैं । कौन सा नाटक दर्शकों के लिए सुन्दर तथा उपयोगी होता है ? इसके उत्तर में आचार्य भरत का कथन है कि नाटक मृदु तथा ललित पदों से युक्त तथा स्पष्ट शब्द और अर्थ से युक्त होना चाहिए । बुद्धिमानों को सुख देने वाला, चतुर लोगों के द्वारा खेला जा सकने वाला, बहुत से रसों को व्यक्त करने का मार्ग उद्घाटित करने वाला और नाट्य सन्धियों से सधा हुआ नाटक दर्शकों के लिए उपयोगी होता है । भरत मुनि के उपर्युक्त कथन का आशय यह प्रकट होता है कि उन्होंने संवाद योजना के विषय में तीन बातें स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर दी हैं । एक तो यह कि संवाद कहीं भी ऐसा नहीं होना चाहिए जिसके अर्थ को समझने में श्रोताओं को कठिनाई हो ।[1] भरत मुनि के कथन का यह अभिप्राय है कि संवाद को सुनते ही वक्ता का भाव स्पष्ट हो जाना चाहिए । संवाद ऐसे होने चाहिए जिससे दर्शकों को शीघ्र रसानुभूति हो सके । संवाद को न तो नीरस होना चाहिए और न केवल सूचना देने वाला होना चाहिए, बल्कि उनका रस से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है । भरतमुनि का स्पष्ट

---

1. संस्कृत आलोचना : बलदेव उपाध्याय, प्रथम संस्करण 1957, पृष्ठ 88.

अभिमत है कि संवाद की योजना करते समय नाटककार को अलंकार के प्रपंच में नहीं पड़ना चाहिए जो श्रोताओं के समझ के परे हों, या अस्वाभाविक प्रतीत होती हों, अथवा जो उचित न हो और जिसके अनुसार अभिनय करने में श्रोताओं को असुविधा प्रतीत होती हो ।

अन्य विद्वानों के अनुसार संवाद-योजना के लिए औचित्य का बहुत अधिक महत्त्व होता है । पात्र को क्या कहना चाहिए, किस समय कहना चाहिए, कैसे कहना चाहिए, इन प्रश्नों को आधार मानकर विरचित संवाद ही प्रेक्षकों के हृदय को आकर्षित करता है । इसका अर्थ यह नहीं है कि नाटककार को काव्यशास्त्र का अध्ययन नहीं करना चाहिए। कवि कर्म के लिए काव्य-शास्त्र का अनुशीलन कवि के लिए नितान्त आवश्यक होता है, परन्तु कवि को चाहिए कि वह अपने नाटक में बलपूर्वक खोजकर अलंकारों का बलात प्रयोग न करें अन्यथा नाटक की भाषा दुरूह, अस्वाभाविक, कठिन औरदुर्बोध हो जाती है, जिससे रसानुभूति में बाधा होती है।

संवाद-योजना के लिए भाषा का अच्छा ज्ञान परम आवश्यक है । संस्कृत के नाटकों में संवाद संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में रहते हैं । पात्रों की सामाजिक और सांस्कृतिक योजना के अनुसार ही संवाद की योजना की जाती है । विद्वानों का कथन है कि संवाद रचना के लिए काव्य के समस्त गुण आवश्यक होते हैं । परन्तु दो गुणों की आवश्यकता अनिवार्य है । एक है प्रसाद गुण और दूसरा गुण है संवादों मेंकौतूहल । प्रसाद गुण के द्वारा वक्ता की बात श्रोता के हृदय तक सरलता से पहुँच जाती है । वह उसे भलीभाँति समझ लेता है और उसका आनन्द लेने की ओर प्रवृत्त होता है ।[1]

---

1. संस्कृत आलोचना: बल्देव उपाध्याय, प्रथम संस्करण 1957, पृष्ठ 89.

दूसरे गुण कौतूहल के द्वारा दर्शक की प्रवृत्ति नाटक देखने की ओर स्वयं अग्रसर होती है । यदि नाटकों के संवादों में कौतूहल नहीं है तो वह फीका, अरुचिकर तथा आकर्षण विहीन होगा । संवाद में सदैव आकर्षण का होना अत्यन्त आवश्यक है । इस आकर्षण से दर्शक नाटक के संवादों से सम्बद्ध रहता है । नाटककार को संवाद की रचना करते समय उसके दोषों से बचना चाहिए । संवाद के दोष वही हैं जो सामान्य रूप से काव्य के दोष होते हैं । यथा - क्लिष्ट, अश्लील, अमंगल और संदिग्धार्थ इत्यादि ।

नाट्यशास्त्रियों ने पात्रों के उच्चारण के लिए विशेष नियमों का निर्माण किया है । उच्चारण करने वाले या पढ़ने वाले पात्र के छः गुण होते हैं - माधुर्य, अक्षर की स्पष्टअभिव्यक्ति, पदच्छेद, सुस्वरता, धैर्य तथा लयसमर्थता ।[1] इस कथन का तात्पर्य यह है कि शब्दों का उच्चारण मधुर होना चाहिए, कर्णकटु नहीं । अक्षरों का उच्चारण बहुत स्पष्ट और पृथक - पृथक होना चाहिए । उच्चारण में स्वरों का उचित उतार-चढ़ाव भी आवश्यक है । सुस्वरता बहुत ही महत्त्वपूर्ण गुण माना जाता है । रसों के अनुसार स्वर-परिवर्तन होता है । शृंगार रस के प्रतिपादन में कोमल स्वरों का प्रयोग करना चाहिए और रौद्र रस के प्रतिपादन में उग्रस्वरों का प्रयोग करना चाहिए । प्रसंग और विषयानुसार स्वरों में उतार-चढ़ाव करना चाहिए । तभी वक्ता का प्रभाव श्रोता पर ठीक से होता

---

1. माधुर्यम् अक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तुसुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थम् च षडेते पाठका गुणाः ॥
पाणिनीय-शिक्षा, पृ0 5.

है और श्रोता का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है । बोलने में उचित लय का होना भी अत्यन्त आवश्यक है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संवाद का कथन इस प्रकार होना चाहिए कि श्रोतागण आकर्षित हो जावें तथा नाटक के पात्रों के कथनोपकथन में रस ग्रहण करते हुए उसे ध्यान से सुनें। पात्रों की भाषा में उक्त प्रकार से आकर्षण उत्पन्न हो जाता है ।

जो पात्र गाकर वाक्यों का उच्चारण करते हैं, शीघ्र बिना रोके हुए कथनोपकथन करते हैं, अनावश्यक शिरकम्पन सहित उच्चारण करते हैं तथा जो लिखकर अपने संवादों को काट देते हैं । ऐसे पाठक अधम होते हैं ।[1]

आचार्य भरत मुनि ने तो संवाद के दोनों तत्वों, भाषा तत्त्व तथा वाच्यतत्व पर अपने गम्भीर विचार प्रस्तुत किए हैं । जिसका अनुकरण आज भी नाटक को रोचक बनाने के लिए उपयोगी है । विद्वानों का कथन है कि भारतीय संस्कृत नाटक न केवल आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित रहता है और न केवल यथार्थवाद पर ही प्रतिष्ठित रहता है, प्रत्युत उसमें दोनों का मन्जुल समन्वय घटित होता है और यही कारण है कि आज भी वैज्ञानिक रंगमंच के युग में भी संस्कृत के नाटकों का अभिनय उतना ही आकर्षक तथा मनोरंजक सिद्ध होता है ।[2]

---

1. गीती, शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
   पाणिनीय शिक्षा, पृ० 5.
2. संस्कृत आलोचना : बल्देव उपाध्याय, संस्करण 1957, पृष्ठ 90.

आचार्य भरत ने अभिनय के चार प्रकार माने हैं -{1} {आंगिक, {2} वाचिक, {3} आहार्य तथा {4} सात्त्विक । इन चारों अभिनयों के द्वारा प्रस्तुत कथावस्तु ही दर्शकों के सामने अभिनेय-पदार्थ तथा यथार्थ रूप दिखला सकती है तथा उनका मनोरंजन कर सकती है ।

वाचिक अभिनय में नटों तथा पात्रों के संवाद का विधान रहता है । संवाद के द्वारा ही कोई पात्र अपनी भावना अभिव्यक्त करता है तथा अन्य पात्रों के साथ कथनोपकथन में प्रवृत्त होता है । इसीलिए भरत मुनि ने वाचिक अभिनय को नाट्य का शरीर कहा है तथा इस कार्य में पात्रों को विशेष प्रयत्न करने के लिए निर्देशित किया है ।[1]

संवादों की भाषा :

नाटककार भाषा के प्रयोग में अपने मानसिक साक्षात्कार से वस्तु के सार बिन्दु को आत्मिक रूपों में ग्रहण करने का प्रयत्न करता है । वह वस्तुओं तथा परिस्थितियों को उनकी तार्किक सम्बन्धों को स्थिति से अलग कर वास्तविक संवेदनात्मक प्रति-छवियों में वर्णित करता है । नाटककार भी कलाकार है औरवह अपने पात्रों के सम्भाषणों में तार्किक, स्थितियों के स्थान पर व्यक्ति तथा वस्तुओं की संवेदनात्मक प्रति छवियों को व्यंजित करना चाहता है इसीलिए विद्वानों का कथन है कि उसकी भाषा जीवन के सजीव भावात्मक संदर्भ को व्यंजित करने वाली होनी चाहिए । अभिनेताओं द्वारा अपने सम्भाषण में सहज रूप से स्पष्ट तथा कुशल संगति उत्पन्न करनी चाहिए । इस प्रकार भाषा निहित अर्थ को प्रकाशित करती है और प्रत्येक

---

1. वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता ।
अंगनेपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यंजयन्ति हि ॥
नाट्यशास्त्र 5·2

भाव बोध के अन्तर्निहित अर्थ को निर्दिष्ट तथा व्यंजित कर देती है । नाटकीय सम्भाषण में भाषा के प्रयोग के दो स्तर होते हैं, भाषा तो वास्तव में वाणी ही है, लिखित रूप में कुछ प्रतीकों के सहारे और नियमों के आधार परचलती है । नाटक की रचना में नाटककार जीवन की भाषा को यथा-सम्भव ऐसे संकेतों तथा प्रतीकों के माध्यम से लिपिबद्ध करता है जिनमें उसकी सजीवता तथा जीवन के संदर्भों को ग्रहण करने की अधिक से अधिक सम्भावना रहती है और इसके बाद सूत्रधार {निर्देशक} पूर्ण सम्भावनाओं तथा संदर्भों को लिपिबद्धकर नाटकीय वस्तु से परिकल्पित करता है और अभिनेता इसी आधार पर अपने कथोपकथनों में कलात्मक सर्जन की सम्भावनाओं का अविष्कार करते हैं ।[1] प्राय: यह कहा जाता है कि भाव प्रदर्शन संवेदन की भाषा है और सम्भाषण विचार की भाषा है, परन्तु इस कथन में आंशिक मात्र प्रतीत होता है, विचारों की भाषा का प्रयोग ही भाव प्रदर्शन में निरन्तर देखा जा सकता है । केवल विचारों को प्रकट करने के लिए शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता है,वरन् संवेगों को जागृत करने की शक्ति भी उनमें रहती है । कभी-कभी केवल एक वाक्यांश ही हमारे मन में,उन शब्दों के संदर्भ के कारण, ऐसा भाव जागृत कर देता है,जो सम्पूर्ण विचार की संवेगात्मक स्थिति से कोई समता नहीं रखता है फिरभी भाव प्रदर्शन का सम्बन्ध अधिकतर इच्छाशक्ति से है और कथनोपकथन विचार मूलक होते हैं। इस कारण भाव प्रदर्शन के अध्ययन का सम्बन्ध संवेदनाओं से रहा है और वाणी के अध्ययन में अधिकतर विचारों की कोमल तथा तीव्र उच्चारणात्मक

---

1. नाट्यकला : डॉ० रघुवंश, प्रथम संस्करण 1961, पृष्ठ 162.

विभिन्नतायें महत्वपूर्ण होती हैं ।[1]

लेखक या कवि को अपने अर्थ को पूर्णरूप से व्यंजित करने के लिए सदा अधिक कथन के स्थान पर कम कथन ही करना चाहिए । इसीप्रकार अभिनेता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसके लिए अपने भाव को व्यक्त करने के लिए समस्त उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करना ही जरूरी नहीं है । उसको श्रोता तथा दृष्टा की स्मरण शक्ति पर विश्वास करके कुछ शब्दों को छोड़ देना चाहिए क्योंकि वे स्वयं संदर्भ और प्रसंग के सहारे उद्दिष्ट अर्थ को ग्रहण करके अधिक सही व्यंजना तक पहुँच सकते हैं ।

संवाद योजना के अन्तर्गत प्रत्येक वाक्य में एक या दो शब्द विशेष महत्व के रहते हैं, उनका स्थान भी निर्धारित होता है, जिन पर सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ निर्भर रहता है । अभिनेता को इन शब्दों की स्थिति तथा अभिनय का अनुमान होना चाहिए । इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह ऐसे प्रत्येक शब्द या वाक्यांश पर बल ही देगा क्योंकि कुछ शब्द भारी और कुछ हल्के होने पर ही विशिष्ट अर्थ की व्यंजना देते हैं । एक ही शब्द औसत, प्रसंग तथा वाक्य में अपने स्थान के अनुसार कभी भारी और कभी हल्का प्रयुक्त हो सकता है । इस प्रकार के संतुलन का ज्ञान नाटककार को कथोपकथन की शैली के अनुरूप शब्द-संचयन के लिए और अभिनेता को यथार्थ संभाषण में उसे उपयुक्त करने के लिए होना चाहिए ।

संस्कृत नाटकों की कल्पना रस पर आधारित है, अत: उसमें

---

1. नाट्यकला : डॉ०रघुवंश, प्रथम संस्करण 1961, पृष्ठ 167.

वाचिक अभिनय की परिकल्पना रस को लेकर ही चलती है । भरत ने इसीलिए अलंकार, छन्द तथा गुण आदि की चर्चा इसी दृष्टि से की है।[1]

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में विस्तृत चर्चा के बाद नाटकीय उच्चारण के सम्बन्ध में निश्चित नियमों कीचर्चा की है । उन्होंने पाठ्य के विषय में सात स्वर, तीन स्थान, चार वर्ण, दो काव्य और छः अलंकारों का उल्लेख किया है । वस्तुतः वाचिक अभिनय के विषय में इन्हीं को विशिष्ट निर्देशों के रूप में माना जा सकता है । सात स्वरों में-षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद है । हास्य तथा श्रृंगार में स्वर मध्यम तथा पंचम, वीर रौद्र तथा अद्भुत रसों में षड्ज तथा ऋषभ, करुण रस में गान्धार और निषाद, वीभत्स तथा भयानक रसों में धैवत स्वरों का प्रयोग अपेक्षित माना गया है ।[2]

ध्वनि निकालने के तीन स्थानों में उर, कण्ठ, तथा शिर माने गए हैं । मुनिवर भरत का कथन है कि दूर के व्यक्ति को सम्बोधित करने के लिए शिर स्थान, निकट के व्यक्ति को सम्बोधित करने के लिए कण्ठ-स्थान तथा बिल्कुल समीप के व्यक्ति से बातचीत करने के लिए उर-स्थान से ध्वनि निकालनी चाहिए ।[3]

मुनिवर भरतनेअपने नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय का विस्तृत विवेचन किया है, यहाँ यह बात स्पष्ट होना चाहिए कि संस्कृत नाटकों में रसदृष्टि ही प्रधान है तथा इनमें पद्य का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है ।[4]

---

1. नाट्यशास्त्र, अध्याय 17
2. नाट्यशास्त्र, अध्याय 19
3. नाट्यशास्त्र, अध्याय 19
4. नाट्यशास्त्र, अध्याय 19.

नाटकों की भाषा के सम्बन्ध में सम्यक् दृष्टि यही है कि उसे जहाँ तक सम्भव हो, स्वाभाविक और सहज होना चाहिए और भाव-स्थिति के अनुरूप अलंकरण से भी घृणा नहीं होनी चाहिए । नाटकों की भाषा को सरस और सरल होना चाहिए । सामान्य और नीरस नहीं । नाटककार के पास अपनी बात कहने के लिए सीमित समय और अवकाश होना चाहिए, जब-जब वह अपनी भाषा का चयन नहीं करेगा : सागर में गागर नहीं भरेगा और स्वभाविक अलंकरण नहीं करेगा तब तक उसके हाथ से अवसर के चले जाने की आशंका बराबर बनी रहेगी । नाटक के लिए वही भाषा आदर्श मानी जाती है जो सरल दिखाई देते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली होती है । अभिनय की दृष्टि से भी भाषा की यही स्थिति आदर्श है, क्योंकि भाषा के सरल और साधारण होने से तो अभिनेता को उसके स्मरण और उच्चारण में सुविधारहती है और प्रभावी होने के कारण ही वह उसके माध्यम से प्रेक्षक को रस-रज्जु से बाँधे रहता है ।

अभिनेता को अपने संवाद रटना नहीं चाहिए,अपितु हृदयंगम करना चाहिए, संभाषण को रटकर बोलने में यह भय बना रहता है कि अभिनेता इस बात के लिए सजग रहता है कि उसने ध्वनि समूह का उच्चारण कर दिया है अथवा नहीं । जो उसे उस संदर्भ में उच्चारित करना था । संवादों को रटने वाला अभिनेता यह भी सोच सकता है कि उसके द्वारा उच्चरित ध्वनि समूह से इस संदर्भ का अर्थ प्रकट हुआ है अथवा नहीं किन्तु वाचिक अभिनय तो उच्चारण मात्रहै, न कि अर्थ की अभिव्यक्ति मात्र वह तो एक विशिष्ट भाव स्थिति का वाणीगत रूप है, अभिनय तो मूलतः

भाव का ही होता है ।[1]

अभिनेता को यह बिन्दु कदापि विस्मृत नहीं होना चाहिए कि उसे एक विशिष्ट भावस्थिति का अभिनय करना है । संवादों को हृदयंगम करने के पश्चात् अभिनेता को भाव स्थिति का ध्यान रखने में सुगमता रहती है और फिर प्रत्येक शब्दों के उच्चारण से सम्बन्धित स्वर, बलाघात तथा अन्तराल का निर्णय स्वयं हो जाता है । इन्हीं को ध्यान में रखने से वाचिक अभिनय में प्रभाव उत्पन्न हो जाता है । अभिनेता को चाहिए कि वह संवादों के वाक्य या वाक्यांशों में शब्दों के आपेक्षित महत्व को पहचान कर उनका उचित बलाघात और अन्तराल के साथ उच्चारण करें ।[2]

संस्कृत नाटकों में पाठ्य दो प्रकार का होता है- संस्कृत तथा प्राकृत । उच्चकोटि के पात्रों को भाषा संस्कृत होती है तथा मध्यम तथा नीच श्रेणी के पात्रों की भाषा प्राकृत होती है । नाट्य का पाठ्य कवित्व-मय होता है । अतः संवादों की रचना करते समय नाटककार को चाहिए कि वह दोषों का परिहार कर ले और गुण तथा अलंकारों का संग्रह करके प्रभावशाली संवादों की रचना करे । नाटक की संवाद - योजना में सदैव औचित्य का ध्यान परमावश्यक होता है और वैसे भी अभिनय सर्वस्व औचित्य का विधान होता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त कथन और सिद्धांत प्रतिपादन के प्रकाश में जब हम स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् नाटकों में प्राप्त संवादों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो हमें दोनों कवियों के चातुर्य

---

1. नाटकों का विकास : डॉ०सुन्दरलाल शर्मा, संस्करण 1977, पृष्ठ-157
2. वही, पृ० 158.

पूर्ण परिचय प्राप्त होता है । नाटककार भास अपने प्रसिद्ध नाटक स्वप्न-वासवदत्तम् के प्रथम अंक में ही मुद्रालंकार के द्वारा प्रमुख पात्रों का नामोल्लेख करते हुए परिचय दे देते हैं । यह उनकी अपनी विशेषता है ।[1] कविवर भास की दूसरी प्रमुख विशेषता यह भी है कि कभी-कभी वे नाटकीय पात्रों का संवाद श्लोक में कराते हैं । श्लोक के एक ही चरण में दो पात्रों का संवाद हो जाता है । इस प्रकार का उदाहरण प्रतिमा नाटक अंक तीन, श्लोक एक में अवलोकनीय है । कविवर भास के नाटकों के संवाद बड़े ही चुस्त, संक्षिप्त, सरल, सजीव, प्रसादगुणयुक्त, अनायासपूर्ण और नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार भास को अनावश्यक विवरण तथा विस्तार से चिढ़ है ।

कविवर भास ने अपने नाटक की संवाद-योजना में यथावश्यक ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों का समावेश किया है । सर्वोपरि उनके संवादों में प्रसाद गुण की भरमार है । पात्र तथा भावों के अनुकूल शब्द चयन एवं उनके परिमित प्रयोग में भास अत्यन्त निपुण हैं । नाटक के पात्रों के संवादों में क्लिष्ट एवं समास बहुला शब्दावली का सर्वथा अभाव है । नाटक के संवादों में स्वाभाविक पद विन्यास तथा भाव सौष्ठव के साथ प्रवाहमयी शब्दावली सभी को अपूर्व आनन्दातिरेक से भाव विभोर कर देती है । भास के संवाद अनावश्यक वर्ण विस्तार से दूर लाघव और सरलता से युक्त उनका पद विन्यास संस्कृत के नाट्य साहित्य में अद्वितीय है ।

---

1. उदयनवेन्दु सवर्णा वासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 1·1, पृष्ठ 2

उनके संवाद हृदय पर गहरा प्रभाव डालने वाले हैं । उनकी जैसी पदयोजना और संवाद-योजना संस्कृत के परवर्ती नाटककारों में दुर्लभ है । संवादों के अन्तर्गत पद्यों का समावेश नाटक के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने में सहायक है । उनके संवादों के माध्यम से घटनाओं तथा दृश्यों का यथोचित वर्णन हो जाता है ।[1] इसके अतिरिक्त उनके संवादों में अलंकारों का चयन भी अत्यधिक स्वाभाविक रूप से हुआ है । संवादों में प्रयुक्त शब्दों के साथ ही अलंकारों के सुन्दर प्रयोग से भी श्रोता और दर्शक के हृदय में गूढ़ से गूढ़ भाव प्रविष्ट हो जाते हैं ।

वासवदत्ता औरयौगन्धरायणके संवादों में कवि को उपमाओं के लिए प्रकृति के ही उपादान विशेष रूप से अभीष्ट प्रतीत होते हैं । संवादों की सरलता और मधुरता अवलोकनीय है । यथा -

वासवदत्ता :- आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः ।

यौगन्धरायणः- भुक्तोज्झित एव भिक्षोऽत्रभवत्या । नात्र चिन्ताकार्या । कुतः,

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गत मेवमासीच्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंङ्क्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्तिः ॥

(स्वप्नवासवदत्तम् 1·4)

कविवर भास ने अपने नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा संवादों की रचना की है । यथा -

वासवदत्ता :- स्वगतम्, इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम् ।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् अंक- 1, पृष्ठ 25.

पद्मावती : आर्ये वन्दे ।

तापसी - चिरंजीव । प्रविश जाते । प्रविश ।

तपोवनानिनामातिथिजनस्य स्वगेहम् ।

[स्वप्नवासवदत्तम् प्रथम अंक, 3·25

एक ब्रह्मचारी मगध के आश्रम में प्रवेश करता है, जहाँ पर महामन्त्री यौगन्धरायण और वासवदत्ता प्रच्छन्न वेश में उपस्थित हैं, वहीं पर मगध की राजकुमारी पद्मावती भी है । वह ब्रह्मचारी लावाणक ग्राम से आया हुआ है । वह वहाँ पर वेदाध्ययन करने के लिए रुक चुका है । यौगन्धरायण उससे पूछता है क्या आपका अध्ययन समाप्त हो गया ? ब्रह्मचारी कहता है - अभी नहीं । यौगन्धरायण पुन: कहता है कि यदि अध्ययन समाप्त नहीं हुआ है तो आगमन का प्रयोजन क्या है ? इस पर ब्रह्मचारी कहता है कि वहाँ पर बड़ी भारी विपत्ति आ गई है । यौगन्धरायण पूछता है कि कैसी विपत्ति है ? इसपर ब्रह्मचारी कहता है कि वहाँ पर उदयन नाम के राजा रहते हैं और उनकी अवन्तिराज पुत्री वासवदत्ता अत्यन्त प्रिय पत्नी है । राजा के मृगया के लिए चले जाने पर गाँव में आग लग जाने पर जल गई है ।[1]

---

1. यौगन्धरायण: - अथ परिसमाप्ता विद्या ?
   ब्रह्मचारी - न खलु तावत् ।
   यौगन्धरायण: - यद्यनवसिता विद्या, किमागमन प्रयोजनम् ?
   ब्रह्मचारी - तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।
   यौगन्धरायण: - कथमिव ?
   ब्रह्मचारी - तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।
   यौगन्धरायण: - श्रूयते तत्रभवानुदयन: किम: ?
   ब्रह्मचारी - तस्यावन्तीराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नीदृढमभिप्रेता किल ।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार भास ने पात्रों के संवादों में विशेष दक्षता प्रदर्शित की है । संवाद प्रायः लघु विस्तार वाले हैं । वाग्विस्तार का परिहार भास की महती विशेषता है । नाटक का कोई भी पात्र उतना ही बोलता है जितना आवश्यक है पाठक या दर्शक को यह कहीं भी प्रतीत नहीं होता कि वार्तालाप का अमुक अंश व्यर्थ है । यह संवाद सर्वत्र ~~का~~ विवक्षित भाव के द्योतक हैं । अभीष्ट अर्थ के प्रकाशन में कहीं कोई कमी दिखाई नहीं देती है । वार्तालापों के आश्रय से ही सम्पूर्ण दृश्य को उपस्थित करने में नाटककार भास सफल रहे । वार्तालापों को सुनकर दर्शकों के लिए यदि सूच्य विषय है तो भी उसका पूरा दृश्य सामने आ जाता है । संवादों में भास की सरल तथा असमस्त भाषा ने श्रीवृद्धि की है । भास सरल शब्दावली के आचार्य हैं । यह बात नितान्त अपेक्षित है कि नाटक की भाषा को यथा-साध्य सरल तथा भाव व्यंजन में समर्थ होना चाहिए । तभी नाटक सार्ववर्णिक और सार्वजनिक हो सकता है । नाटक के दर्शक परिष्कृत और अपरिष्कृत दोनों प्रकार के होते हैं । इसीलिए नाटककार का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह भाषा को सरल तथा भावबोधन में समर्थ बनाये । जब इस दृष्टिसे हम विचार करते हैं तो भास एक सफल नाटककार के रूप में दिखाई देते हैं । वस्तुतः नाटककार भास कि इतनी प्रसिद्धि का कारण उनकी प्रभावपूर्ण लघु समासरहित छोटे-छोटे संवाद हैं ।[1]

गत पृष्ठ का फुटनोट:
यौगन्धरायणः - भवितव्यम् । ततस्ततः ?
ब्रह्मचारी - ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा
[स्वप्नवासवदत्तम् अंक-प्रथम, पृष्ठ 48-49

1. भास-नाटक-चक्र-बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 138.

महामहोपाध्याय पं०गणपति शास्त्री ने भास की वाक्य रचना की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनका कथन है कि भास के नाटकों के वाक्य सुन्दर विचारों की सम्पत्ति से भरे हुए हैं, जिनकी अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दरता के साथ हुई है, जिनकी कोई भी संस्कारवान् व्यक्ति अत्यधिक प्रशंसा करेगा।[1]

अग्निदाह के पश्चात् ब्रह्मचारी का संवाद कितना सरल और प्रसाद गुण-युक्त है। यथा -

ब्रह्मचारी - ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा शिष्ये ! इति किमपि किमपि बहु प्रलपितवान् किं बहुना ।

इसके बाद वह ब्रह्मचारी कहता है कि इस समय उस राजा के समान न तो चक्रवाक है और न ही अपनी प्रिय नारियों से अलग हुए दूसरे ही कोई व्यक्ति हैं। वह नारी धन्य है जिसे उसका पति इतना अधिक प्रेम करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अग्नि में जली हुई भी वह वासवदत्ता पति के अतिशय प्रेम के कारण न जली हुई के समान है।[2]

स्वप्नवासवदत्तम् के द्वितीय अंक में वासवदत्ता पद्मावती से कहती है कि सखी यह तुम्हारी गेंद है, इस पर पद्मावती कहती है कि आर्य इस समय इतना ही खेल पर्याप्त है। उसपर वासवदत्ता बड़ी सुन्दरता के साथ कहती है कि सखी ! अधिक देर तक गेंद खेलने के कारण लालिमा

---

1. ए क्रिटिकल स्टडी आफ भास, म०म०गणपति शास्त्री, पृष्ठ 27
2. नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।
   धन्या सा स्त्री यां तथावेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥
   स्वप्नवासवदत्तम् 1-13, पृष्ठ 55.

से युक्त तुम्हारे दोनों हाथ अब शीघ्र ही पाणिग्रहण होने पर पराये हो जावेंगे ।[1]

द्वितीय अंक में ही वहाँ आये हुए उदयन के रूप सौन्दर्य और अवस्था को देखकर मगधराज दर्शक पद्मावती का वाग्दान कर देता है । चेटी तुरन्त प्रवेश करके अन्तःपुर में सूचित करती है कि देवी शीघ्रता के लिए हमारी महारानी कहती है कि आज ही उत्तम नक्षत्र है । इसलिए आज ही कंगन बाँधने का मंगलाचार सम्पन्न हो जाना चाहिए । इस पर वासवदत्ता अपने मन में कहती है कि यह जैसे-जैसे शीघ्रता कर रही है, वैसे-वैसे मेरा हृदय सूना होता जा रहा है ।[2]

तृतीय अंक में नायिका वासवदत्ता के संवादों की चारुता

---

1. वासवदत्ता - हला ! एषते कन्दुकः ।

पद्मावती - आर्ये ! भवतु इदानीम् एतावत्

वासवदत्ता - हला ! अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसंजातरागौ परकीयाविवते हस्तौ संवृत्तौ ।

स्वप्नवासवदत्तम् अंक-द्वितीय, पृष्ठ 70-71

2. चेटी - त्वरतां त्वरतां तावदार्या ।

अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्

अद्यैव कौतुकमंगलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।

वासवदत्ता - आत्मगतम्, यथा यथा त्वरते तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम्।

स्वप्नवासवदत्तम् अंक-द्वितीय, पृष्ठ 81-82.

दर्शनीय है । एक ओर उदयन का पद्मावती से विवाह होता है, वहीं पर दूसरी ओर उपस्थित वासवदत्ता बहुत दुःखी होती है और कहती है कि मेरे पतिदेव पराप्रिय हो गए हैं । वह कहती है कि चक्रवाक की वधू धन्य है जो एक दूसरे के विरह होने पर जीवित नहीं रहती है । मै प्राण नहीं छोड़ रही हूँ । मै आर्य पुत्र को देख रही हूँ । इस मनोरथ से मन्द-भागिनी मै जीवित हूँ । तभी चेटी शीघ्र प्रवेश कर वासवदत्ता से कहती है कि महारानी ने कहा है कि आप उच्चकुल में उत्पन्न हुई हैं, स्नेह रखती हैं और निपुण हैं, इसलिए आप पद्मावती के लिए सुहाग की माला गूँथे । इस पर वासवदत्ता कहती है कि यह माला किसके लिए गूँथनी है, इस पर चेटी कहती है कि राजकुमारी पद्मावती के लिए । वासवदत्ता इस पर दुःखी होती है । वासवदत्ता चेटी से पूँछती है कि क्या तुमने दूल्हे को देखा है ? इसपर चेटी कहती है कि राजकुमारी के स्नेह और अपने कौतूहल से उन्हें देखा है । वासवदत्ता पूँछती है कि दूल्हा कैसा है?, इस पर चेटी कहती है कि हे देवी ! मै सत्य कहती हूं कि ऐसा दूल्हा मैंने कभी नहीं देखा है । इसपर वासवदत्ता कहती है कि सखी बतलाओ क्या वह सचमुच दर्शनीय है । इस पर चेटी कहती है कि वह दूल्हा धनुष्य और बाण से रहित साक्षात् कामदेव हैं ।[1]

---

1. वासवदत्ता - कीदृशो जामाता ?
चेटी - आर्ये ! भणामि तावद् नेदृशो दृष्टपूर्वः ।
वासवदत्ता - हला ! भण भण किं दर्शनीयः ?
चेटी - शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।
स्वप्नवासवदत्तम् अंक- तृतीय, पृष्ठ 88-89.

इसके अनन्तर पंचम अंक में नायक वत्सराज उदयन का स्वप्न में वासवदत्ता के साथ संवाद अवलोकनीय है। राजा सो रहा है और स्वप्न में कहता है कि हे! वासवदत्ते! वहाँ पर वासवदत्ता उपस्थित है। वह कहती है कि यह आर्यपुत्र हैं - पद्मावती नहीं है। क्या मैं इनके द्वारा देखी गई हूँ? आर्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा इस दर्शन से निष्फल हो जावेगी। राजा पुनः स्वप्न में कहता है हा अवन्ति-राजपुत्रि! इस पर वासवदत्ता कहती है कि भाग्य से आर्यपुत्र सपना देख रहे हैं। यहाँ पर कोई व्यक्ति नहीं है तब तक क्षणभर यहाँ ठहर कर अपनी आँखों और हृदय को संतुष्ट करती हूँ। राजा पुनः सपने में कहता है- हे प्रिये! हे शिष्ये! मुझे उत्तर दो। वासवदत्ता कहती है कि हे स्वामी! उत्तर देती हूँ, उत्तर देती हूँ। राजा कहता है कि क्या तुम रूष्ट हो गई हो? वासवदत्ता कहती है कि नहीं-नहीं मैं दुःखी हूँ। तब राजा पुनः पूछता है कि तुमने श्रृंगार क्यों नहीं किया? तब वासवदत्ता कहती है कि इससे बढ़कर दूसरा कारण हो सकता है क्या? तब वासवदत्ता कहती है कि इससे बढ़कर दूसरा कारण हो सकता है क्या? इसके बाद वासवदत्ता शैय्या पर से लटके हुए नायक के हाथ को शैय्या पर रखकर चल देती है। इसके बाद राजा का सपना टूट जाता है।[1]

---

1. राजा -[स्वप्नायते] हा वासवदत्ते।
 वासवदत्ता- [सहसोत्थाय] हम्! आर्यपुत्रः न खलु पद्मावती। किन्तु खलु दृष्टास्मि?
 राजा - हा अवन्तिराजपुत्रि!
 वासवदत्ता - दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः, नात्र कश्चिज्जनः। यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि।
 राजा - हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये! देहि मे प्रतिवचनम्।

शेष अगले पृष्ठ पर...

नाटक के अन्त में, पद्मावती, वासवदत्ता और नायक उदयन के संवादों की चारुता और स्पष्टता अवलोकनीय है । यौगन्धरायण ने ब्राह्मण के वेश में वासवदत्ता को अपनी भगिनी के रूप में पद्मावती के पास न्यास की तरह रख दिया था । यौगन्धरायण अपनी बहिन को लेने पद्मावती के पास आता है । वहाँ राजा उदयन भी है । पद्मावती अवन्तिका (वासवदत्ता) से कहती है आर्या इधर आये मैं आपको प्रिय समाचार सुनाती हूँ । अवन्तिका कहती है क्या ! क्या ! पद्मावती कहती है कि आपके भाई आए हैं । तब अवन्तिका कहती है कि धन्य भाग्य, भाई अभी भी याद करते हैं । पद्मावती उदयन के समीप जाकर कहती है कि तब आर्यपुत्र की जय हो । यह धरोहर है, तब राजा कहता है कि पद्मावती धरोहर लौटा दो । साक्षी के सामने धरोहर लौटानी चाहिए । पद्मावती यौगन्धरायण से कहती है कि आप अपनी बहिन को ले जाये । वहीं पर उपस्थित धात्री पहचान कर कहती है कि यह तो राजकुमारी वासवदत्ता है । राजा को अद्भुत आश्चर्य होता है कि क्या यह महासेन की पुत्री वासवदत्ता है । उन्हें पद्मावती के साथ अन्दर भेजा जाय । ब्राह्मण वेश में उपस्थित यौगन्धरायण कहता है कि नहीं, नहीं, इन्हें भीतर नहीं जाना चाहिए । यह सचमुच मेरी बहिन है । राजा उसके घूंघट हटाने का आदेश देता है और फिर सम्पूर्ण भेद खुल जाता है ।

पिछले पृष्ठ का शेष -

वासवदत्ता - आलपामि भर्तः आलपामि ।

राजा - किं कुपितासि ।

वासवदत्ता - नहि नहि दुःखितास्मि ।

स्वप्नवासवदत्तम् अंक-5, पृष्ठ170-171.

योगन्धरायण और वासवदत्ता एक साथ राजा की जय-जयकार करते हैं।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाटककार भास ने पात्रों के संवादों में विशेष दक्षता प्रदर्शित की है। उनके संवाद अत्यन्त लघु और मार्मिक हैं। संवादों में कहीं वाणी का विस्तार प्राप्त नहीं होता है। प्रत्येक पात्र आवश्यकता के अनुरूप ही बोलता है। उनके संवाद सम्पूर्ण भाव को प्रस्फुटित करने में समर्थ हैं। संवादों में भास की सरल शब्दावली प्रशंसनीय है। इसीलिए सचमुच यह नाटक भारतीय रंगमंच में अभिनय के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

संवाद योजना की दृष्टि से जब हम तापसवत्सराजम् नाटक का अनुशीलन करते हैं तो विदित होता है कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की तुलना में इसके संवाद और पद लम्बे-लम्बे दीर्घ, बहु-विस्तारी और क्लिष्ट हैं। इस नाटक में स्वगत भाषण इतने लम्बे हैं कि वक्ता अकेले ही सम्पूर्ण कथा को कह जाता है। नाटक का यह दोष आदि से अन्त तक सर्वत्र पाया जाता है। इसी प्रकार तृतीय अंक में सांकृत्यायन तथा उसके शिष्य

---

1. पद्मावती - एत्वेत्वार्या। प्रियं ते निवेदयामि।
   आवन्तिका- किं किम्?
   पद्मावती - भ्राता ते आगतः।
   अवन्तिका - दिष्ट्येदानीमपि स्मरति।
   पद्मावती - जयत्वार्यपुत्रः एष न्यासः।
   राजा - निर्यातय पद्मावति। साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः इहात्र भवान् रैभ्यः। अत्र भवती चाधिकरणं भविष्यतः।
   पद्मावती- आर्य! नीयतामिदानीमार्या।
   धात्री - अम्मो! भर्तृदारिका वासवदत्ता!

   स्वप्नवासवदत्तम्, अंक-6, पृष्ठ 226-227.

माणवक के संवाद बहुत लम्बे हैं । जिससे कथा का वेग मन्द होता हुआ दिखाई देता है । यहीं पर पद्मावती और वासवदत्ता के संवाद भी लम्बे लम्बे हैं जिनमें कथा के प्रवाह में शिथिलता दिखाई देती है । इसी प्रकार पंचम अंक में राजा और विदूषक के संवादों को देखने से प्रतीत है कि हम जैसे किसी भी स्थान पर बैठकर कोई कथा ही सुन रहे हों ।

इसी नाटक के पंचम अंक में कुंजरक के द्वारा प्रस्तुत युद्ध वर्णन अत्यन्त विस्तृत है । हम कथा के श्रोता के समान उस युद्ध का वर्णन मात्र सुनते रहते हैं । रंगमंच पर एक ही व्यक्ति के द्वारा लम्बे-लम्बे वर्णनों को प्रस्तुत करना नाटक की दृष्टि से उचित नहीं है किन्तु तापसवत्सराजम् में ऐसे अनेक स्थल हैं जो एक नाटक के लिए उपयुक्त नहीं है । सम्पूर्ण पंचम और द्वितीय अंक एक ही दृश्य में समाप्त हो जाते हैं । नाटककार इसमें परिवर्तन कर सकता था । कुंजरक के युद्ध वर्णन में क्लिष्ट समस्त शैली में घटित लम्बे-लम्बे संवाद नाटकीय शैली के लिए उचित नहीं कहे जा सकते हैं।[1]

प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही शिष्य का एक लम्बा संवाद है और लम्बे - लम्बे श्लोक प्राप्त होते हैं जिनमें काव्यात्मकता तो अधिक है लेकिन मंचन के लिए यह सफल नाटक प्रतीत नहीं होता है । इसी प्रकार द्वितीय अंक में अग्निदाह के वर्णन में कवि ने बड़े-बड़े श्लोकों के रूप में

---

1. कुंजरक : ततः संमुख - कुन्त-प्रहाराऽकुमारो-पतत-सुभट-प्रतिनिपान्वित-प्रतिभटं वीक्ष्य-खड्गाऽऽकर्षण-क्रूर-पाणि-चलन-विह्वल-योध-प्रवीरोद्भ्रान्तपरकं बलम् ।
तापसवत्सराजम्,अंक-5, पृष्ठ 170-171.

संवादों का गठन किया है औरवार्तालाप भी बहुविस्तारी है । तृतीय अंक और चतुर्थ अंक में भी नाटककार ने संवाद-योजना में बहुविस्तार का प्रदर्शन किया है । पंचम अंक में तो कुंजरक का युद्ध वर्णन कादम्बरी के गद्य खण्ड की तरह प्रतीत होता है । छठे अंक में यद्यपि संवाद छोटे-छोटे हैं किन्तु कुल मिलाकर स्वप्नवासवदत्तम् को तुलना में इस नाटक की संवाद योजना अत्यधिक विस्तृत है जिससे इसकी नाटकीयता में न्यूनता आ गई है । यह कहना न होगा कि संवाद-योजना की दृष्टि से विचार करने पर तापस-वत्सराजम् का महत्व रंगमंच के लिए बहुत ही न्यून रह जाता है । किन्तु इसकी सफलता का एक रूप यह भी है, जिसके आधार पर प्राचीन आचार्यों ने इसको इतना महत्व प्रदान किया है कि उन्होंने अपने लक्षण-ग्रन्थों में नाटक के विभिन्न अंगों के उदाहरणों के रूप में इसके विभिन्न स्थलों और प्रसंगों को उद्धृत किया है । अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन और भोजदेव आदि आचार्यों ने रस, भाव, ध्वनि और अलंकार इत्यादि के परिपोषण के लिए इस नाटक के अनेकानेक पद्यों और प्रसंगों को उद्धृत किया है । जिससे इसके शास्त्रीय पक्ष का महत्व बढ़ जाता है । भारतीय नाट्य-परम्परा में अभिनय की अपेक्षा रस का अधिक महत्व माना जाता है । इसीलिए नाटककारों का ध्यान रंगमंच की अपेक्षा रस - परिपाक की ओर अधिक रहा है । इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तापसवत्सराजम् एक सफलनाट्य-कृति है ।[1] यद्यपि मंचन की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्तम् की तुलना में तापस वत्सराजम् का महत्व न्यून प्रतीत होता है ।

0000000
00000
000
0

---

1. नहि-रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते-भरत-नाट्यशास्त्र 5·15
दशविवरणादियम् दशरूपक 1·7.

षष्ठ - अध्याय

नाटकों में रस - निष्पत्ति

षष्ठ - अ ध्या य

रसनिष्पत्ति :

नाटक में रस कामहत्त्वपूर्ण स्थान है । रस संचार के बिना कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, अत: रस-निष्पत्ति संस्कृत नाटककारों का मुख्य लक्ष्य होता है । दशरूपककार धनिक धनंजय ने इसीलिए नाटक को रसों पर आश्रित माना है ।[1] रस एक प्रकार का विशेष आनन्द है,जो काव्य के पठन,श्रवण अथवा नाटक के अभिनय देखने से सामाजिक को प्राप्त होता है। रस-निष्पत्ति के सम्बन्ध में आचार्य भरतमुनि का प्रसिद्ध रस-सूत्र है - "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:" अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारि भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है । यह रस केवल शास्त्रीय वस्तु ही नहीं है प्रत्युत व्यावहारिक अनुभवगम्य वस्तु है । नाट्य-शास्त्र में इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है जिस प्रकार अनेक व्यंजनों, औषधियों और द्रव्यों से युक्त होने पर भोजी भोजन में एक विशेष स्वाद का अनुभव करते हैं । उसी प्रकार रसिक जन अनेक भावों के अनुभव से युक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं । यही नाटकों की रसानुभूति है । नाना भावों से संयुक्त होने पर स्थायी भाव अपने सामान्य नहीं, वरन् विशेष मानसिक आनन्द को प्रदान करते हैं । इस प्रसंग में एक बात ध्यान करने की यह है कि जिस प्रकार अनेक व्यंजनों से युक्त भोजन का पूर्ण आनन्द

---

1. नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते
भरत, नाट्यशास्त्र 5·15
दशरूपतावस्थानम् - दशरूपक 1·7, पृष्ठ 4.

पाने के लिए भूख और स्वाद विशेष आवश्यक है, उसी प्रकार रसानुभूति की पूर्णता के लिए सहृदयता, संवेदनशील संस्कारों और विवेक की आवश्यकता रहती है ।

रस सूत्र में विभाव,अनुभाव और संचारी-भाव का उल्लेख किया गया है । तदनुसार विशेष रूप से जो भावों को प्रकट करते हैं, वे विभाव कहे जाते हैं । विभाव रसानुभूति के कारण हैं । वे दो प्रकार के होते हैं- (1) आलम्बन विभाव, (2) उद्दीपन विभाव । जिसको 'आलम्बन' करके रस की उत्पत्ति होती है, उसको 'आलम्बन विभाव' कहते हैं । उदाहरण के लिए वासवदत्ता को देखकर उदयन के मन में, और उदयन को देखकर वासवदत्ता के मन में रति की उत्पत्ति होती है और उन दोनों को देखकर सामाजिक के भीतर रस की अभिव्यक्ति होती है । इसीलिए वासवदत्ता और उदयन आदि श्रृंगार रस के 'आलम्बन-विभाग' कहे जाते हैं । चाँदनी, उद्यान और एकान्त स्थान इत्यादि के द्वारा उस रति का 'उद्दीपन' होता है, इसलिए इनको श्रृंगाररस का 'उद्दीपन विभाव' कहा जाता है ।[1]

अनुभाव :

अपने-अपने आलम्बन अथवा उद्दीपन कारणों से,वासवदत्ता और उदयन आदि के भीतर उद्बुद्धरति आदि स्थायीभाव को बाह्य रूप में जो प्रकाशित करता है,वह रति आदि कार्य रूप काव्य और नाटक में 'अनुभाव' के नाम से जाना जाता है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि हृदय में स्थित भावों को प्रकट करने वाले अंग विकार और विभिन्न प्रकार

---

1. काव्य-प्रकाश 4-27-28, पृष्ठ 95.

की शारीरिक चेष्टायें इत्यादि 'अनुभाव' हैं ।[1] भरत मुनि के अनुसार जो वाचिक या आंगिक अभिनय के द्वारा रति इत्यादि स्थायी भाव की आन्तरिक अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्य रूप में अनुभव कराता है, उसे 'अनुभाव' कहते हैं ।[2] भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार 'अनुभावों' का विशेष उपयोग अनुभव की दृष्टि से ही होता है, किसी रस की बाह्य अभिव्यक्ति के लिए अलग-अलग अभिनय शैली का अवलम्बन किया जाता है । अलग-अलग रस को प्रकाशित करने वाले स्मित आदि बाह्य व्यापार 'अनुभाव' कहलाते हैं, और यह प्रत्येक रस में अलग-अलग होते हैं और अनुकार्य की दृष्टि से भी वे उसकी रसानुभूति के बाह्य प्रदर्शक होते हैं । भरतमुनि के द्वारा 'अनुभावों' का यह जो विशेष रूप से अभिनय में प्रयोग दिखलाया गया है, उससे प्रतीत होता है कि अनुभाव वस्तुतः आन्तरिक रसानुभूति की बाह्य अभिव्यंजना के साधन हैं और उनमें शारीरिक व्यापार की प्रधानता रहती है । नट कृत्रिम रूप से इन 'अनुभावों' का अभिनय करता है परन्तु अनुकार्य उदयन - वासवदत्ता आदि की हृदय में स्थित रसानुभूति की बाह्य अभिव्यक्ति इन साधनों के द्वारा होती है । अनु पश्चाद् भवन्ति । इति 'अनुभावाः' । अर्थात् ये 'अनुभाव' रसानुभूति के बाद में होते हैं, रसानुभूति के कार्य होते

---

1. उद्बुद्धं कारणैः स्वैर्वहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः ॥
साहित्य दर्पण - 3.132

2. वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते ।
शाखांगोपांग संयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः ॥
नाट्यशास्त्र 7.5.

हैं । इसलिए इन्हें 'अनुभाव' कहा जाता है । दूसरे शब्दों में अनुकार्य उदयन-वासवदत्ता आदि की रसानुभूति का अनुभव या अनुमान सामाजिकों को कराते हैं । इसलिए 'अनुभाव' कहलाते हैं । 'अनुभावों' की कोई निश्चित संख्या नहीं है, परन्तु आठ 'अनुभाव' जो सहज हैं और सात्त्विक विकारों के रूप में आते हैं, सात्त्विक भाव कहे जाते हैं, ये अनायास सहज रूप से प्रकट होते हैं । आठ सात्त्विक 'अनुभावों' निम्नवत् हैं - स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, विवर्णता, कम्प, अश्रु, स्वरभंग और मूर्छा आदि । रति आदि स्थायी भाव को प्रकट करने के लिए रोमांचित होना, मुस्कराना, पास खड़े होकर देखना, स्तम्भवत् जड़ीभूत हो जाना आदि 'अनुभाव' के अन्तर्गत हैं ।

व्यभिचारिभाव :

इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं । उद्‌बुद्ध हुए स्थायी भावों की पुष्टि तथा उपचय में जो उनके सहकारी होते हैं, उनको 'व्यभिचारी-भाव' या 'संचारी भाव' कहते हैं । एक 'व्यभिचारी-भाव' किसी एक स्थायी भाव या रस के साथ ही नहीं रहता है, वरन् अनेक रसों में देखा जा सकता है । यही इसका व्यभिचार है । उदाहरण के लिए शंका वियोगश्रृंगार में होती है, करुण में भी और भयानक में भी होती है । एक संचारी भाव का कोई एक स्थायी भाव या रस से सम्बन्ध नहीं, वे रसों में नानारूप से विचरण करते हैं और रसों को पुष्टकर आस्वाद के योग्य बनाते हैं, इसलिए उन्हें 'व्यभिचारी-भाव' कहते हैं । नाट्य-शास्त्र के अनुसार 'व्यभिचारी भाव की संख्या 33 है । ये निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति और धृति इत्यादि 33 प्रकार के हैं ।[1]

---

1 नाट्यशास्त्र 6'18, 21

स्थायी-भाव :

स्थायी-भाव रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण है । स्थायी-भाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल, आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है । इस 'स्थायीभाव' की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक या रस्यमान होने से रस शब्द से बोध्य होती है ।[1] दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारि भावों के संयोग से व्यक्त होने वाले 'स्थायी भाव को रस कहते हैं । काव्य प्रकाशकार ने नाटक में नवरस माने हैं और उनके नवस्थायी भाव बतलाये हैं जो निम्नवत् हैं - रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद । तदनुसार नाटक में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नव रस माने गये हैं । उक्त नव स्थायी भाव मनुष्य के हृदय में स्थायी रूप से सदा विद्यमान रहते हैं, इसीलिए स्थायीभाव कहलाते हैं । सामान्य रूप से वे अव्यक्त अवस्था में रहते हैं, किन्तु जब जिस स्थायी भाव के अनुकूल विभावादि सामग्री प्राप्त हो जाती है, तब वह व्यक्त हो जाता है और रस्यमान या आस्वाद्य-मान होकर रसरूपता को प्राप्त हो जाती है ।[2]

---

1. व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ।
काव्यप्रकाश 4·28, पृष्ठ 95 प्रकाशक-ज्ञानमण्डल, वाराणसी-1960.

2. काव्य-प्रकाश 1·30 - 35
काव्य-शास्त्र : डॉ0भगीरथ मिश्र, षष्ठ संस्करण 1980, पृष्ठ-106.

स्वप्नवासवदत्तम् में रस :

प्रसिद्ध नाटककार भास के प्रख्यात नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में रस का परिपाक अत्यन्त स्वाभाविक रूप से हुआ है । भरतमुनि के रस सिद्धान्त का उन्होंने अत्यन्त निपुणता के साथ अनुपालन किया है । भारतीय नाटकों की परम्परा रही है कि नाटकों में श्रृंगार अथवा वीर-रस, प्रधान होता है और अन्य रस उनके सहायक होते हैं ।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटकम् में श्रृंगार रस की प्रधानता है । श्रृंगार रस दो प्रकार का होता है । संयोग श्रृंगार और विप्रलम्भ श्रृंगार , स्वप्नवासवदत्तम् नाटकम् का प्रारंभ ही विप्रलम्भ श्रृंगार से होता है । प्रथम अंक से लेकर छठे अंक के प्रारम्भ तक हमें केवल विप्रलम्भ श्रृंगार के दर्शन होते हैं । छठें अंक के अन्त में नायक-नायिका मिलन के पश्चात् संयोग श्रृंगार का प्रसंग उपस्थित होता है किन्तु तब तक नाटक की समाप्ति हो जाती है । पद्मावती का उदयन के साथ विवाह भी वासवदत्ता के विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति का माध्यम है । अतः हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण नाटक में विप्रलम्भ श्रृंगार का सौन्दर्य अनुभव किया जा सकता है ।

नाटककार भास विरचित स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में विप्रलम्भ श्रृंगार की, सम्पूर्ण चारुता के साथ निष्पत्ति हुई है । चतुर्थ अंक का प्रसंग है कि पद्मावती का उदयन से विवाह हो जाता है । वहाँ पर महारानी वासवदत्ता यौगन्धरायण की भगिनी के रूप में रह रही हैं । दोनों में

---

1. एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः श्रृंगार एव वा ।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ॥
दशरूपक 3-33, संस्करण- 1967, पृष्ठ 160.

वीणा सीखने के सम्बन्ध में वार्तालाप होता है ; पद्मावती कहती है कि मैंने भी उनसे वीणा सीखने के लिए निवेदन किया था, किन्तु वे बिना कुछ कहे ही लम्बी सांस लेकर चुप रह गए ।[1] वासवदत्ता उससे पूछती है कि इससे तुम्हारा क्या अनुमान है, तब वह कहती है कि मेरा अनुमान है कि आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करके उदारता के कारण वे मेरे सामने नहीं रुक सके । इस पर वासवदत्ता अपने मन में कहती है कि यदि यह सत्य है तो मैं सचमुच कृतज्ञ हो गई हूं । इसके पश्चात् वहां पर राजा विदूषक के साथ प्रवेश करता है । राजा विदूषक से कहता है कि उस समय उज्जयिनी पर मालव राजकुमारी वासवदत्ता को इच्छानुसार देखकर किसी विचित्र अवस्था को प्राप्त हुए, मुझ पर कामदेव ने अपने पांचों बाण गिरा दिए थे । उनसे अब भी मेरा हृदय पीड़ित है फिरभी पुनः कामदेव ने हमें अपने बाण से वेध दिया है । जब कामदेव के पांच ही बाण है तो पद्मावती का उद्देश्य लेकर यह छठा बाण उसने कहां से फेंका है ।

यथा -

"कामेनोज्जयिनीं गतेमयि तदा कामप्यवस्थांगते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पंचेषवः पातिताः
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पंचेषुर्मदनो यदा कथमयंषष्ठः शरः पातितः ॥[2]

उपर्युक्त पद्य के दो पंक्तियों में वासवदत्ता और उदयन आलम्बन विभाव हैं।

---

1. पद्मावती - अभणित्वा किंचिद् दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।
स्वप्नवासवदत्तम् अंक-चार, पृष्ठ 106

2. स्वप्नवासवदत्तम् 4'1.

वासवदत्ता के सुन्दर रूप का दर्शन उद्दीपन विभाव है । प्रिया के संयोग न होने से उत्पन्न चिन्ता अनुभाव है और रति वियोग श्रृंगार का स्थायी भाव है । वियोग श्रृंगार की यहाँ स्थिति नायक का नायिका के प्रति पूर्व राग है । अन्त की दो पंक्तियों में उदयन की दूसरी पत्नीपद्मावती और उदयन आलम्बन विभाव हैं और प्रियतमा के संयोग न होने से उत्पन्न अनुराग की तीव्रता और तत्सम्बन्धिनी चिन्ता अनुभाव है और सुन्दर बगीचा तथा एकान्त स्थान उद्दीपन विभाव है । यहाँ पर इनसे पुष्ट स्थायी भाव रति विप्रलम्भ श्रृंगार रस के रूप में प्रकट हो रहा है ।

जहाँ पर रति स्थायी-भाव, स्वप्न, चित्र, प्रत्यक्ष और श्रवण आदि से प्रकट होता है, परन्तु प्रिय से संयोग न होने के कारणऔर भी तीव्र होता रहता है अथवा मिलन के बाद फिर वियोग के अवसर पर मान, प्रवास आदि के समय विभिन्न दशाओं में प्रकट होता है, वहाँ पर विप्रलम्भ श्रृंगार होता है । इसकी स्थितियाँ या रूप हैं - पूर्वराग, मान और प्रवास इत्यादि ।

विप्रलम्भ श्रृंगार का दूसरा उदाहरण भी दर्शनीय है । नाटक के छठे अंक का प्रसंग है । वत्सराज उदयन इस समय सूर्यामुख राजमहल में हैं, वहाँ पर वासवदत्ता की वीणा घोषवती का स्वर उन्हें सुनाई देता है । उन्हें घोषवती वीणा दी जाती है, उससे उन्हें महारानी वासवदत्ता का स्मरण हो जाता है । राजा घोषवती वीणा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे कानों को सुख देने वाली स्वरवाली वीणा ! तुम तो महारानी वासवदत्ता के दोनों स्तनों और जाँघों पर सोती थी, फिर पक्षियों के समूह की बीटों से भरे हुए उन्हें वाली होकर भयंकर जंगल में किस प्रकार

रही हो ।[1]

यहाँ पर वासवदत्ता और उदयन आलम्बन विभाव घोषवती, वीणा की प्राप्ति उद्दीपन विभाव, वीणा दर्शन से उत्पन्न शोक और चिन्तन अनुभाव, दीनताव्यभिचारिभाव इनसे पुष्टि स्थायी भाव रति विप्रलम्भ श्रृंगार के रूप में प्रकट हो रहा है ।

महारानी वासवदत्ता के वियोग में उदयन की भाव शबलता का यह चित्र दर्शनीय है -

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान्वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ।।[2]

अर्थात् उदयन का कथन है कि पहले मैं जीता जाने पर भी महाराज प्रद्योत के द्वारा अपने पुत्रों के साथ समान भाव से पाला गया । फिरभी मैं उनकी पुत्री वासवदत्ता को बलपूर्वक अपने साथ भगा ले आया, पर उसको मैं रक्षा नहीं कर सका । उसकी मृत्यु की बात सुनकर भी महासेन प्रद्योत मुझ पर पहले की भाँति ममता और स्नेह रखते हैं । यह निश्चित है कि मैंने जो न्याययुक्त वत्सराज्य को पुनः प्राप्त कर सका हूँ, उसमें राजा प्रद्योत ही कारण हैं । प्रस्तुत पद्य में चार या पाँच प्रकार के भावों का उदय हुआ है,

---

1. राजा - श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगण-रजोविकीर्णदण्डा, प्रतिभयमध्युषितास्यरण्यवासम् ।।
2. स्वप्नवासवदत्तम् 6-1, पृष्ठ 192.
2. स्वप्नवासवदत्तम् 6-8, पृष्ठ 208.

इसलिए यह भाव शबलता का उदाहरण है । जहाँ पर दो से अधिक भावों का योग होता है । वहाँ भाव शबलता मानी जाती है । प्रस्तुत उदाहरण में वितर्क, दीनता, चिन्ता, स्मरण आदि चार प्रकार केव्यभिचारिभावों का योग होने से भावों की शबलता दर्शनीय है ।[1]

वासवदत्ता आश्रित विप्रलम्भश्रृंगार का एक अन्य गद्यात्मक उदाहरण भी दर्शनीय है - नाटक के तृतीय अंक का प्रसंग है । वासवदत्ता कहती है कि विवाह के आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण रनिवास के चौसाले में पद्मावती को छोड़कर मै यहाँ क्रीडोद्यान में चली आयी हूँ । अभी दुर्भाग्य से उपस्थित दु:ख को तब तक कुछ शान्त करती हूं । बड़े दु:ख के साथ कहना पड़ रहा है कि आज आर्यपुत्र भी पराये हो गए हैं । वह आगे कहती है कि नि:सन्देह, चक्रवाक की वधू चक्रबाकी धन्य है जो एक दूसरे से अलग होकर नहीं जीती हैं । मैं तो ऐसी स्थिति में प्राण भी नहीं छोड़ सकती हूँ । आर्य पुत्र को देखूंगी । इसी आशा और अभिलाषा से मैं अभागिनी अभी तक जी रही हूँ ।[2] प्रस्तुत कथन मे वासवदत्ता आश्रित विप्रलम्भ श्रृंगार की पूर्णतया निष्पत्ति हुई । नायिका वासवदत्ता के मन में "आर्यपुत्रोपि परकीय: संवृत्त: " अर्थात् मेरे पतिदेव अब दूसरों के हो गये हैं । इस कथन से विप्रलम्भ श्रृंगार की तीव्रता ध्वनित होती है ।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के पंचम अंक में करुणरसाभास के अंगभूत संयोगश्रृंगार की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है । राजा निद्रा से पीड़ित है

---

1. भावस्य शान्तिरुदय: सन्धि: शबलता तथा ।
   काव्यप्रकाश 4•36, ज्ञान मण्डल प्रकाशन 1960, पृष्ठ 143.
2. वासवदत्ता - आर्यपुत्रं पश्यामीति एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।
   स्वप्नवासवदत्तम् अंकतृतीय प्रथम गद्यांश, पृष्ठ 83.

और विदूषक से पूर्वकथा सुनाने को कहता है कथा सुनाने के प्रसंग में वह उज्जयिनी का नाम लेता है, राजा को तब वासवदत्ता का स्मरण हो आता है और वह कहता है कि उज्जयिनी से चलने के समय अपने परिवार वालों का स्मरण करती हुई और स्नेह के कारण निकले हुए एवं आँखों की कोर में लगे हुए आँसुओं को मेरे वक्ष पर गिराती हुई अवन्ति-राजकुमारी वासवदत्ता की मैं याद कर रहा हूँ ।[1] यथा - इसी नाटक के पंचम अंक में शान्त रस का एक मनोरम उदाहरण है जो निम्नवत् है - पद्मावती शिरोवेदना से व्यथित है, राजा उसके पास जा रहा है और कहता है कि रूपसम्पत्ति तथा गुणों से युक्त प्यारी दूसरी पत्नी पद्मावती को प्राप्त करके पहली चोट से दुःखी हुए भी मेरा शोक अब कुछ कम सा हो गया है, किन्तु भुक्तभोगी होने के कारण मैं पद्मावती को भी उसी तरह अर्थात् वासवदत्ता के समान मर जाने वाली समझ रहा हूँ । यथा -

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥[2]

प्रस्तुत पद्य में निर्वेद स्थायी भाव वासवदत्ता और उदयन आलम्बन विभाव, पूर्वाभिघात उद्दीपन विभाव से परिपुष्ट शान्तरस की अभिव्यक्ति हो रही है ।

इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्तम् के अनेक स्थलों पर विप्रलम्भ शृंगार और करुण रस की मनोरम निष्पत्ति हुई है । विस्तार भय से

---

1. राजा - स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 5.5, पृष्ठ 16.
2. स्वप्नवासवदत्तम् 5.2, पृष्ठ 153.

अन्य उदाहरण अपेक्षित नहीं है ।

कविवर जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास कहा है ।[1] इससे स्पष्ट है कि जयदेव को भास के नाटकों के हास्य प्रशंसनीय लगे थे । भास के नाटकों में हास्य रस के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं । स्वप्नवासवदत्तम् में विदूषक कहता है कि कोकिला के अक्षिपरिवर्तन की भांति उसका पेट उलट-पलट हो गया है ।[2]

भास के अन्य नाटकों में श्रृंगार हास्य रस के अतिरिक्त करूण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, शान्त आदि रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है, इससे स्पष्ट है कि भास एक रससिद्ध कवि और नाटककार हैं, जिनके काव्य में जरा और मृत्यु का भय नहीं है ।[3]

तापसवत्सराजम् में रस :

रस काव्य की आत्मा है । कोई भी काव्य चाहे वह श्रव्य हो या दृश्य, रीति, गुण और अलंकारों के होते हुए भी यदि उसमें रस नहीं है तो वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं है । आचार्य भरत का तो यह कहना है कि रस के बिना कोई भी काव्यप्रवृत्त नहीं हो सकता है - "नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते ।" अनेक काव्य शास्त्रकारों का अभि-

---

1. भासोहासः कविकुलगुरुः कालिदासोविलासः । (जयदेव) प्रसन्नराघवम् 1.22
संस्कृत साहित्य का इतिहास-बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ 500
2. अधन्यस्य मम कोकिलानाम् अक्षिपरिवर्तइव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः ।
स्वप्नवासवदत्तम् अंक-04, पृष्ठ 99
3. धन्यास्ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः ।
येषां नास्ति यशः काये जरा-मरणजंभयम् ॥
उद्भटसागर, पृष्ठ 10.33

मत है कि रस ही काव्य का जीवन है । -"रसएवात्मजीवितम्"भारतीय काव्य-शास्त्र की परम्परा के अनुसार काव्य में श्रृंगार अथवा वीर रस की प्रधानता होती है ।[1] तथा अन्य रस गौण होते हैं किन्तु भवभूति ने इस परम्परा को नहीं माना था । उनकी मान्यता थी कि जीवन में करुण रस की ही प्रधानता है । जैसे पानी में भंवर, बुलबुले, बूँद और लहर आदि में जल का ही रूपान्तरण है, जल के अतिरिक्त इनकी पृथक् सत्ता नहीं है, वैसे ही मानव जीवन का प्रमुख रस करुण रस है जो भिन्न-भिन्न अवसरों पर विभिन्न कारणों से विभिन्न रसों का रूप ग्रहण करता है ।[2]

काव्यशास्त्र के समीक्षकों ने श्रृंगार को भले ही 'रसराज' कहा हो, किन्तु भवभूति के अनुसार करुण रस 'रसराज' ही नहीं बल्कि एकमात्र रस है । इसके लिए उन्हें समालोचकों की खरीखोटी भी सुननी पड़ी और रूढ़िप्रिय जनता का भी बहुत कुछ अनादर सहना पड़ा, किन्तु करुण रस के उन्नेता भवभूति ने कभी धैर्य नहीं छोड़ा और उन्होंने अपने नाटक उत्तर - रामचरितम् में करुण रस को ही प्रधान रस के रूप में चित्रित किया है।[3]

---

1. एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः श्रृंगार एव वा
   अंगमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।
   दशरूपक 3·33, पृष्ठ 167.
2. "एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्-भिन्नःपृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
   आवर्त-बुद्बुदतरंगमयान् विकारान्, अम्भो, यथा सलिलमेव हि तत्समग्रम् ॥"
   उत्तर-रामचरितम् 3·47, महालक्ष्मी प्रकाशन, पृष्ठ 111
3. सारस्वत-संदर्शनम् -
   प्रो०सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, संस्करण-1973, पृष्ठ 127.

यहाँ यह प्रतीत होता है कि तापसवत्सराजम् नाटक के प्रणेता कविवर श्री अनंग हर्ष ने उत्तररामचरितम् नाटक के प्रणेता कविवर भवभूति से प्रेरणा ग्रहण की है और उन्होंने एक बार पुन: करूण रस को प्रमुख रूप से अपने नाटक में चित्रित करने का प्रयास किया है । रस ही नहीं अपितु भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी इसमेंकविवर भवभूति का बहुत प्रभाव प्रतीत होता है । तापसवत्सराजम् नाटक के अनुशीलन से विदित होता है कि रस परिपाक की दृष्टि से करूण-रस के चित्रण के अपने प्रयास में उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है । सम्पूर्ण नाटक में आद्योपान्त करूण को उन्होंने बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया है । प्रथम अंक से लेकर छठे अंक तक करूण रस की धारा प्रवाहमान है । प्रसिद्ध काव्यशास्त्री आचार्य हेमचन्द्र का कथन है कि तापसवत्सराजम् एक ऐसा नाटक है कि जिसमें प्रधान करूण रस की धारा कहीं टूटने नहीं पाई है ।[1]

तापसवत्सराजम् के प्रथम अंक से ही करूण-रस का शुभारम्भ हो जाता है । नायक वत्सराज उदयन कहता है कि नायिका वासवदत्ता के मुखचन्द्र को देखकर सम्पूर्ण दिवस बिताया है । उसके साथ वार्तालाप करते हुए प्रदोषकाल भी बिता दिया है । इसके पहले विनोद और आनन्द से युक्त उसके साथ रहते हुए सुन्दर रात्रियाँ व्यतीत की हैं, पर इतना होने पर भी अब भी रास्ते की ओर आँखे गड़ाये हुए उसको देखने के लिए तत्पर मेरा मन इतना क्यों व्याकुल हो रहा है ? अथवा प्रेम का उत्सव कभी समाप्त नहीं होता है । यथा -

तद्वक्त्रेन्दुविलोकनेन दिवसो नीत: प्रदोषस्तथा
तद्गोष्ठ्यैव निशाऽपि मन्मथकृतोत्साहैस्तदङ्गार्पणै: । (?)

तद्गोष्ठ्येव निशा विनोदसहिता याता: पुरानन्ददा: ।

---

1. काव्यानुशासन : हेमचन्द्र, अध्याय-3.

तां संप्रत्यपि मार्गदत्तनयनां द्रष्टुं प्रवृत्तस्य मे

बद्धोत्कण्ठमिदं मनः किमथवा प्रेमासमाप्तोत्सवः ॥[1]

नाटक का द्वितीय अंक करुण रस की धारा से गीला हो गया है । महारानी वासवदत्ता के दाह का समाचार सुनकर राजा जिस विह्वलता से विलाप करता है, यह बहुत ही मार्मिक है । वासवदत्ता की याद करते हुए वह कहता है कि प्रिय वासवदत्ते ! क्या तुम्हारी दृष्टि अमृत को बरसाने वाली नहीं थी ? क्या तुम्हारा मुख मधुर हास्य रूपी शहद को प्रवाहित करने वाला नहीं था ? क्या तुम्हारा हृदय प्रेम से भीगा हुआ नहीं था ? क्या शरीर के प्रत्येक अवयव चन्दन के स्पर्श के समान ठण्डे नहीं थे ? पता नहीं कि तुम्हारे किस अंग में पैर जमाकर निर्दयी इस अग्नि ने तुम्हें जला दिया है ? निश्चय ही वज्र द्वारा बनी हुई यह कोई दूसरी ही अग्नि है जिसने यह कार्य किया है । यथा -

दृष्टिर्नामृतवर्षिणी स्मितमधुप्रस्यन्दि वक्त्रं न किं

स्नेहार्द्रं हृदयं न चन्दनरसस्पर्शानि चांगानि वा ।

कस्मिंल्लब्धपदेन किं कृतमिदं क्रूरेण दग्धाग्निना

नूनं वज्रमयोऽन्य एवदहनस्तस्येदमाचेष्टितम् ॥[2]

यहाँ पर दग्धा वासवदत्ता आलम्बन विभाव है, उसका विदग्ध शरीर और उसकी स्मृति आदि उद्दीपन विभाव है । विलाप और रुदन आदि अनुभाव है । निर्वेद, जड़ता, चिन्ता और भय संचारि भाव हैं, शोक स्थायी भाव है जो यहाँ करुण रस के रूप में प्रकट हुआ है ।

---

1. तापसवत्सराजम्, 1'14, पृष्ठ 24

2. तापसवत्सराजम्, 2'9, पृष्ठ 43

इसी बीच महारानी वासवदत्ता के द्वारा पुत्र कीतरह पाला हुआ एक मृगशावक राजा के पीछे-पीछे आता है, उसे देखकर राजा का मन करुणा से भर आता है, वह दुःखी होकर कहता है कि वासवदत्ता को ढूंढता हुआ उसके द्वारा पुत्र की तरह पालित यह मृगशावक धारागृह को देखकर दुःखी हो रहा है और वासवदत्ता के लीलागृह को देखकर लम्बी साँस छोड़ रहा है। पुनः अतिशीघ्र केसर और लताओं की क्यारियों की ओर दृष्टि डालता हुआ, जब वहाँ वासवदत्ता को नहीं देखता है तो मेरे पास आ रहा है। राजा उस मृगशावक को समझाते हुए कहता है कि तेरी निष्ठुर माता दूरदेश [स्वर्ग] की यात्रा को जाती हुई, मेरे साथ तुझे भी यहीं छोड़ गई है। यथा -

"धाराकिम्म विलोक्य दीनवदनोभ्रान्त्वा च लीलागृहा -

न्निश्वस्यायतमाशु केसरलतावीथीषु कृत्वा दृशम् ।

किं मे पार्श्वमुपैषि पुत्रककृतैः किं चाटुभिः क्रूरया,

मात्रा त्वं परिवर्जितः सहमया यान्त्यातिदीर्घां भुवम् ॥"[1]

यहाँ पर वासवदत्ता आलम्बन विभाव उसके द्वारा पालित मृगशावक आदि उद्दीपन विभाव, विलाप, रोदन आदि अनुभाव, निर्वेद, विषाद, भय आदि संचारिभाव शोक स्थायीभाव करुण रस रूप में प्रकट हुआ है।

इसी प्रकार वासवदत्ता के द्वारा पालित शुक को देखकर राजा के मन में करुण रस की निष्पत्ति हुई है। राजा कहता है कि हे देवि ! जिस शुक ने कान में लगी हुई लाल रंग की पद्मरागमणि के

---

1. तापसवत्सराजम् 2.11, पृष्ठ 45

टुकड़े को अनार के दाने के भ्रम से बार-बार खींचते हुए तुम्हारे कपोलों पर अपने पंजों से प्रहार किया था। अपनी शृंगार क्रीड़ा के सहायक दुःख से बार-बार चिल्लाते हुए उस शुक को तुम उत्तर क्यों नहीं दे रही हो ?[1] राजा बड़े दुःखके साथ कहता है कि काँपती हुई तथा भय के कारण छूटे हुए वस्त्र के अंचलवाली अपने उन विकल नेत्रों को चारों ओर दौड़ाती हुई तुझे धुँए से युक्त अग्नि ने देखा नहीं; अपितु उस क्रूर अग्नि ने कठोरता के साथ तुम्हें एकदम जला दिया है ।[2]

तीसरे अंक में नायक आँसू भरकर लम्बी-लम्बी साँस लेता है और अपनी प्रियतमा की याद में शोकाकुल हो जाता है । वह दुःखी होकर कहता है कि पूरे घर में चारों ओर आग लगी होने पर अत्यन्त भय के कारण अपने प्राण बचाने के लिए सखियों के भाग जाने पर भय और कंपन से हाथ और पैरों के फूल जाने से पग-पग पर गिरती और पड़ती हुई - हा नाथ ! हा नाथ ! ऐसे बार-बार चिल्लाती हुई वह बेचारी वासवदत्ता तो जल गई,पर आज उस अग्नि के बुझ जाने पर भी हम उस आग से जले ही जा रहे हैं । यथा -

"सर्वत्र ज्वलितेषु वेश्मसु भयादालीजने विद्रुते,
त्रासोत्कम्पविहस्तया प्रतिपदं देव्या पतन्त्या तदा ।
हा नाथेति मुहुः प्रलापपरया दग्धं वराक्यानया
शान्तेनापि वयं तु तेन दहनेनाद्यापि दह्यामहे ।"[3]

---

1. राजा : कर्णान्तस्थितपद्मरागकलिकां भूयः समाकर्षता ।
तापसवत्सराजम् 2·13, पृष्ठ 46.
2. राजा : क्रूरेण दारुणतया सहसैव दग्धा
धूमान्धितेन दहनेन न वीक्षितासि ॥
तापसवत्सराजम् 2·16, पृष्ठ 48
3. तापसवत्सराजम् 3·10, पृष्ठ 89.

यहाँ पर वासवदत्ता आलम्बन विभाव, उसका अग्नि में जल जाना उद्दीपन विभाव, विलाप, रोदन आदि अनुभाव, निर्वेद, विषाद, भय आदि संचारी भाव, शोक स्थायी भाव, करूण रस रूप में प्रकट हुआ है। इसी प्रकार पद्मावती के साथ विवाह के प्रसंग में विदूषक से बात करते हुए राजा अपने मन में बड़ी करूणा के साथ कहता है कि हे देवि जो मेरी आँखे कभी तुम्हारे मुख से हटकर कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं करती थीं, जिसने अपने वक्षस्थल को हमेशा तुम्हारे सोने के लिए शय्यारूप बनाया था, जिसने कभी तुम्हें यह कहा था कि तुम्हारे बिना मेरे लिए यह सम्पूर्ण संसार शून्य हो जाता है, वही मै दूसरा विवाह करने का विचार करूंगा, इस प्रकार की कल्पना कोई कर भी नहीं सकता था। पर तुम्हारे वियोग में संन्यास की दीक्षा का पाखण्ड करने वाला मैं। हे प्रियतमे! दूसरे विवाह के लिए स्वीकृति देकर न जाने क्या अनर्थ करने पर उतर गया हूँ। यथा -

"चक्षुर्यस्य तवाननादपगतं नाभूत्क्वचिन्निर्वृतं
येनैषा सततं त्वदेकशयनं वक्षःस्थली कल्पिता।
येनोक्तासि विना त्वया मम जगच्छून्यं क्षणाज्जायते
सोऽयं दम्भधृतव्रतः प्रियतमे! कर्तुं किमप्युद्यतः।"[1]

यहाँ पर भी वासवदत्ता आलम्बन विभाव, उसके बिना संसार का सूनापन उद्दीपन विभाव, रूदन और विलाप इत्यादि अनुभाव, निर्वेद विषाद, चिन्ता, भय इत्यादि संचारी भाव शोक स्थायी भाव, करूण रस के रूप में अभिव्यक्त होता है।

इसी प्रकार पाँचवे अंक में राजा कहता है कि सिद्ध महात्मा

---

1. तापसवत्सराजम् 4.13, पृष्ठ 127.

के वचनों के अनुसार सब कुछ उसी रूप में घटित हो जाने पर और मेरे अपराधी होने पर, मेरी प्रियतमा वासवदत्ता बड़े प्रयत्न से क्रोध को हृदय में छिपाये हुए मेरे समीप आयेगी । उसके क्रुद्ध होकर मेरे पास आने पर आँखों से बहते हुए आँसुओं का पान करते हुए वह मेरे पास आकर बैठ जावेगी ।[1] इसका तात्पर्य यह है कि एक सिद्ध महात्मा ने कहा था कि वासवदत्ता के समान सुन्दर राजकुमारी के साथ विवाह होने पर पुनः वासवदत्ता की प्राप्ति हो जावेगी । इस पर राजा विचार करता है कि यदि सचमुच दूसरे विवाह के पश्चात् वासवदत्ता मिल जाती है तो वह दूसरे विवाह करने का अपराधी बन जायेगा, जिस पर वासवदत्ता के अत्यधिक रूष्ट हो जाने की संभावना है । राजा इस कल्पना से बहुत दुःखी है; वह कहता है कि ऐसी स्थिति में जब वासवदत्ता मेरे पास आयेगी तो वह अपने सुन्दर ललाट के ऊपर भृकुटी चढ़ा देगी । आँसुओं के प्रवाह से कपोल स्थली की पत्र रचना को प्रवाहित कर देगी और मेरे सामने सखी को देखकर लज्जा से अवनत हो जायेगी । इस प्रकार व्यर्थ के क्रोध से प्रियतमा वासवदत्ता मुझे दुःखी करेगी ।[1]

विदूषक राजा से कहता है कि आज जब मैं सुखपूर्वक सोया हुआ था तो स्वप्न में मैंने देवि वासवदत्ता को देखा था ; आज उसने ही मुझे जगाया है । इस पर आँसू भरकर कहता है कि देवि तुम कहाँ हो ?

---

1. व्यावृत्यैव समागते मयि सखीमालोक्य लज्जानता,
तिष्ठेत्किं कृतकोपचारकरणैरायासयेन्मां प्रिया ॥
तापसवत्सराज 5-3, पृष्ठ 154,

मुझे उत्तर तुम क्यों नहीं देती हो ? वह कहता है कि हे प्रिये ! क्या मैने अपने प्राणों को तुम्हारे अनुगमन करने के लिए तुम्हें प्रोत्साहित नहीं किया है । क्या मैने तुम्हारे लिए जटाओं को धारण नहीं किया है ? और निर्जन वन में प्रत्येक वृक्ष के नीचे नहीं भटकता रहा हूँ ? सिद्ध महात्मा के वचनानुसार तुम्हें पाने के लोभ से मुझ पापी ने क्या दूसरा विवाह नहीं किया है ? तुम किस लिए मुझसे इस प्रकार रूठी हो कि मेरी बात का उत्तर भी नहीं दे रही हो । यथा -

"किं प्राणा न मया तवानुगमनं कर्तुं समुत्साहिता:,
बद्धा: किं न जटा न वा प्रतितरु भ्रान्तं वने निर्जने ।
त्वत्सम्प्राप्तिविलोभितेन पुनरप्यूढ़ं न पापेन किं,
किं कृत्वा कुपिता यदद्य न वचस्त्वं मे ददासि प्रिये ।"[1]

यहाँ पर वासवदत्ता आलम्बन-विभाव, उसका वियोग उद्दीपन विभाव, उसकी प्राप्ति के लिए राजा के द्वारा जटाओं को धारण करना और वन-वन में भटकना अनुभाव । जड़ता, विषाद और निर्वेद इत्यादि संचारि-भाव, शोक स्थायी-भाव करुण-रस में अभिव्यक्त हो रहा है । छठे अंक में भी करुण रस की धारा बराबर प्रवाहित होती दिखाई देती है । प्रयाग में राजा को देखकर यौगन्धरायण कहता है कि महाराज के बाल बिखरे हुए हैं, उनमें से पानी की बूंदें टपक रही हैं और वे आग में प्रवेश करना चाहते हैं । घबड़ाई हुई मगध राजपुत्री पद्मावती उनके पीछे लक्ष्मी सी प्रतीत हो रही है । मेरे इन कार्यों से जिनकी शोचनीय दशा हो गई है, ऐसे महाराज उदयन यहाँ आ रहे हैं । वह आगे कहता है

---

1. तापसवत्सराजम् 5-5, पृष्ठ 159.

कि मै स्वयं ही नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरी नीति अच्छी रही है या खराब ।

प्रयाग में त्रिवेणी के पास शोकाकुल राजा कहता है कि हे देवि ! मन्त्रियों ने मुझे प्रलोभन दियाथा कि वासवदत्ता पुनः प्राप्त हो जावेगी, इस लालच से मै अपने प्राणों को धारण किए रहा हूँ, पर तुम नहीं मिल सकती हो, यह जानकर इस शरीर को छोड़ते हुए तुम्हारे प्रति प्रेम का अभाव नहीं है, शीघ्र ही तुम्हारे पीछे चलने से तुम्हे मिलने का समय मिल जायेगा, यह जानकर धैर्य हो गया है । पर इतना दुःख अवश्य है कि उन भयंकर समय में मेरे हृदय के सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो गए थे ।[1]

विदूषक राजा को समझाता है कि और कहता है कि आप पद्मावती को नहीं देख रहे हैं । आपके कारण इनको क्या दशा हो रही है । इस पर राजा पद्मावती की ओर देखकर बड़े शोक के साथ कहता है कि विश्वासपूर्वक न तो कभी मैने इसी ओर कदम ही बढ़ाये हैं और न ही उसके साथ बातचीत करने के लिए मेरा मन खुला है । बिस्तर पर लेटी हुई प्रेमालाप न करने के कारण रूठ कर पीठ फेरे, धीरे-धीरे आंसू बहाती हुई पद्मावती को कभी मैने मनाया नहीं, शोक विवश मेरे लिए भी इसने ऐसा सातजन्मों तक मरने का कठोर निश्चय किया है, बड़े खेद की बात है कि मैने इस बेचारी राजकुमारी को जलाया ही हैओर कोई सुख नहीं दिया है -

---

1. आसन्मैहसवत्सरस्तथानुगमने वाता धृतिः किंत्वयान्
केदो यच्छलथा गतं न हृदयं तस्यिन्क्षणे दारुणे ।
तापसवत्सराजम् 6-3, पृष्ठ 202.

राजा - [विलोक्य सविशेषकरुणम्] कथमनयापि व्यवसितम्, अहो नु खलु भोः-

"विस्रम्भान्न विसर्पितं न च मनो निर्यन्त्रणं मन्त्रितं,
व्यावृत्तापि विवर्तिता न शयने बाष्पं त्यजन्तीशनैः ।
मामुद्दिश्य तथानया व्यवसितं तत्रोपरूढं शुचा,
कष्टं केवलमेव राजतनया दग्धा वराकी मया ॥"[1]

यहाँ पर भी करुण रस अपनी सम्पूर्ण चारुता के साथ प्रकट हो रहा है ।

उपर्युक्त उदाहरणों से विदित होता है कि कविवर अनंग हर्ष ने अपने इस नाटक में करुण रस का सफल चित्रण करने में सफल हुए हैं । वस्तुतः वे रस-सिद्ध कवि हैं, इस सम्बन्ध में उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह कम ही प्रतीत होती है । करुण रस के चित्रण में उनका कवित्व और काव्य-कौतुक दर्शनीय है; उन्होंने एक ही विषय को अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से नए-नए रूपों में प्रस्तुत करके पुनरुक्ति और पिष्टपेषण से बचाया है । कवि ने इतनी विविधता के साथ एक ही विषयवस्तु को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उसमें पाठक या सहृदय की रुचि बराबर बनी रहती है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कविवर अनंग हर्ष रस-निरूपण में एक सिद्धहस्त कवि हैं ।

यद्यपि नाटक का प्रमुख रस भवभूति विरचित उत्तरराम-चरितम् के समान करुण रस ही प्रतीत होता है ; परन्तु संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार इसे 'करुणविप्रलम्भशृंगार रस' कहना समीचीन होगा क्योंकि अन्त में, इसकी परिणति वासवदत्ता मिलन के कारण संयोग-शृंगार में ही होती है तथा इसके मध्य में भी पद्मावती के साथ उदयन के विवाह

---

1. तापसवत्सराजम् 6.4, पृष्ठ 203.

से दूसरी नायिका की प्राप्ति भी संभोग - श्रृंगार है । यह अवश्य है कि कवि ने संभोग-श्रृंगार की योजना करके भी करुण-रस को आदि से अन्त तक बड़ी निपुणता के साथ चित्रित किया है । इसके अतिरिक्त इस नाटक में विदूषक के वार्तालाप में यत्र-तत्र हास्य परिहास के भाव भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि दोनों ही नाटककारों भास और अनंग-हर्ष ने रस-निष्पत्ति के क्षेत्र में भी अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है ।

00000000000
000000000
0000000
00000
000
0

सप्तम - अध्याय

नाटकों में कलापक्ष एवं भावपक्ष

सप्तम - अध्याय

कलापक्ष एवं भाषा शैली :

दोनों ही नाटकों स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् में भावपक्ष की चारुताकेअतिरिक्त कला-पक्षसौन्दर्य भी अपनी सम्पूर्ण चारुता के साथ विद्यमान है। स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में लघु वाक्यों के द्वारा गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यंजना अपना विशेषमहत्व रखती है। दुरूह तथा दीर्घ विस्तारी समासयुक्त पदों की संरचना भले ही काव्य के लिए कोई उपयोगी बतलाये पर नाटक में लघु-विस्तारी एवं सरल वाक्यों की महत्ता प्रशंसनीय होती है। इस दृष्टि से भास सफलता के शिखर पर आसीन दिखाई देते हैं। इनकी भाषा एवं शैली से स्पष्ट लक्षित होता है कि कविवर भास के समय संस्कृतलोकव्यवहार की भाषा रही होगी। छोटे-छोटे वाक्यों, लोकोक्तियों तथा सूक्तियों को अलंकृत करना भास की शैली का विशेष गुण है। प्रसादगुण-युक्त और सरल भाषा यदि भाव व्यंजना में सफल रहती है, तो यह कवि की महती विशेषता मानी जाती है। भास के नाटकों में हमें यही विशेषता परिलक्षित होती है। भास की प्रवाहपूर्ण और प्रभावोत्पादक सरल भाषा भावों की अभिव्यक्ति में अत्यधिक समर्थ है। दर्शक अथवा पाठक का हृदय बलात् आकर्षित हो जाता है।[1] भास की शैली की विशेषता उनके कथनों में देखी जाती है। कथोपकथन में इनके पात्र नितान्त विदग्ध हैं। कविवर भास अपने वर्णन विषय को बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करते हैं। विषय या किसी दृश्य का वर्णन करते समय उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश को भी वे उपस्थित कर देते हैं। यदि किसी दृश्य का वे वर्णन करने लगते हैं तो इतनी

1. भास-नाटक-चक्रम्, पृष्ठ 128.

स्पष्टता के साथ उसे उपस्थित करते हैं कि पाठक के मन में पूर्ण बिम्ब उपस्थित हो जाता है। उदाहरण के लिए स्वप्नवासवदत्तम् का संध्या - वर्णन अवलोकनीय है। काञ्चुकीय वासवदत्ता से संध्या का वर्णन कर रहा है कि पक्षी अपने घोंसलों में चले गए हैं। मुनि लोग स्नान करने के लिए जल का अवगाहन कर रहे हैं। जलती हुई आग चमक रही है और धूम तपोवन में फैल रहा है। दूर से गिरा हुआ तथा अपनी किरणों को समेट लेने वाला वह सूर्य भी धीरे-धीरे अस्ताचल की चोटी की ओर जा रहा है। यथा -

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो,
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥[1]

भास सरल पद्धति के जनक हैं। शास्त्रीय दृष्टि से इनकी भाषा प्रसादगुण से युक्त है। सुकुमारता, रसपेशलता, भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति, मनोरंजकता, गम्भीरता, उदारता और माधुर्य इनकी शैली के गुण प्रतीत होते हैं। अवस्था तथा पात्रों के अनुसार उग्रता एवं संयम का प्रयोग इनके नाटकों की विशेषता है। हास्य की यथोचित योजना भी इनकी शैली की सफलता का एक कारण है। विदूषक की उक्तियों को सुनकर पाठक बिना हँसे नहीं रह सकता। वाक्य रचना की विशेषता भी भास की निराली है। महामहोपाध्याय-गणपति-शास्त्री ने इनकी इस गुण की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनके अनुसार भास की शैली की तुलना अन्य किसी कवि से नहीं की

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् 1·16, पृष्ठ 66.

जा सकती है ।[1] चरित्र चित्रण में भास ने इतनी सफलता प्राप्त की है कि पात्रों में काल्पनिकता का भान तक नहीं हो पाता है । इनकी भाषा, पहाड़ी नदी के भाँति बिना किसी तड़क-भड़क के स्वाभाविक गति से प्रवाहित होती है । भास भारतीय वृत्ति के महनीय आचार्य हैं । शब्दार्थ-योजना में अभिव्यंजना का आश्रय आवश्यक है । भाव, रस, देशकाल और पात्रों के अनुसार इनकी भाषा में परिवर्तन दिखलाई देता है । भास की शैली में स्वाभाविकता है, आडम्बर नहीं है । सामान्य बुद्धि का पाठक और दर्शक भी इससे परमानंद की अनुभूति कर लेता है । इनकी भाषा शैली में ओज, प्रसाद और माधुर्य का मणिकांचन संयोग है। विद्वानों का कथन है कि ओज और समास की बहुलता संस्कृत गद्य का प्राण है, श्लेषऔर विकटाक्षर बन्ध भी संस्कृत गद्य के लिए आवश्यक है ।[2] पर कविवर भास की मान्यता है कि समास विहीन भाषा भी गद्य की उच्च कक्षा में विराजमान हो सकती है । इनके संस्कृत गद्य में गतिशीलता और प्रवाह है । इनकी शैली रसाभिव्यक्ति और भावव्यंजना को प्रधान मानकर चलने वाली है । विद्वानों का कथन है कि भास की सरल शैली में रामायण का प्रभाव है ।

भास की शैली की प्रशंसा महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने अत्यन्त प्रशस्त शब्दों में की है ; उनके अनुसार इन नाटकों की शैली अद्वितीय

---

1. भासनाटकचक्रम् : बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 130.
2. ओजः समास भूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य जीवितम् ।
   संस्कृत साहित्य का इतिहास:बलदेव उपाध्याय,पृष्ठ 600
   नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषःस्पष्टः स्फुटो रसः ।
   विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥
   हर्ष-चरितम्, बाणभट्ट, पृष्ठ 10.

है । भास की सरल शैली का कारण उस पर काव्यों की शैली का प्रभाव है। वे उद्दाम भावनाओं का बहुत ही प्रशान्त वर्णन करते हैं । वे विपत्तियों का चित्रण बड़ी सफलता के साथ करते हैं । नाटककार भास की दृष्टि नाटकों की अभिनेयता पर सर्वाधिक थी । इसीलिए उनके नाटकों में कृत्रिमता और अस्वाभाविक अलंकार प्रयोगों का अभाव है । यद्यपि काव्य के लिए अलंकार आवश्यक है, परन्तु बालात् अलंकारों का प्रयोग नाटक की अभिनेयता का बाधक होता है । इसीलिए भास के नाटकों में अलंकरण की प्रचुरता नहीं है ।[1]

प्रसाद, ओज और माधुर्य ये तीन गुण भास की शैली में प्राप्त होते हैं । अवस्था तथा समय के अनुसार अपनी शैली में परिवर्तन कर लेते हैं । उनकी शैली में व्यंजकता और प्रभावोत्पादकता है, अपने भावों को व्यंजकता में उन्हें सिद्धि प्राप्त है । कहीं भी विवक्षित भाव दब नहीं सकता है । भास की शैली की यह महती विशेषता है कि सीमित शब्दों और सरल भाषा के द्वारा वे विवक्षित अर्थ का प्रकाशन कर देते हैं ।

भास की शैली का एक गुण मौन भाषण भी है । अल्प शब्दों के द्वारा अधिकाधिक भावों की व्यंजना के अतिरिक्त वे अपने मौन से भी अर्थ बोध कराते हैं । "ये मौन" शब्दों से कहीं अधिक प्रभावशाली हुए हैं एवं रस तथा भावों की प्रतीति में सहायक हुए हैं । इसी कारण समीक्षकों ने उन्हें "मौन के आचार्य" विशेषण से विशेषित किया है ।[2]

काव्यप्रकाशकार मम्मट के अनुसार दोषों से रहित, गुणयुक्त

---

1. भास नाटकचक्रम् : बलदेव उपाध्याय, समीक्षा, पृष्ठ 131.

2. भास नाटकचक्रम् : बलदेव उपाध्याय, समीक्षा, पृष्ठ 132.

और सामान्य रूप से अलंकार सहित परन्तु कहींकहीं अलंकार रहित शब्द और अर्थ दोनों की समष्टि काव्य कहलाती है ।[1] यहाँ पर 'अनलंकृतीपुन: क्वापि' का अभिप्राय यह है कि वैसे तो काव्य में अलंकार होना चाहिए,परन्तु जहाँ कहीं व्यंग्यार्थ या रसादि की स्थिति विद्यमान हो,वहाँ स्पष्ट रूप से अलंकार की सत्ता न होने पर भी काव्यत्व की हानि नहीं होती है लेकिन फिरभी स्वप्नवासवदत्तम् में नाटककार भास ने स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है । नाटक में कहीं भी उन्होंने अलंकारों का बलात् प्रयोग नहीं किया है ।

अलंकार - योजना :

स्वप्नवासवदत्तम् की भाषा प्रसाद गुणयुक्त है । कविवर भास ने अपने नाटक में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो उस समय की प्राय: बोल-चाल की भाषा प्रतीत होती है । भास की कविता अलंकारों के बोझ से दबी हुई नहीं है ; किन्तु फिरभी अपने आप स्वाभाविक रूप से जो अलंकार दिखाई देते हैं,उनमें कृत्रिमता नहीं है ।

भास की कविता में स्वाभाविक अर्थ निबन्धन में उपमा,अनुप्रास, व्यतिकर, स्वभावोक्ति,परिसंख्या और अर्थान्तरन्यास अलंकार अपने आप जहाँ-तहाँ आ गए हैं । वे कवि द्वारा बलात् प्रयुक्त नहीं प्रतीत होते हैं, बल्कि पात्रों के संवाद प्रवाह में घुले-मिले प्रतीत होते हैं । उन्होंने अपने नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में अनेक उपमालंकारों का प्रयोग कियाहै । उनके उपमालंकारों की सुन्दरता को देखकर कविकुलगुरु कालिदास की उपमाओं की चारुता का स्मरण हो आता है ।

---

1. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन:क्वापि ।
काव्यप्रकाश 1·1,ज्ञान मण्डल प्रकाशन, 1960,पृष्ठ 19.

उपमालंकार का एक मनोरम उदाहरण दर्शनीय है ।[1] प्रथम अंक का प्रसंग है - महारानी वासवदत्ता महामन्त्री यौगन्धरायण के साथ मगध के एक तपोवन में प्रवेश करती है, वहाँ पर मगध राजकुमारी पद्मावती पधार रहीं हैं, सेवकगण रास्ते से लोगों को हटा रहे हैं । वासवदत्ता अपने संबंध में हटाये जाने की कल्पना से व्यथित होती है । वह यौगन्धरायण से कहती है कि आर्य ! मुझे तपोवन आने का परिश्रम इतना दुःख नहीं दे रहा है, जितना कि यह अपमान । इसपर यौगन्धरायण उन्हें समझाता है कि आपने इस विषय का उपभोग करके पहले ही छोड़ दिया है,अब आपको इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । क्योंकि पहले आपभी इसी प्रकार श्लाघनीय मनोरथों को प्राप्त करती रही हैं अर्थात् इसी प्रकार राजकीय ठाठ-बाट से चला करती थीं और पुनः पतिदेव के विजयी होने पर इसी प्रकार चला करेंगी, क्योंकि लोगों का भाग्यचक्र पहिये के आरों की भाँति समयानुसार ऊपर-नीचे घूमता रहता है अर्थात् जिस प्रकार रथ के पहिये के आरे कभी नीचे हो जाते हैं और कभी ऊपर, उसी प्रकार मनुष्य का भाग्य भी कभी सुख देता है,कभी दुःख देता है ।[2] यहाँ पर पूर्णोपमा अलंकार है । इसका विश्लेषण निम्नवत् है-

1- उपमान - चक्रारपंक्तिः

2- उपमेय - भाग्यपंक्तिः

3- वाचकशब्द- इव

4- साधारण धर्म- परिवर्तमाना ।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् 1·4.
2. यौगन्धरायणः पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासीच्छ्लाघ्यं गमिष्यसिपुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 1·4, पृष्ठ 12.

ऐसा प्रतीत होता है कि कविकुल गुरु कालिदास ने इस श्लोक से प्रभावित होकर अपने प्रसिद्ध खण्डकाव्य 'मेघदूतम्' में इसका छाया भाव ही उल्लेखित किया है जिसके अनुसार यक्ष मेघ से अपनी प्रियतमा के लिए सन्देश भेजता है कि जिस प्रकार मै अपने आप धीरज रख रहा हूँ तो हे कल्याणि ! तुम भी ज्यादा दुखी न होना । क्योंकि सदा के लिए कभी कोई सुखी नहीं होता है और न ही कोई सदा के लिए दुःखी होता है । चक्र की नेमि के समान सुख:- दु:ख की दशा ऊपर-नीचे होती रहती है ।[1]

काव्यलिंग अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण भी दर्शनीयहै । जहाँ पर वाक्यार्थ का हेतु प्रदर्शित किया जाता है, वहाँ पर काव्यलिंग अलंकार होता है ।[2] यथा -

पद्मावती नरपतेर्महषी भवित्री,
दृष्टा विपत्तिरथ यै: प्रथमं प्रदिष्टा ।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या -
न्युत्क्रम्य गच्छति विधि: सुपरीक्षितानि ॥

स्वप्नवासवदत्तम् ।·।।

प्रस्तुत पद्य में कहा गया है जिन सिद्धों ने पहले आने वाली विपत्ति को बतलाया था, उन्होंने ही यह बतलाया है कि पद्मावती राजा उदयन की पत्नी होगी, उनकी भविष्य वाणी में विश्वास कर यहाँ वासवदत्ता को सौंपा जा रहा है, क्योंकि भाग्य अच्छी तरह परखे हुए सिद्धों के वचनों का उल्लंघन

---

1. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दु:खमेकान्ततो वा ।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥
मेघदूत उत्तरार्द्ध, श्लोक संख्या
2. हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते
साहित्य-दर्पण, पृष्ठ 225

करके नहीं चलता है । यहाँ पर वाक्यार्थ का हेतु बतलाया गया है । इसलिए काव्यलिंग अलंकार है ।

प्रथम अंक में भी तपोवन के वर्णन में भास के स्वभावोक्ति अलंकार की मंजुलता देखने को मिल जाती है । यथा -

"खगा वासोपेता: सलिलमवगाढ़ो मुनिजन:
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरतिधूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥"[1]

यहाँ पर संध्याकाल का स्वाभाविक वर्णन किया गया है, इसलिए यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है अथवा अनेक हेतुओं से संध्याकाल का अनुमान किया गया है, इसलिए अनुमान अलंकार भी है ।

परिसंख्या अलंकार के साथ-साथ अर्थान्तरन्यास अलंकार का मंजुलनिदर्शन कविवर भास की समर्थ-वाणी का प्रमाण है । कंचुकीय राजा को समझाते हुए कहता है कि मृत्यु के समय कौन-किसकी रक्षा कर सकता है ? रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को गिरने से रोक सकता है ? इसी प्रकार वृक्षों के समान स्वभाव वाले मनुष्य समय-समय पर मर जाते हैं और फिर उत्पन्न हो जाते हैं । अर्थात् वृक्ष समय आने पर कट जाते हैं और फिर समय आने पर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते रहते हैं । यथा -

क: कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले-काले छिद्यते रुह्यते च ॥"[2]

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् 1·16.
2. स्वप्नवासवदत्तम् 6·10.

यहाँ पूर्वार्द्ध में परिसंख्यालंकार है और उत्तरार्द्ध में सामान्य बात का समर्थन किया गया है, इसलिए अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

नाटक में वृत्यनुप्रास का एक सुन्दर उदाहरण भी दर्शनीय है । यथा-

मधुमदकला मधुकरा मदनार्त्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥[1]

उपमान से उपमेय की अधिकता जहाँ बतलाई जाती है, उसे 'व्यतिरेक' अलंकार कहते हैं । निम्न पद्य में वासवदत्ता को पद्मावती से अधिक सुन्दर सिद्ध करने के लिए उसके मनोहरण रूप विशेष गुण की चर्चा अत्यन्त सरल शब्दों में की गई है । यथा -

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशील माधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में अलंकार निसर्गरूप से अपने आप कथनोपकथन से आ गए हैं । कवि ने इनका बलात् प्रयोग नहीं किया है । यही इनकी शैली की विशेषता है । विस्तारभय के कारण नाटक से अन्य उदाहरण अलंकारों को प्रदर्शित करने के लिए अपेक्षित नहीं है ।

तापसवत्सराजम् : कलापक्ष एवं भाषा-शैली :

तापसवत्सराजम् नाटक में काव्यशास्त्र के विविध रूप और पक्ष स्फुटित हुए हैं, इसीलिए ध्वन्यालोक के प्रणेता प्रख्यात विद्वान आचार्य आनन्द-

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् 4*3
2. स्वप्नवासवदत्तम् 4*5, पृष्ठ 40.

वर्धन से लेकर हेमचन्द्र तक प्राय: सभी आचार्यों ने इस नाटक के अनेक पद्यों और सन्दर्भों का प्रयोग किया है । आचार्य आनन्दवर्धन ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि को स्पष्ट करने के लिए इसके पद्य का उदाहरण दिया है जो निम्नवत् है-

"उत्कम्पिनी भयपरिस्खलितांशुकान्ता
ते लोचने प्रतिदिशं विधुरे क्षिपन्ती ।
क्रूरेण दारुणतया सहसैवदग्धा,
धूमान्धितेन दहनेन न वीक्षितासि ॥"[1]

प्रस्तुत पद्य में आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है कि यहाँ पर 'तेलोचने' में 'ते' पद के द्वारा नायिका के उन नेत्रों की ओर व्यंजना होती है जो कि स्निग्धता, सुन्दरता और भ्रूविक्षेप के कारण अपने अतिशय रतिभाव को जागृत करने वाले थे और आज अग्नि के द्वारा उनके नष्ट किए जाने के कारण ही प्रगाढ़ करुणा को उत्पन्न कर रहे हैं । इससे यहाँ पर करुण रस के परिपोष में असाधारण सफलता मिल रही है । अत: ध्वनिकार का कथन है कि यहाँ पर ध्वनितत्व की अभिव्यक्ति होने के कारण यह उत्तम काव्य है ।[2]

प्रस्तुत पद्य के सम्बन्ध में आचार्य मम्मट का कथन है कि इस श्लोक में 'ते लोचने' में जो 'ते' शब्द का प्रयोग किया गया है,उन नेत्रों के व्यापार और सौन्दर्य की उदयन द्वारा की गई पूर्वानुभूति का सूचक है; इसलिए यहाँ भी 'तद्' शब्द के साथ 'यद्' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यद्यपि 'तत' और 'यद्' शब्द का नित्य सम्बन्ध माना जाता है । इस सामान्य

---

1. तापसवत्सराजम् 2.16
2. ध्वन्यालोक उद्योत 3, पृष्ठ 40.

नियम के बाद उसके अपवाद रूप में पहला नियम यह होता है कि प्रकान्त, प्रसिद्ध अनुभूतार्थक, 'तद्' शब्द के साथ 'यत्' शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है ।[1] यहाँ पर कवि का आशय यह है कि धुएँ से आँखें बन्द हो जाने पर अग्नि ने वासवदत्ता को जलाया है, यदि ऐसा न होता तो अग्नि चाहे कितना भी क्रूर होता, उसके मुख और नेत्रों की सुन्दरता को देखकर कभी भी जलाने का दुस्साहस न करता ।

वक्रोक्ति जीवितकार आचार्य कुन्तक ने तापसवत्सराजम् में वक्रोक्ति के विविध रूपों को खोजा है । उनके अनुसार इस नाटक का कोई ऐसा अंक नहीं है जिसमें सुन्दर वक्रोक्तियाँ न हों । वचनवक्रता, प्रकरणवक्रता आदि नाटक की सुन्दरता का वर्धन करते हैं ।[2] इस प्रकार तापसवत्सराजम् का भाव पक्ष जहाँ एक ओर अत्यन्त सुन्दर है, वहीं दूसरी ओर भाषा, भाव और अलंकारों की दृष्टि से कलापक्ष भी चारुतर है ।

तापसवत्सराजम् नाटक में असंगति अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण दर्शनीय है । जहाँ पर कार्यकारण भूत दो धर्मों की भिन्न देशतया और युगपत् एक साथ प्रतीति है, वहाँ असंगति अलंकार होता है । लोक में जिस स्थान पर कारण होता है, उसी स्थान पर कार्य की उत्पत्ति देखी जाती है । जैसे धूमादि कार्य वहीं उत्पन्न होता है, जहाँ पर उसका कारण अग्नि आदि रहता है । परन्तु जहाँ कार्यकारण भूत दो धर्मों की किसी विशेषता के कारण भिन्न देश में अथवा एक साथ प्रतीत होती है, उन दोनों की स्वाभाविकजन्य परस्पर संगति त्याग देने से असंगति अलंकार होता है ।[3]

---

1. काव्यप्रकाश : सप्तम उल्लास, ज्ञान मण्डल प्रकाशन 1960, पृष्ठ-289.
2. वक्रोक्ति जीवितम्. पृष्ठ 25.
3. भिन्नदेशतयात्यन्तं कार्यकारणभूतयोः ।
   युगपद्धर्मयोर्यत्र ख्यातिः सा स्यादसंगतिः ॥ काव्यप्रकाश 10·124, पृ०-533.

असंगतिअलंकार के उदाहरण के लिए तापसवत्सराजम् का निम्न पद्य अवलोकनीय है -

"प्राय: पथ्यपराङ्मुखा विषयिणो भूपा भवन्त्यात्मना,

निर्दोषान् सचिवान्भजत्यतिमहांल्लोकापवादज्वर: ।

वन्द्या: श्लाघ्यगुणास्त एव विपिने सन्तोषभाज: परं,

बाह्योऽयं वरमेव सेवकजनो धिक्सर्वथा मन्त्रिण: ॥"[1]

यहाँ पर 'पथ्यपराङ्मुखता' और 'उपालम्भज्वर' रूपी कार्यकारण के भिन्न-भिन्न देश में होने के कारण असंगति अलंकार है ।

इसी प्रकार विरोध अलंकार का उदाहरण भी दर्शनीय है । जहाँ पर वास्तव में विरोध नहीं होता है, फिरभी विरोध को प्रतीति कराने वाले धर्म का विरुद्ध रूप से वर्णन करना विरोध या विरोधालंकार कहलाता है ।[2] उदाहरण के लिए -

"सर्वत्र ज्वलितेषु वेश्मसु भयादालीजने विद्रुते

श्वासोत्कम्पविहस्तया प्रतिपदं देव्या पतन्त्या तदा ।

हा नाथेति मुहु: प्रलापपरया दग्धं वराक्या तया

शान्तेनापि वयं तु तेन दहनेनाद्यापि दह्यामहे ॥"[3]

यहाँ पर राजा का यह कथन कि अग्नि के शान्त हो जाने पर भी हम उसमें जले जा रहे हैं, विरोधाभास को व्यक्त कर रहा है ।

---

1. तापसवत्सराजम् 1·5, पृष्ठ 12
2. विरोध:सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वच: ।
   काव्यप्रकाश 10·165, पृष्ठ 501
3. तापसवत्सराजम् 3·10, पृष्ठ 89.

इसी प्रकार इसी नाटक में उत्प्रेक्षा अलंकार की सुन्दरता भी दर्शनीय है ।

"दृष्टिर्नामृतवर्षिणी स्मितमधुप्रस्यन्दि वक्त्रं न किं,

स्नेहार्द्रं हृदयं न चन्दनरसस्पर्शानि चांगानि वा ।

कस्मिंल्लब्धपदेन किं कृतमिदं क्रूरेण दग्धाग्निना,

नूनं वज्रमयोऽन्य एव दहनस्तस्येदमाचेष्टितम् ॥"[1]

यहाँ पर वज्र द्वारा बनी हुई कोई दूसरी ही आग होगी, जिसने यह कार्य किया है । यहाँ पर उपमेय में वज्ररूप अग्नि की सम्भावना की गई है, इसलिए उत्प्रेक्षालंकार है ।

'तनु-छाया' और 'प्रिया' के बीच एक मनोरम साम्य को दिखाने वाली उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की छटा निम्न पद्य में दर्शनीय है –

आदौ मानपरिग्रहेण गुरुणा दूरं समारोपितां

पश्चात्तापभरेण तानवकृतां नीतां परं लाघवम् ।

उत्संगान्तरवर्तिनीमनुगमात्सम्पिण्डितांगीमिमां,

सर्वांगप्रणयां प्रियामिव तनुच्छायां समालम्बते ॥"[2]

इसी प्रकार एक जीवन्त उपमा का उदाहरण भी दर्शनीय है –

करतलकलिताक्षमालयोः समुदितसाध्वसबद्धकम्पयोः

कृतरुचिरजटानिवेशयोरपर इवेश्वरयोः समागमः ॥[3]

प्रस्तुत श्लोक में कंचुकीय कहता है कि हाथों में जपमाला लिए हुए, भय या सात्त्विक भाव के उत्पन्न हो जाने हो जाने से, कार्य करने में असमर्थ हाथवाले

---

1. तापसवत्सराजम् 2-9, पृष्ठ 43.
2. तापसवत्सराजम् 3-17, पृष्ठ 109
3. तापसवत्सराजम् 4-20, पृष्ठ 142.

और जटाओं की सुन्दर रचना किए हुए अर्थात् जटा बांधे हुए दोनों [उदयन पद्मावती] का दूसरे शिव-पार्वती के समान समागम हुआ है । यहां पर शिव और पार्वती उपमान हैं, उदयन और पद्मावती उपमेय हैं, प्रीतिपूर्वक जटाबन्धन समान धर्म है, और "इव" वाचक शब्द है, इसलिए यहां पूर्णोपमालंकार है ।

तापसवत्सराजम् में निम्नांकित पद्य में नायिका के अनुपम अनिन्द्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने के लिए कविवर अनंगहर्ष ने "शरत" के रूपक की जो सुन्दर योजना बनाई है, वह प्रशंसनीय है । राजा वासवदत्ता से कहता है कि तुम्हारी दोनों आंखें खिले हुए कमल के वन तथा हाथ कमलों से भरे हुए तालाब हैं । सौन्दर्य उपवन है, मुख चन्द्रमा है और दांतों की पंक्ति चमेली के फूल हैं । राजा आगे कहता है कि तुम्हारे प्रत्येक अंग में इस समय शरदकाल की एक नवीन शोभा दिखाई दे रही है । इसलिए इस समय शरद् के चिन्हों से सजावट के लिए तुम्हें परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं है -"फुल्लेन्दीवरकाननानि नयने पाणी सरोजाकराः,

"सौन्दर्योपवनी शशांकवदना जाती प्रसूनीरदाः ।
प्रत्यंगेषु नवेव सम्प्रति शरल्लक्ष्मीरियं दृश्यते ।
तन्मन्ये रचना प्रसाधनविधौ व्यर्थो वृथादरः ॥"[1]

जहां पर उपमान और उपमेय का अभेद वर्णन होता है, उसे रूपक अलंकार कहते हैं ।[2] प्रस्तुत पद्य में वासवदत्ता की आंखें और कमल तथा हाथों और

---

1. तापसवत्सराजम् 1•16, पृष्ठ 26
2. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः ।
   काव्य-प्रकाश 1•138, पृष्ठ 463.

और कमलों से भरे हुए तालाब में, सौन्दर्य और उपवन में, मुख और चन्द्रमा में, दन्त पंक्ति और चमेली के पुष्पों में, अभेद सम्बन्ध है । इसलिए यहाँ पर रूपक अलंकार है ।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षालंकार का सुन्दर उदाहरण भी दर्शनीय है। राजा उदयन वासवदत्ता को देखकर कहता है कि आँसुओं के जल से महारानी के नेत्रों का अंजन धुल गया है, अधर पल्लव श्वासों से सूख गया है । इनके शरीर ने क्षीणता भी धारण कर ली है । ऐसा प्रतीत होता है कि मानो महारानी वासवदत्ता क्रुद्ध दिखाई देती हैं । यथा -

"मुषितमश्रुजलैर्नयनाञ्जनं श्वसित-धूसरितोऽधरपल्लवः ।
तनुरियं तनुतामवलम्भिता किमिव मन्युमना इव लक्ष्यते ॥"[1]

प्रस्तुत पद्य में वासवदत्ता में क्रोध की सम्भावना की गई है, इसलिए यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है ।

कविवर अनंगहर्षमातृराज ने अपने प्रख्यात नाटक तापसवत्सराजम् में अत्यन्त चारुता के साथ अलंकारों की योजना प्रस्तुत की है, अलंकार सरल और स्वाभाविक है, तथा रसानुगामी है । करुण रस के परिवेश में कवि के लिए अलंकारों की क्लिष्ट-कल्पना का अवसर नहीं था। इसलिए उसने प्राय: स्वाभावोक्ति अलंकार का ही आश्रय लिया है और सादृश्य-मूलक अलंकारों की योजना प्रस्तुत की है ।

प्रस्तुत नाटक का कलापक्ष और भावपक्ष इतना रमणीय है, अनेक पद्य और प्रसंग इतने सुन्दर हैं कि वे अपने काव्य सौन्दर्य के कारण आसानी सहृदयों के हृदयों को अपनी और आकर्षित करते हैं । प्रयाग के

1. तापसवत्सराजम् 1-17, पृष्ठ 26

सुन्दर वर्णन में कवि का काव्य-कौतुक दर्शनीय है । राजा रूमण्वान् और विदूषक से कहता है कि जहाँ गंगा-यमुना के साथ मित्रता को प्राप्त हुई है, जहाँ पर मुनि लोग अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करते हैं । पापी-जन भी जहाँ पर परमपवित्र हो जाते हैं । तुम दोनों यहाँ से अभीष्ट फल देने वाले उसी प्रयाग राज में मुझे ले चलो ।

"सख्यं गता यमुनया सह यत्र गंगा,

यात्राप्नुवन्ति मुनयः स्वरामीप्सितानि ।

पापीयसी भवति यत्र परा विशुद्धि

स्तं मामितो नयतमिष्टफलं प्रयागम् ॥"[1]

वासवदत्ता को लक्ष्य करके किया गया उदयन का समस्त विलाप अत्यन्त मार्मिक और रस से परिपूर्ण है । राजा का निम्नांकित कथन कि हे देवि ! जो मेरी आँखें कभी तुम्हारे मुख पर से हटकर कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं करतीं थी, जिसने अपने वक्ष को सदैव तुम्हारे सीने के लिए शैय्या के रूप में प्रस्तुत किया था, जिसने कभी तुम्हें यह कहा था कि तुम्हारे बिना मेरे लिए यह संसार सूना हो जाता है । वही मैं दूसरा विवाह करने का विचार करूंगा, इस प्रकार की कल्पना कोई कर भी नहीं सकता था । पर तुम्हारे वियोग में सन्यास की दीक्षा का पाखण्ड करने वाला मैं, हे प्रियतमे ! दूसरे विवाह के लिए स्वीकृति देकर न जाने क्या अनर्थ करने पर उतर गया हूँ ।[2] प्रस्तुत पद्य में करूण रस की पुष्टि के लिए कवि ने उद्दीपन विभावों की बड़ी सफलयोजना प्रस्तुत की है । नायक अपनी पूर्व की बातों का स्मरण

---

1. तापसवत्सराजम्, 2·22, पृष्ठ 56.
2. सोऽयंदम्भधृतव्रतः प्रियतमे कर्तुं किमप्युद्यतः
   तापसवत्सराजम् 4·13, पृष्ठ 128.

अलंकार भी अवलोकनीय है ।

नाटक के चतुर्थ अंक में जब राजकुमार पद्मावती उदयन के वियोग में लतापाश से आत्महत्या करना चाहती है तो उस समय विदूषक की सूचना पर राजा घबड़ाहट के साथ वहाँ तत्काल पहुँच जाता है । राजकुमारी पद्मावती के प्रति उस समय राजा की निम्नांकित उक्ति में कितना स्नेह, सौजन्य और माधुर्य प्रस्फुटित हो रहा है, वह अवलोकनीय है । राजा कहता है कि हे प्रियतमे ! इस लता पाश के बन्धन को छोड़ दो, मेरा यह एक प्रणय-पूर्वक अनुरोध स्वीकार कर लो । आर्ये असहिष्णु ! यह तुम क्या कर रही हो ? तुम जिससे प्रेम करती हो वह मै तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ ।

राजा - विसृज पाशमिमं कुरुष्व प्रिये

प्रणयमेकमिमं प्रतिमानय 2

असहने, किमिदं क्रियते त्वया,

प्रणयवानयमस्मि तवागत: ॥"[1]

इसी प्रकार दूसरे अंक में विनीतभद्र के द्वारा की गयी अग्नि की ज्वाला का चित्रण भी काव्यत्व की दृष्टि से जीवन्त और प्रभावोत्पादक है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अग्नि की लपलपाती हुई ज्वालाएँ हमारे सामने ही लावणक को भस्मसात् कर रही हैं ।[2]

तापसवत्सराजम् के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि कविवर अनंग हर्ष मातृराज का यह नाटक कविकुलगुरु कालिदास और करुण रस के प्रसिद्ध कवि भवभूति से अत्यधिक प्रभावित है । इसमें कविकुलगुरु कालिदास

---

1. तापसवत्सराजम् 4·17, पृष्ठ 130.
2. तापसवत्सराजम् 2·4,5,6 पृष्ठ 39-40.

के काव्यों के समान कहीं-कहीं कोमलकान्त पदावली के दर्शन होते हैं । करुण-रस के चित्रण में सहसा उत्तरराम चरितम् के प्रणेता कविवर भवभूति का स्मरण हो आता है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाटक काव्यत्व की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्तम् से कहीं आगे है ।

तापसवत्सराजम् नाटक की भाषा अत्यन्त सन्तुलित प्रसंगानुकूल और काव्यात्मक है । इस नाटक का अंगीरस करुण है तथा अंग शृंगार रस है। इसलिए कविवर अनंग हर्ष ने प्रायः सर्वत्र, सरल, मधुर और कोमलकान्त पदावली वाली भाषा का प्रयोग किया है । भाषा में स्वाभाविक प्रवाह है तथा पद-योजना प्रसंगानुकूल है । कोमलकान्त पदावली के लिए निम्नांकित पद्य अवलोकनीय है-

"मुषितमधुजलैर्नयनाञ्जनं स्खलित धूसरितोऽधरपल्लवः
तनुरियं तनुताभिवलम्भिता किमिव मन्युमना इव लक्ष्यते ।"[1]

अथवा प्रसाद गुण और माधुर्य के लिए निम्न पद्य का सौन्दर्य अवलोकनीय है -

"किं कर्णे नवकेतकीदलरुचा शोभा न सम्पादिता,
प्रत्यग्रं न मृणालनालवलयं पाणौ समारोपितम् ।
मत्ताब्जदलाञ्छिता स्तु मनसो नोत्त्लिता: किं यथा
प्रेयान्मे ललित: प्रसाधनविधिर्देव्या न सम्पादित: ।।[2]

किन्तु इसके विपरीत जहाँ अग्नि की प्रलयंकारी ज्वालाओं और ग्रीष्म के चित्रण का प्रसंग आता है। वहाँ कवि की भाषा भी वैसा ही प्रचंड और

---

1. तापसवत्सराजम् 1·17, पृष्ठ 026.
2. तापसवत्सराजम् 1·15, पृष्ठ 25.

और तीव्र रूप धारण कर लेती है ।

तीसरे अंक में पद्मावती और सांकृत्यायनी बैठी हुई है, वासवदत्ता सांकृत्यायनी को प्रणाम करती है और वह उसे आशीर्वाद देती है कि तुम सदा सौभाग्यशालिनी हो । कार्य सफल होने पर तुम शीघ्र ही अपने पति के संयोग को प्राप्त हो ।[1] यह कितनी गूढ़ और अर्थपूर्ण वाणी है । वे दोनों ही इसके विशेष अर्थ को समझ रही हैं, किन्तु पद्मावती इसे सामान्य अर्थ में ही ग्रहण कर रही है ।

शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त तापसवत्सराजम् के इस संस्करण में कुछ अपाणनीय प्रयोग यथा "गमिष्ये" 'भविष्ये' इत्यादि भी प्राप्त होते हैं जिससे प्रतीत होता है कि भाषा की ये व्याकरणात्मक त्रुटियाँ कवि अनंग सन्ज-हर्ष की नहीं है, किसी उत्तरवर्ती लेखक ने पाण्डुलिपि तैयार करते समय असावधानी अथवा अज्ञानवश ऐसी त्रुटियाँ कर दी हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तापसवत्सराजम् भाषा और भाव की दृष्टि से गुण और अलंकार की दृष्टि से एक उत्तमकाव्यजातीय नाटक है। दोनों ही नाटक स्वप्नवासवदत्तम् और तापसवत्सराजम् कलापक्ष एवं भावपक्ष के सौन्दर्य से समलंकृत हैं ।

0000000
00000
000
0

---

1. सांकृत्यायनी - चिरमविधवा भवतु, कृतार्थेन भर्त्रा सह संघटताम् ।
तापसवत्सराजम् अंक-तृतीय, पृष्ठ 84

अ ष्ट म - अ ध्या य

प्रेक्षागृह एवं रंगमंच

अ ष्ट म - अ ध्या य

प्रेक्षागृह एवं रंगमंच

प्रेक्षागृह और रंगमंच सम्बन्धी विस्तीर्णविधि और विशदवर्णन आचार्य भरतमुनि विरचित नाट्य-शास्त्र में उपलब्ध होते हैं । भरतमुनि के मतानुसार नाट्य एक वेद है और प्रेक्षागृह की स्थापना एक यज्ञ है, इसी दृष्टि से नाट्यशास्त्र में रंग-यजन का विवरणप्राप्त होता है । अत्यन्त प्राचीनकाल में नाटक का अभिनय आकाश के नीचे बाहर मैदान में हुआ करता था, परन्तु नाना प्रकार के विघ्नों के उठ खड़े होने पर कालान्तर में रंगमंच का अविर्भाव हुआ था । नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रेक्षागृह तीन प्रकार के होते थे - {1} विकृष्ट, {2} चतुरस्र, {3} त्र्यस्र । इनमें विकृष्ट नामक प्रेक्षागृह विस्तृत होता था, जिसमें देवताओं से सम्बद्ध दृश्य दिखलाये जाते थे । इस प्रेक्षागृह की लम्बाई 108 हाथ होती थी । चतुरस्र प्रेक्षागृह चौकोर होता था, इसकी लम्बाई 64 हाथ होती थी । यह परिमाण में मध्यम आकार का होता था । विशेष रूप से यह प्रेक्षागृह राजाओं के लिए निश्चित किया गया था। त्र्यस्र ' नामक प्रेक्षागृह परिमाण में सबसे छोटा होता था, जिसकी लम्बाई 32 हाथ होती थी । यह प्रेक्षागृह सामान्य प्रकृति के लिए विहित था । भरत-मुनि के अनुसार प्रेक्षागृह का अधिक विस्तार नहीं होना चाहिए ।[1] क्योंकि प्रेक्षागृह के अधिक विस्तृत होने पर उच्चारित शब्द स्पष्ट रूप से दर्शकों के कान तक पहुंच नहीं सकते । नाटक का प्रधान गुण इसकी 'श्रव्यता' है और यह मध्यम परिमाण वाले प्रेक्षागृहों में ही सम्भव हो सकती है इसलिए इन

---

1. नाट्यशास्त्र, अध्याय 2·19.

प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रकार के प्रेक्षागृह को उत्तम माना गया है जिससे वाद्य, गीत और संवाद सहज रूप से सुने जा सकते हैं ।[1]

प्रेक्षागृह के निर्माण का विधान नाट्शास्त्र के अनुसार निम्नवत् है । भरतमुनि के अनुसार सर्वप्रथम कुशल-व्यक्तियों के द्वारा भूमिशोधन करना चाहिए । समान, स्थिर और कठिन तथा काली और गौरवर्ण की भूमि पर नाट्यमण्डप का निर्माण करना चाहिए । उत्तम समय और शुभ नक्षत्रों में भूमि को नापना चाहिए । 64 हाथ के भूखण्ड पर आधे हिस्से में नेपथ्य गृह और रंगशीर्ष की रचना करनी चाहिए । उसके भीतर से अनिष्ट, पाखण्डी, तपस्वी, गेरूवे वस्त्रधारी-सन्यासी और पागल व्यक्तियों को अलग कर देना चाहिए ।

रात्रि में दसों दिशाओं का पुष्पादि से अर्चन और वन्दन करना चाहिए । भित्ति निर्माण और स्तम्भ-रचना शुभ-मुहूर्त में करना चाहिए । नाट्यशास्त्र के निर्देशानुसार रंगपीठ और रंगशीर्ष की विधिपूर्वक रचना करनी चाहिए । काली मिट्टी के बने नेपथ्यगृह में दो द्वार होना चाहिए । रंगशीर्ष को न तो मध्य में ऊँचा और न मध्य में नीचा होना चाहिए । दर्पण के समान समतल रंगशीर्ष को उत्तम माना जाता है । भरत-मुनि का कथन है कि रंगशीर्ष को रत्नजटित होना चाहिए । तदनुसार पूर्व की ओर हीरा, दक्षिण की ओर नीलम, पश्चिम में स्फटिक और उत्तर में प्रवाल रत्न होना चाहिए और मध्य में सुवर्ण जटित होना चाहिए । इसके पश्चात् काष्ठ का काम होना चाहिए । जिसमें अनेक प्रकार की कारीगरी,

---

1. मण्डपे विप्रकृष्टे तु पाठ्यमुच्चारितस्वरम् ।
अनभिव्यक्तवर्णत्वाद् विस्वरत्वं भृशं व्रजेत् ॥
नाट्यशास्त्र 2·19.

साजसज्जा, पुतलियाँ, पक्षी और गवाक्ष इत्यादि से चित्रों की रचना होनी चाहिए। भित्तिकार्य के साथ स्तम्भ, नागदन्त और वातायन आदि होना चाहिए। रंगशीर्ष में पर्वत, कन्दरा आदि का भी निर्माण होना चाहिए, दीवार पर चूने का लेप होना चाहिए, उस पर अनेक प्रकार के चित्रादि और बेलें, होनी चाहिए। इसी प्रकार विधिवत् नियमानुसार प्रेक्षागृहों का निर्माण करना चाहिए।[1]

प्रेक्षागृह का आधा भाग दर्शकों के निमित्त सुरक्षित रखा जाता था और आधा भाग नटों के व्यवसाय के लिए निश्चित रहता था। इसमें भी आधा भाग रंगपीठ कहलाता था, जिसके ऊपर अभिनय कार्य निष्पन्न होता था। सबसे पिछले भाग को रंगपीठ कहा जाता था और यहीं नटों के लिए नेपथ्य-विधान होता था। प्रेक्षागृहों के विभिन्न स्थानों पर नाना देवताओं की पूजा होती थी। इन आवश्यक विधानों का सम्पादन सूत्रधार का मुख्य कार्य होता था। यह आरम्भिक पूजन पूर्वरंग कहलाता था और यह एक विस्तृत व्यापार होता था। आजकल इसका अन्तिम अंश नांदी के नाम से संस्कृत नाटकों में अब भी दिखलाई देता है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार नान्दी उसे कहते हैं, जिसके द्वारा देव, ब्राह्मण, राजा आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति की जाती है; अथवा आशीर्वाद से युक्त स्तुति की जाती है; अथवा आशीर्वाद और नमस्क्रिया से युक्त और काव्यार्थ की सूचना देने वाले श्लोक को नान्दी कहते हैं।[2]

---

1. द्रष्टव्य : भरतमुनि, अध्याय-2
2. आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
   देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
   साहित्यदर्पण- पृष्ठ 50.

फलत: नान्दी वह मंगलाचरणात्मक आशीर्वचनयुक्त श्लोक होते हैं, जिनमे काव्यार्थ की सूचना के साथ-साथ देवद्विजनृपादि की स्तुति की जाती है ।

संस्कृत नाटकों में नान्दीपाठ के अनन्तर भी पात्रों का प्रवेश होता था । पूर्वरंग के अवसान में श्रोताओं के हृदयावर्जन के लिए संगीत का यथावत् नाटकों में प्रयोग किया जाता था । इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत का गायन विशिष्ट स्वर में विशिष्ट ताल तथा मात्रा के योग से होता था ।

प्राचीनकाल में दर्शकों के बैठने के लिए आसनों का उचित प्रबन्ध होता था । आजकल के समान दर्शकों के बैठने के लिए उस समय की गैलरी या सीढ़ीनुमा आसन की व्यवस्था आश्चर्यजनक नहीं है । दर्शकों के बैठने के लिए उस समय सोपानाकृति आसान होते थे । भूमि से सीढ़ियाँ एक हाथ ऊँची रखी जाती थीं और इनका निर्माण लकड़ी तथा ईंट की सहायता से किया जाता था । निवेशनों की बनावट तथा व्यवस्था ऐसी होती थी कि कहीं पर बैठकर रंगपीठ के ऊपर अभिनय का साक्षात्कार भलीभाँति किया जा सकता था ।[1]

भारत का प्राचीन रंगमंच यथार्थवादी होते हुए भी आदर्शवादी था । वहीं क्षोभोत्पादक अथवा उद्वेगजनक दृश्यों का प्रदर्शन सर्वथा वर्जित था। रंगपीठ का भोजन तथा शयन युद्ध तथा आक्रमण आदि का प्रदर्शन सर्वथा वर्जित था, फिरभी आवश्यकतानुसार घोड़े-और हाथी रंगमंच पर दिखलाये

---

1. स्तम्भानां बाह्यतश्चापि सोपानाकृति-पीठकम् ।
इष्टकादारुभि: कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम् ॥
नाट्यशास्त्र 2·25.

जाते थे । प्राचीनकाल में घासफूस के बने पदार्थों को चमड़े से मढ़कर घोड़े या हाथी का रूप बनाकर रंगमंच पर दिखलाने की प्रथा थी । भारतीय रंगमंच के प्रभाव का बृहत्तर भारत की रंगशाला पर पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । कम्बोज, जावा तथा स्याम की रंगशालायें ठीक भारतीय रंगशाला के समान होती थी । आज भी जावा में छाया-नाटकों का बहुत प्रचार है जो भारत के 'पुत्तलिकानृत्य' के समान ही प्रयोग में लाये जाते हैं । इस प्रकार जावा का साहित्य, नाटकों की विषयवस्तु तथा प्रकार के समान अभिनय और प्रयोग के लिए भी भारत वर्ष का चिरऋणी है ।[1]

पूर्व रंग :

प्रेक्षागृह की रचना के बाद नाट्यशास्त्र में रंगदेवता के पूजन का विधान बतलाया गया है । इसके पश्चात् नाटक के अभिनय प्रारम्भ से पहले पूर्वरंग की व्यवस्था के नियम बतलाये गए हैं । पूर्वरंग वास्तविक अभिनय के पहले आता है, इसलिए सम्भवतः इसका पूर्वरंग यह नाम रखा गया है । इसमें नायकों का प्रवेश, गीतारम्भ, नान्दीपाठ और वन्दना आदि का विधान सर्वप्रथम होता है । सबसे पहले रंगपीठ के मध्य में स्थित ब्रह्मा का अभिवादन किया जाता है और तब सूत्रधार वन्दना करने वालों के साथ प्रवेश करता है ।

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार सर्वप्रथम प्राचीदिशा की वन्दना की जाती है जिसके स्वामी इन्द्र हैं, फिर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा की वन्दना होती है । तत्पश्चात् पुनः शंकर, ब्रह्मा और विष्णु की वन्दना की जाती है ; इसके बाद सूत्रधार सस्वर नान्दीपाठ करता है और फिर विभिन्न गीतों में स्तुति की जाती है । इसके पश्चात् विदूषक और सूत्रधार

---

1. संस्कृत आलोचना : आचार्य बलदेव उपाध्याय, 195 संस्करण, पृष्ठ 94.

अथवा नटी तथा सूत्रधार का कथोपकथन होता है और रंग-सिद्धि के लिए काव्यवस्तु का निरूपण संक्षेप में किया जाता है। यहीं काव्यवस्तु की प्रस्थापना के साथ कवि के नाम का भी अनुकीर्तन होता है।[1]

नाट्यशास्त्र की मान्यता है कि इस प्रकार पूर्वरंग का विधिवत्पालन करने से असंगत और अनिष्ट नहीं होता है।[2] आचार्य मम्मट के अनुसार ही काव्य के अन्य प्रयोजनों के साथ-साथ एक मुख्य प्रयोजन 'शिवेतरक्षति' भी है।[3]

भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में रंगमंच की ऊपर कही हुई व्यवस्था के साथ-साथ अभिनय के विभिन्न अंगों, रूपों और विधाओं का अत्यन्त विशद और विस्तृत विवरण प्राप्त होता है, इससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में रंगमंच और नाट्यकला का कितना उत्कृष्ट विकास हो गया था। भरतमुनि द्वारा वर्णित समृद्ध रंगमंच और उन्नत नाट्य कला को आधार बनाकर संस्कृत में अत्यन्त उत्कृष्ट नाट्यशास्त्र की रचना सम्भव हो सकी है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित प्रेक्षागृह और रंगमंच के सन्दर्भ में जब हम कविवर भास प्रणीत वासवदत्तम् का अनुशीलन करते हैं हमें विदित होता है कि कवि ने तत्कालीन प्रेक्षागृह और रंगमंच का कोई संकेत नहीं दिया है। नाटककार भास के नाटक नान्दीपाठ के अन्त में सूत्रधार के प्रवेश से प्रारंभ होते हैं।[4] नान्दी का अर्थ है कि नाटक के आरम्भ करने के पहले उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए देवता आदि की जो स्तुति की जाती है; उसे नान्दी कहते हैं अथवा मंगलागानवाद्य को नान्दी कहा जाता है।[5] स्वप्न-

---

1. काव्यशास्त्र: डॉ० भगीरथ मिश्र, संस्करण-1980, पृष्ठ 112
2. भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय-5
3. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ काव्यप्रकाश 1-2, पृ०-10

क्रमशः--

वासवदत्तम् नाटक में नान्दी-पाठ रंगमंच में न होकर नेपथ्य में हुआ है । जबकि संस्कृत के अन्य नाटककार अपने नाटकों का प्रारम्भ नान्दी पाठ से ही करते हैं । अन्य नाटकारों से भास के नाटकों की यही विलक्षणता और विशेषता है । इसीलिए कविवर बाणभट्ट का कथन है कि नाटककार भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं ।[1] सूत्रधार उस प्रधान अभिनेता को कहते हैं जो रंगमंच पर घटित होने वाली घटना को नियमित रूप से चलाता है । वह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है । वह प्रस्तावना अथवा स्थापना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है । नाट्य की उत्पत्ति के साथ उसके अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं, और उसको धारण करने वाला तथा रंगमंच के देवता का पूजन करने वाला और नाटक की कथावस्तु तथा उसके प्रमुख पात्रों का परिचय देने वाला नाटक का व्यवस्थापक कहलाता है ।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में हम देखते हैं कि सूत्रधार नाट्यशाला में प्रवेश करके दर्शकों को एक पद्य सुनाता है जिसमें वह कहता है कि उदय-कालीन चन्द्रमा के समान रंगवाली, अपनी प्रियतमा रेवती को मद्य देने वाली अथवा मदिरापान से विशेष बलशाली, श्री तथा शुभ लक्षण से सुसम्पन्न और वसन्तऋतु के समान मनोहर बलदेव जी की दोनों भुजायें आप सभी दर्शकवृन्द की रक्षा करें ।[2] नाटककार भास सूत्रधार के द्वारा प्रस्तुत श्लोक से मुद्रालंकार

गत पृष्ठ का शेष-

4. नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । स्वप्नवासवदत्तम्, प्रथम अंक, पृष्ठ-1
5. 'नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः ।····नान्दी । नाट्यदर्पण, पृष्ठ-10
1. सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः । बाण-हर्षचरितम् 1·15, पृष्ठ- 5
2. उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 1·1, पृष्ठ 2.

द्वारा बड़ी निपुणता के साथ नाटक के प्रमुख पात्रों उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक आदि का परिचय देता है । उन सभी पात्रों में उदयन-प्रधान पात्र है । इसलिए सबसे पहले उसका ही नाम श्लोकों में निर्दिष्ट हुआ है । मुद्रालंकार उसे कहते हैं, जहाँ प्रकृतार्थ बोधक शब्दों से सूच्यार्थ की सूचना मिल जाती है, अथवा उन शब्दों से नाटक के पात्रों का बोध हो जाता है । यहाँ यह कहना न होगा कि नाटककार भास ने सूत्रधार के माध्यम से भगवान् बलराम का स्मरण कर जहाँ एक ओर मंगल कामना करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे काव्यार्थ की सूचना हेतु नाटक के प्रमुख पात्रों का भी परिचय दे देते हैं । यह उनका नाटकीय चातुर्य है । इसके अनन्तर इसी नाटक में नेपथ्य में लोगों के हटाने की याद आती है । सूत्रधार हटाने की इस आवाज को सुनकर उसका अर्थ समझ जाता है और कहता है कि मगधराज की पुत्री पद्मावती के पीछे-पीछे चलने वाले प्रिय सेवकगण तपोवन में रहने वाले लोगों को धृष्टता-पूर्वक हटा रहे हैं ।[1] यह कहकर वह नाटक का सम्पूर्ण प्रसंग और संदर्भ दर्शकों के समक्ष निरूपित कर निकल जाता है, यही नाटक की संक्षिप्त स्थापना या प्रस्तावना है और यहीं से नाटक के प्रथम अंक का शुभारंभ होता है ।

नाटककार भास की इस संक्षिप्त स्थापना या प्रस्तावना से दर्शक अतिशीघ्र मुख्य कथावस्तु के सम्पर्क में आ जाते हैं । और झटिति नाटक की रसचर्वणा करने लगते हैं । दर्शकों और नाटक के बीच में किसी प्रकार की कोई बाधा विघ्न उपस्थित नहीं करता है और न लम्बे-लम्बे वर्णनों से

---

1. सूत्रधारः - भवतु विज्ञातम् ।
भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥
स्वप्नवासवदत्तम् 1-2, पृष्ठ 6

कोई व्यवधान ही उपस्थित करता है । यही भास के नाटकों की सर्वोपरि विशेषता प्रतीत होती है ।

रंगमंच पर, पात्र उपस्थित होकर कथावस्तु के अनुरूप अपना अभिनय प्रस्तुत करते हैं और आकर्षित चित्तवृत्ति वाले दर्शक तत्परता के साथ नाटक की घटनाओं का आनन्द उठाते हैं । भास के नाटकों में कोई जटिलता, कृत्रिमता और आडम्बर नहीं है । इसीलिए भास के नाटक तत्कालीन समाज में अत्यन्त लोकप्रिय थे ।

नाटककार भास प्रस्थापना में अपने नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में अपने नाम का उल्लेख और परिचय नहीं देते हैं ।[1] जबकि संस्कृत के अन्य नाटककार सूत्रधार के द्वारा अपना नामोल्लेख और थोड़ा परिचय अवश्य कराते हैं ।

उपर्युक्त दृष्टि से जब हम तापसवत्सराजम् नाटक का अनुशीलन और परिशीलन करते हैं तो हमें विदित होता है कि तापसवत्सराजम् का प्रथम श्लोक जो सूत्रधार के द्वारा कहा गया है, अपूर्ण है । उसकी केवल दो ही पंक्तियाँ प्रस्तुत संस्करण में प्राप्त होती हैं । सूत्रधार इसमें नटी की सुन्दरता का प्रस्तुत कार्य में बाधा के रूप में वर्णन करता है । सूत्रधार नटी से कहता है कि शरदऋतु के गुणों को प्रकट करने वाली वस्त्रभूषा से तुम वासवदत्ता का अभिनय करोगी और मै वत्सराज का अभिनय करूँगा । नटी इस पर सूत्रधार से पूछती है कि क्या सामाजिक तापसवत्सराजम् नाटक को देखना चाहते हैं । इस पर सूत्रधार कहता है कि इस समय जनता की रुचि सम्पूर्ण

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् - प्रस्तावना, पृष्ठ 1-4.

नरपतियों में चन्द्रमा के सदृश महाराज नरेन्द्रवर्धन के पुत्र अनंगहर्षमातृराज प्रणीत तापसवत्सराजम् में है । यहाँ सूत्रधार कवि का विस्तृत परिचय देता है कि वह उत्तम आचरण वाला है और प्रत्येक क्षण गुणी लोगों को प्रसन्न करने में लगा रहता है, प्रियपात्रों को तो सदा अपने प्राण देकर भी सन्तुष्ट करना चाहता है । वह दूसरों के गुणों को देखकर जलता नहीं है । अन्य गुणी कवियों की रचनाओं को सुनकर वह रोमांचित हो जाता है । सूत्रधार कवि का परिचय देते हुए आगे कहता है कि उस कवि ने विद्वानों से प्रभावित होकर ही इस नाटक की रचना की है । किसी कवित्व के अभिमान से नहीं । यद्यपि वह व्याकरण, मीमांसा और न्यायवैशेषिक शास्त्रों में तथा सभी भाषाओं के परिचय में एवं सम्पूर्ण अंग विद्याओं में दक्ष है ।[1]

यह प्रतीत होता है कि तापसवत्सराजम् की प्रस्तावना में वह सौन्दर्य, और पैनापना नहीं है जो स्वप्नवासवदत्तम् की प्रस्तावना में प्राप्त होता है । इसमें स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की भाँति मुद्रालंकार के द्वारा नाटक के प्रमुख पात्रों का परिचय दर्शकों को नहीं दिया जा सका है । यहाँ पर तो सूत्रधार सम्पूर्ण प्रस्तावना में कविवर अनंग हर्ष-मातृराज के व्यक्तित्व और कवित्व का ही वर्णन करता हुआ दिखाई देता है । जबकि भास अपने नाटक की प्रस्तावना में अपना नामोल्लेख भी नहीं करते हैं । वस्तुतः इस

---

1. न कवित्वाभिमानेन न च व्यायुढचेतसा ।
रचितं नाटकमिदं सगोष्ठीभावितात्मना ।।
पदवाक्यप्रमाणेषु सर्वभाषाविनिश्चये ।
अंगविद्यासु सर्वासु परं प्रावीण्यमागता ।।
तापसवत्सराजम् 1.3.4 पृष्ठ 2-3.

नाटक में नाटक की कथावस्तु का शुभारम्भ नायक का वर्णन करते हुए कंचुकीय ही करता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगमंच में दोनों नाटकों के शुभारम्भ में प्रस्तावना में अत्यधिक अन्तर है । स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की प्रस्तावना जहाँ अधिक चमत्कारिणी है,वहीं तापसवत्सराजम् नाटक की प्रस्तावना चमत्कार शून्य प्रतीत होती है ।

अभिनय :

नाटक में अभिनय का अतिशय महत्व है । नाटक में अवस्था की अनुकृति का प्राधान्य होता है ।[1] पात्र जिस मूल व्यक्तित्व की अवस्था का अनुकरण करता है,उसका तदनुरूप सटीक अभिनय भी होना चाहिए । सटीक अभिनय से सामाजिकों को रसानुभूति में सहायता होती है और परस्पर तादात्म्य में स्थापित हो जाता है । सटीक और अनुरूप अभिनय से साधारणीकरण व्यापार के द्वारा सामाजिक को शीघ्र रसानुभूति होने लगती है । इसीलिए अभिनय का नाटक में अतिशय महत्व है । अभिनव गुप्त के अनुसार रस का संचार केवल रचनाकार एवं दर्शक में होता है,किन्तु धनंजय, अभिनेता में भी रस-संचार की स्थिति को स्वीकार करते हैं ।[2] यह सत्य भी है कि अभिनेता अभिनय-प्रक्रिया के क्षणों में स्वयं भी आनन्द की अनुभूति करता है । यदि उसके अनुकार्य में रोचकता के तत्व विद्यमान हैं । अभिनय अनुकरण के अतिरिक्त स्वाधीन सृजनशील कला है, अभिनेता अपने अनुकार्य चरित्र को

---

1. अवस्थानुकृति:नाट्यम्, दशरूपक 1·7, पृ0 04.
2. डॉ0रघुवंश : नाट्यकला प्रथम संस्करण,पृष्ठ 38.

पहले अपने भाव और विस्तार के स्तर पर सर्जित करता है, फिर अंग, वाणी तथा वेशभूषा आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । वह अपने अनुकार्य के व्यक्तित्व के अभिनव आयाम उद्घाटित और नव व्याख्या प्रस्तुत करता है । अभिनेता ही रंगमंच का वह सशक्त साधन है जो अभिनय कौशल द्वारा दर्शक को मंच से बाँधे रखकर रचनाकार का सन्देश उस तक सम्प्रेषित करता है । नाटक यदि जीवन की अनुकृति है तो उसमें जीवन का भ्रम अभिनेता ही सबसे अधिक उत्पन्न करता है । हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अभिनेता एक ओर मूल कथा के व्यक्तियों का आरोपण निभाता है ; और दूसरी ओर अभिनय द्वारा विविध प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति देता हुआ, दर्शकों में उन भावों को जगाता हुआ, सारे नाट्य अनुष्ठान को रसमय करता है ।

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में अभिनय शब्द के पद-पदार्थ को उद्घाटित किया है, तदनुसार अभिपूर्वक णी धातु से अच्प्रत्यय होने पर 'अभिनय' शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है प्रयोग के माध्यम से नाटक के अर्थ का प्रत्यक्ष निश्चय कराना ।[1] अभिनय शब्द का निर्वचन है- 'अभिनयति- हृदयगतभावान् प्रकाशयति इति अभिनयः ।' अर्थात् अभिनय, मन के भावों को प्रकट करने वाली आंगिक चेष्टाओं द्वारा किसी विषय अथवा व्यक्ति का अनुकरण करके प्रदर्शित करने की एक कला है ।

उपर्युक्त दोनों कथनों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अभिनय

---

1. अभिपूर्वस्तु णीञ्धातुराभिमुख्यार्थनिर्णये ।
यस्मात्प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः ॥
नाट्यशास्त्र 8.7.

का सम्बन्ध हमारे भाव और विचार जगत् से है, बाह्य चेष्टाओं का उत्स हमारा आन्तरिक जगत् है, भाव और विचार की आन्तरिक प्रक्रिया की बाह्याभिव्यक्ति को ही अभिनय कहा जा सकता है, इस बाह्याभिव्यक्ति का उद्देश्य भी दर्शक के मानस में उन्हीं भावों को जागृत करना है जिनसे उस बाह्याभिव्यक्ति का जन्म अभिनेता की चेष्टाओं में हुआ है । संस्कृत नाट्यशास्त्रियों के अनुसार अभिनय मन के भावों की अनुभूति कराने वाला तत्व है । अनुकरण में मौलिक उद्भावना का अधिक अवकाश नहीं दिखाई देता है, किन्तु अभिनय में उदात्त कलास्तर की प्राप्ति का विचार संनिहित है । भारतीय अभिनय परिकल्पना के द्वारा अभिनयकला आदि सर्जनशीलता का स्तर प्राप्त कर चुकी है ।[1]

नृत्य एवं नृत्त :

दशरूपककार धनिक धनंजय ने 'नृत्य' और 'नृत्त' को अभिनय के अन्तर्गत ही माना है । 'नृत्य' में भावों का अनुकरण मुख्य रूप से होता है, जबकि 'नृत्त' में केवल अंग-विक्षेप होता है जो ताल और लय पर आश्रित होता है ।[2] यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि नृत्य और नाट्य भिन्न भिन्न हैं । नाट्य रसों पर आश्रित होता है और नृत्य भावों पर आश्रित होता है । इसलिए इन दोनों में विषयभेद है । नृत्य शब्द की व्युत्पत्ति 'नृत' धातु से हुई है जिसका अर्थ है गात्रविक्षेप, इसमें आंगिक अभिनय की बहुलता होती है, जबकि नाट्य में चार प्रकार के अभिनय पाये जाते हैं ।

---

1. [अ] डॉ० रघुवंश : नाट्यकला प्रथम संस्करण, पृष्ठ 91.
[ब] संस्कृत आलोचना : बलदेव उपाध्याय, पृ० 17.
2. अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्-नृत्तं ताललयाश्रयम् ।
आद्यं पदार्थाभिनयो मार्गो देशी तथा परम् ॥
दशरूपक 1·9, पृष्ठ 6.

नाटक केवल भावों पर आश्रित न होकर रस-परक होते हैं । रस समस्त काव्य के उस वाक्यार्थ से निष्पन्न होता है, जो काव्य में प्रयुक्त पदों के अर्थरूप, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि-भावों के संसर्ग से युक्त होता है, इसलिए नाटकों में वाक्यार्थ-रूप अभिनय पाया जाता है जो नाटकों को रसाश्रय होने की ओर संकेत करता है ।

नाट्य एवं नृत्य :

नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति 'नट अवस्पन्दने' धातु से हुई है, जहाँ पर नट धातु का अर्थ अवस्पन्दन अर्थात् कुछ-कुछ चंचलता करना है, अत: नाट्य में सात्त्विक अभिनय की बहुलता होती है, इसीलिए नाट्य-विशारद 'नट' कहलाते हैं । इसलिए नाटक वाक्यार्थ-रूप अभिनयवाला होता है और 'नृत्य' पदार्थ-रूप अभिनय वाला भिन्न होता है ।[1]

अभिनय के प्रकार :

नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय को निम्नांकित चार भागों में विभाजित किया गया है-(1) आंगिक, (2) वाचिक, (3) आहार्य, (4) सात्त्विक, इन चारों प्रकार के अभिनयों के द्वारा प्रस्तुत कथावस्तु ही दर्शकों के सामने यथार्थ रूप दिखलता सकती है तथा उनका मनोरंजन कर सकती है ।

आंगिक अभिनय :

शरीर, शारीरिक चेष्टाओं तथा मुख के द्वारा नाट्यस्थितियों का प्रदर्शन करना आंगिक अभिनय कहलाता है । नाट्यशास्त्र के अनुसार शरीर के अन्तर्गत सिर, कटि, हाथ, वक्ष, पार्श्व और चरण, कन्धे, भुजायें

---

1. दशरूपक - वृत्ति 1·9, पृष्ठ 5-6.

पीठ, उदर, उरू, जंघ, आँखें भृकुटि, नाक, अधरोष्ठ, कपोल, इन सबके अभिनय आंगिक अभिनय के अन्तर्गत आते हैं । आचार्य भरत ने अंगों, प्रत्यंगों और उपांगों, दृष्टि और भ्रूविलास आदि के अभिनयों का सविस्तार वर्णन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में किया है ।[1]

वाचिक अभिनय :

अभिनेता अपनी अभिनय प्रक्रिया में जो कुछ भी बोलता है, वह सब वाचिक अभिनय के अन्तर्गत आता है । आचार्य भरत के अनुसार वाचिक अभिनय नाट्य का शरीर है और यह कथन नितान्त सत्य भी है कि यदि किसी नाट्यकृति से उसके कथोपकथन को हटा दिया जाय तो उसकी नाट्य-संज्ञा ही समाप्त हो जायेगी । हम यह कह सकते हैं कि बहुत कुछ सीमा तक कथोपकथन या वाचिक अभिनय में ही नाटक की रसरूप आत्मा निवास करती है । वैसे अभिनय के अन्य विभाग भी सम्भाषण के अर्थ को ही अभिव्यक्त करते हैं ।[2]

पाठ्य दो प्रकार का होता है- संस्कृत तथा प्राकृत । उच्च श्रेणी के पात्रों कीभाषा संस्कृत होती है तथा नीच श्रेणी के पात्रों की भाषा प्राकृत होती है । नाट्य का पाठ्य कवित्वमय होता है । अतः उसके लिए दोषों का परिहार, गुण तथा अलंकारों का संग्रह करना नितान्त आवश्यक होता है । कुछ विद्वानों के अनुसार अभिनय का सर्वस्व होता है - औचित्य

---

1. नाट्यशास्त्र अध्याय-05
2. वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनुः स्मृता ।
   अंगनेपथ्यसत्वानि वाक्यार्थं व्यंजयन्ति हि ॥
   नाट्यशास्त्र 14•2

का विधान । वस्तु जिस प्रकार की होती है, उसे उसी प्रकार से रंगमंच पर दिखलाना औचित्य की परिधि के भीतर आता है । आचार्य भरत ने जो अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में अभिनय को समझने में अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं, वे बड़े ही साहित्यिक, सरस तथा उपादेय हैं । अभिनेता को उम्र के विचार से उचित वेश धारण करना चाहिए और वेश के अनुसार उसकी गति और क्रिया होनी चाहिए । पाठ्यगति प्रचार के अनुरूप होनी चाहिए तथा पाठ्य के अनुरूप अभिनय करना चाहिए । इस नियम के यथावत् पालन करने से ही नाट्यकला में सिद्धि हो सकती है ।[1]

वाचिक अभिनय के भेद :

वाचिक अभिनय के तीन भेद हैं । सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियतश्राव्य । सर्वश्राव्य वे कथोपकथन हैं, जो सबके सुनने के लिए होते हैं, इसे प्रकाशकथन भी कहते हैं, और अश्राव्य वह कथन है जो सबके सुनने के लिए नहीं होता है, वह स्वगत या आत्मगत कथन कहलाता है ।[2] नियतश्राव्य नाटक का वह कथोपकथन है जो कुछ पात्रों के सुनने के लिए होता है और कुछ के लिए नहीं । इस कथोपकथन के तीन रूप नाट्यशास्त्र में बतलाये गये हैं । अपवारित जनान्तिक और आकाश भाषित । अपवारित में जिस पात्र से बात न कहनी हो, उसकी ओर से मुँह फेरकर बात की जाती है ।[3] जनान्तिक में जिससे बात न कहनी हो, उसके सामने त्रिपताका हाथ करके अन्य पात्रों से

---

1. संस्कृत आलोचना 1957 संस्करण, पृष्ठ 95
2. हृदयस्थं वचो यत्तु तदात्मगतमिष्यते ।
   हृदयस्थं सविलर्कं भावसं चात्मगतमेव ॥ भरत-नाट्यशास्त्र 26·82,83.
3. दशरूपक 1·66, पृष्ठ 73

बात कही जाती है ।[1] आकाशभाषित में पात्र आकाश की ओर मुंह उठाकर किसी दूर में स्थित व्यक्ति से, जिसका शरीर दिखाई नहीं देता, परोक्ष में बात की जाती है, इसे आकाश भाषित कहा जाता है ।[2]

वाचिक अभिनय में भाषा का स्वरूप :

भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में स्थूलरूप से दो दृष्टियां प्राप्त होती हैं । एक दृष्टि तो अलंकार-वादियों की है,जो कविता में अलंकार को अनिवार्य धर्म मानते हैं । चन्द्रालोककार का कथन है कि जो लोग अलंकार से रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं, वेअग्नि को उष्णता से रहित क्यों नहीं मानते ।[3] अलंकारवादियों के अनुसार उच्च धरातल की अलंकृत सुसज्जित भाषा ही उच्चानुभूति का माध्यम बन सकती है । जिस प्रकार कोई रमणी अपने सम्पूर्ण आभूषणों से सुसज्जित होकर रसिकों को आकर्षित करती है,उसी प्रकार वाणी अपने समस्त अलंकरणों से सुसज्जित होकर व्यंजना शक्ति को प्राप्त कर "ध्वनि" को प्रस्फुटित करती है ।

दूसरे विद्वानों का मत है कि नाटक को यथार्थ धरातल में जुड़ा हुआ होना चाहिए,इसलिए उसकी भाषा भी सरल स्वाभाविक उक्तियों, सहज कथन- पद्धतियों, जटिल अलंकारों से रहित और प्रसाद गुण-सम्पन्न होना चाहिए ।

---

1. दशरूपक 1·65, पृष्ठ 73
2. किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
   श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाश भाषितम् ॥
   दशरूपक 1·67, पृष्ठ 73
3. चन्द्रालोक, पृष्ठ 15

वस्तुत: नाटकों की भाषा के सम्बन्ध में सम्यक् दृष्टि यही प्रतीत होती है कि उसे जहाँ तक सम्भव हो, स्वाभाविक और सहज होना चाहिए और भाव स्थिति के बिन्दु पर स्वाभाविक अलंकारों से युक्त रसात्मक कौतूहलवर्धक, सरल और प्रसाद-गुण-युक्त होना चाहिए । नाटक की भाषा में 'गागर में सागर' भरा होना चाहिए । नाटक के लिए वही भाषा आदर्श भाषा मानी जावेगी जो साधारण सरल दिखलाई देते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली हो । अभिनय की दृष्टि से भी भाषा की यही स्थिति आदर्श प्रतीत होती है क्योंकि भाषा के प्रकृत और सामान्य होने से अभिनेता को उसके स्मरण, उच्चारण में सुविधा रहेगी और प्रभावी होने से वह उसके माध्यम से प्रेक्षक को रस-रज्जु से बाँधे रख सकेगा । सम्भाषण का हृदयंगमी-करण अभिनेता को अपना सम्भाषण रटना नहीं चाहिए बल्कि हृदयंगम करना चाहिए । सम्भाषण को रट कर बोलने में यह भय सदा बना रहता है कि वह उस ध्वनिसमूह का उच्चारण कर सका है अथवा नहीं जो उसे उस सम्बन्ध में उच्चारित करना था । वस्तुत: वाचिक अभिनय तो उच्चारण मात्र है, केवल अर्थ की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है । एक विशिष्ट भाव स्थिति का वाणीगत रूप ही वाचिक अभिनय है, क्योंकि मूलत: भावों का ही अभिनय होता है. सम्भाषण को हृदयंगम करने के पश्चात् अभिनेता को भावस्थिति का ध्यान रखने में सुगमता रहती है, फिर प्रत्येक शब्द के उच्चारण से सम्बन्धित स्वर, बलाघात तथा अन्तराल का निर्णय स्वयं हो जाता है, इन्हीं के ध्यान से वाचिक अभिनय में प्रभविष्णुता उत्पन्न हो जाती है ।

सम्भाषण के उच्चारण में तीन नियमों का अनुपालन उसके प्रभाव में वृद्धि कर देता है - बलाघात, स्वरमात्रा तथा अवधि ।

1. भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय- 18

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय को प्रभावी बनाने वाले अनेक उपादानों की चर्चा की है । उन्होंने वाचिक अभिनय के अन्तर्गत व्याकरण के नियमों, ध्वनियों के वर्गीकरण तथा काव्य लक्षणों की चर्चा की है । आचार्य भरत ने भूषण, अक्षर-संघात, शोभा, उदाहरण और हेतु इत्यादि 36 उपादान बतलाये हैं ।[1]

नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय के अन्तर्गत इस बात की भी चर्चा की है कि किसी रस-प्रकरण में किस छन्द और किस अलंकार का प्रयोग होना चाहिए । यथा – वीर रस और भयानक रस के सम्बन्ध में आर्या छन्द, रूपक तथा दीपक अलंकार का प्रयोग होना चाहिए । नाटकीय प्रयोग में आने वाली भाषा के सन्दर्भ में उनका कथन है कि शिष्टजनों को संस्कृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए और निम्न स्तर के जनों को प्राकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए । नाट्य-शास्त्र में बोलियों के प्रयोग की भी चर्चा की गई है । प्राकृत-भाषाओं में – मागधी, अवन्ती का प्राच्य शौरसेनी अर्धमागधी तथा अन्य विभाषाएँ ।[2]

अन्त में, आचार्य भरत ने नाटकीय सम्बोधनों की भी विस्तार से चर्चा की है । देवताओं, आचार्यों तथा व्रतियों के लिए 'भगवन्' राजा के लिए 'महाराज' गुरु के लिए 'आचार्य' और वृद्ध के लिए 'तात' कहकर सम्बोधित करते हैं । ब्राह्मण राजा को किसी नाम से पुकार सकता है । वह मन्त्रियों को अमात्य और सचिव कह सकता है । अन्य लोग इनको केवल 'आर्य' शब्द से सम्बोधित करते हैं । बराबर वालों का नाम लेकर सम्बोधित

---

1. भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय- 17
2. भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय- 18

किया जा सकता है । इन्हें वयस्य भी कहा जा सकता है । आदरणीय व्यक्ति को 'भाव' तथा अपने से कुछ छोटे को 'मार्षक' या 'मार्ष' कहकर पुकारते हैं । रथवाहक अपने स्वामी को आयुष्मान् कहता है और सन्यासी को 'साधो' कहकर सम्बोधित किया जाता है । युवराज को स्वामिन या भर्तृदारक कहा जाता है । अपने से छोटे पद वालों को सौम्य, आदि कहकर पुकारते हैं । शिष्य या पुत्र को वत्स, पुत्रक, पिता को तात, बौद्ध तथा जैन, श्रमण को भदन्त कहते हैं । राजा विदूषक को 'वयस्य' कहकर पुकारता है । वह रानी तथा उसकी सहेलियों को 'भवति' कहेगा । स्त्रियाँ विवाहित होने पर अपने पति को 'आर्यपुत्र' कहती हैं अन्यथा उन्हें 'आर्य' से सम्बोधित करती हैं । वृद्धानारी को अम्ब, राजा की पत्नी को स्वामिनी, तथा देवी, अविवाहित राजकुमारी को भर्तृदारिका, बहिन को भगिनी, बेटी को वत्से, पत्नी को आर्ये, नारियाँ अपनी सहेलियों से हला इत्यादि शब्दों से सम्बोधित करती हैं ।[1]

आहार्य अभिनय :

वस्त्र सम्बन्धी या वेशभूषा सम्बन्धी नियमों को आहार्य अभिनय कहा जाता है । अभिनेता द्वारा अपने अनुकार्य की वेशभूषा धारण करना नाटक में यथार्थ सृष्टि के लिए अत्यधिक सहायक है । संस्कृत रंगमंच के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि उस पर जो दृश्य-सज्जा का विधान था, वह यथार्थ का सामग्री द्वारा अनुकरण न होकर अधिकांशत: वाणी या अंगमुद्राओं द्वारा कल्पित कराया जाता था । उदाहरण के लिए यदि किसी अभिनेता को अपनी भूमिका में अश्व पर चढ़ने का अभिनय करना होता

---

1. भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय 19.

था तो मंच पर अश्व न ही उपस्थित किया जाता था, अपितु अभिनेता अपनी वाणी और आंगिक चेष्टाओं द्वारा प्रेक्षकों तक इस सम्पूर्ण स्थिति का सम्प्रेषण कर देता था । यहां पर उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि संस्कृत रंगमंच में यथार्थ का सबसे अधिक अनुकरण या तत्व वस्त्र विन्यास और अंग रचना में ही विद्यमान था । संस्कृत रंग-विधान में प्राय: लम्बे कथोपकथन और विवरणयुक्त दृश्यावली के वर्णन होते हैं । उसमें अधिक दृश्य-सज्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती थी । सम्पूर्ण दृश्य कल्पित करा दिया जाता था । इस प्रकार हम देखते हैं कि आहार्य अभिनय में वेशभूषा का अत्यधिक महत्त्व था ।

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में आहार्य अभिनय की विस्तृत चर्चा की है । पुरुषों के 5 प्रकार के अलंकरण नारियों के अनेक प्रकार के अलंकरण तथा विविध प्रकार की अंग रचना तथा अलंकरणों के अनेक भेदोपभेद नाट्यशास्त्र में वर्णित है ।[1]

सात्विक अभिनय :

यह अन्तिम प्रकार का अभिनय है जिसमें पुरुषों तथा स्त्रियों की नाना प्रकार की चेष्टाओं हाव और हेला आदि का प्रदर्शन दिखलाया जाता था, दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि अन्त:करण के विशेष धर्म सत्त्व से जन्म लेने वाले अंग-विकारों को रस प्रकरण में सात्विक अनुभाव कहते हैं । इन्हीं को सात्विक अभिनय कहा जाता है, सात्विक अनुभवों की

---

1. भरत : नाट्यशास्त्र अध्याय 23.

संख्या आठ है जो निम्नवत् है- स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवर्णत्वा, अश्रु और प्रलय। सात्त्विक अनुभावों के अभिनय से अन्त:करण और शरीर का बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार अभिनय को रसाश्रय माना जाता है। मुनिवर भरत का कथन है कि इन रसों को नाटक में नाना प्रकार के अभिनय से सम्बद्ध करके अभिव्यक्त किया जाता है।[1]

अभिनय के विविध पक्षों का मन्थन-विमन्थन, करने के पश्चात् जब हम नाटककार भास प्रणीत स्वप्नवासवदत्तम् नाटक पर दृष्टिपात करते हैं, तो विदित होता है कि अभिनय की दृष्टि से यह एक सर्वश्रेष्ठ नाटक है। सर्वप्रथम आंगिक अभिनय की दृष्टि से यह नाटक अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर देता है। नाटक के प्रथम अंक में यौगन्धरायण जब मगध के तपोवन में पहुंचता है और वहां पर राजपुरुषों द्वारा मगध राजकुमारी पद्मावती के आगमन पर उत्सारण की ध्वनि सुनता है तो वह कान लगाकर कहता है कि क्या इस तपोवन में भी लोगों को हटाया जाता है?[2]

इसी नाटक के प्रथम अंक में तपोवन में एक ब्रह्मचारी का प्रवेश होता है, वह ऊपर की ओर देखने का अभिनय करता है और कहता है कि मध्याह्नकाल हो गया है, यहां पर वह आंखों से आंगिक अभिनय कर रहा है। फिर वह वहीं पर घूमता है और अपने पैरों को इधर-उधर चलाता है जिससे उसके पैरों से अभिनय प्रकट होता है।[3] इसके आगे ब्रह्मचारी तपोवन का

---

1. नानाभिनयसम्बद्धान्भावयन्ति रसानिमान्। भरत:नाट्यशास्त्र, अ0 6·35.
2. यौगन्धरायणः -[कर्णं दत्त्वा] कथमिहाप्युत्सार्यते !
स्वप्नवासवदत्तम् अंक-1, पृष्ठ-8
3. ब्रह्मचारी [ऊर्ध्वमवलोक्य] स्थितो मध्याह्नः। [परिक्रम्य] भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। स्वप्नवासवदत्तम्, अंक-1, पृष्ठ 43.

अतिथिसत्कार स्वीकार करते हुए जल का आचमन करता है । इसमें उसका मुख संचालित होता है । जब वह ब्रह्मचारी बतलाता है कि वासवदत्ता के जल जाने से उसके बचे हुए आभूषणों को वक्ष से लगाकर राजा मूर्च्छित हो जाता है तो यह समाचार सुनकर वासवदत्ता रोने लगती है,उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं ।[1] राजा की मूर्च्छा और वासवदत्ता का रुदन यह दोनों आंगिक अभिनय है । ब्रह्मचारी आगे बतलाता है कि मन्त्री रुमण्वान् राजा की तरह भोजन नहीं करता है और जिस प्रकार राजा निरन्तर रोते रहने से सूखे चेहरे वाला हो गया है,उसी प्रकार वह भी दु:ख से शारीरिक संस्कार अर्थात् स्नानादि क्रियायें नहीं करता है ।[2] यहाँ पर आंगिक अभिनय का चमत्कार दर्शनीय है । नाटक के द्वितीय अंक में गेंद से खेलती हुई पद्मा-वती का मंच पर प्रवेश होता है । पद्मावती अपने परिजनों के साथ और प्रच्छन्न वासवदत्ता के साथ हैं । वासवदत्ता गेंद खेलती हुई पद्मावती से कहती है कि सखी अधिक देर तक गेंद खेलने के कारण, लालिमा बढ़ जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे {नवीन मेंहदी लगी होने के कारण} तुम्हारे हाथ मानो पराये हो गए हैं । यहाँ पर हाथ का अभिनय अत्यन्त प्रभावशाली है । गेंद खेलते हुए वासवदत्ता पद्मावती के सुन्दर मुख की ओर टकटकी लगाकर देख रही है, पद्मावती इस पर कहती है कि सखी मेरी हँसी उड़ाने के लिए मुझे क्यों ताक रही हो । इस पर वासवदत्ता कहती है कि सखी आज तुम्हारा मुख बहुत अच्छा लग रहा है । अब मैं

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् अंक-1, पृष्ठ 53.
2. स्वप्नवासवदत्तम् 1'14,पृष्ठ 57.

तुम्हारे वर का मुख अति निकट देख रही हूं ।[1] इसके अनन्तर चेटी सूचना देती है कि आज शुभ नक्षत्र है, महारानी कहती है कि आज ही कंगन बाँधने का मंगलाचार सम्पन्न हो जाना चाहिए । इस पर वासवदत्ता अपने मन में कहती है कि जैसे-जैसे यह मेरे प्रियतम उदयन के साथ पद्मावती की सगाई के लिए शीघ्रता कर रही है, वैसे-वैसे मेरा हृदय सूना होता जा रहा है ।[2] विवाह के पश्चात् वासवदत्ता चेटी से वर की सुन्दरता के विषय में पूँछती है तो वह उसे धनुषबाण से रहित कामदेव के रूप में चित्रित करती है । वासवदत्ता उदयन के परकीय हो जाने पर अपने दुःख को दूर करने के लिए निद्रा का अभिनय करती है । नाटक के पंचम अंक में यह विदित होता है कि राजा के वियोग में राजकुमारी पद्मावती शिरोवेदना से पीड़ित है और समुद्रगृह में उसकी शैय्या बिछी हुई है । चेटी उसके सिर में लेप लगाने के लिए शीघ्रता से जा रही है, राजा जब वहाँ पहुंचता है तो शैय्या को खाली पाता है, वह उसमें लेटकर सो जाता है और वहाँ वह स्वप्न का अभिनय करता है । छठे अंक में राजा वासवदत्ता की मृत्यु पर जब शोक करता है तो कंचुकीय उनसे कहता है कि मृत्यु के समय में कौन किसकी रक्षा कर सकता है । रस्सी के टूट जाने पर घड़े को कौन धारण कर सकता है । यहाँ पर हाथ का अभिनय दर्शनीय है । अन्त में, यह कह सकते हैं कि इस नाटक में

---

1. वासवदत्ता - नहि नहि । हला । अधिकमपरोभेते ।
अभिन्न इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ॥
स्वप्नवासवदत्तम् अंक-2, पृष्ठ 72

2. वासवदत्ता- [आत्मगतम्] यथा यथा त्वरते तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।
स्वप्नवासवदत्तम् अंक द्वितीय पृष्ठ 82

अनेक स्थलों पर आंगिक अभिनय के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

वाचिक अभिनय :

वाचिक अभिनय में तो स्वप्नवासवदत्तम् अद्वितीय प्रतीत होता है । उच्च-पात्र संस्कृत-भाषा का प्रयोग करते हैं और निम्न-पात्र प्राकृत-भाषा का प्रयोग करते हैं । भाषा, सरल प्रांजल और प्रसादगुण-युक्त है । कथोपकथन अत्यन्त प्रभावशाली और चमत्कारपूर्ण है । इसकी शैली श्रोता के मानस पर संगीत के समान एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ देती है । इसके कथोपकथन में भाव सम्बन्धी स्पष्टता का श्रोता के मन में सीधा प्रभाव पड़ता है । कतिपय उदाहरण दर्शनीय है -

वासवदत्ता - अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावद् उपविशामि । धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योऽन्य-विरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्रं पश्यामीति एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।[1]

इसी प्रकार इस नाटक में वाचिक अभिनय के एक से एक सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं जिन्हें विस्तार के भय से यहाँ प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है ।

आहार्य अभिनय :

आहार्य अभिनय की दृष्टि से भी यह नाटक प्रशंसनीय है । नाटक के प्रथम अंक में ही परिव्राजक का वेष धारण किए हुए यौगन्धरायण और आवन्तिका का वेष धारण किए हुए वासवदत्ता का प्रवेश होता है ।[2]

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् अंक तृतीय, पृष्ठ 85.
2. ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो यौगन्धरायणः आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च ।
   स्वप्नवासवदत्तम् अंक-एक, पृष्ठ 8

इस प्रकार चौथे अंक में राजकुमारी पद्मावती और मालविका वेशधारिणी वासवदत्ता का प्रवेश होता है । नाटक के सभी पात्र यौगन्धरायण, ब्रह्मचारी, राजा, विदूषक, वासवदत्ता, पद्मावती और चेटी इत्यादि अपने-अपने अनुकार्य पात्रों का वेश धारण करके ही रंगमंच पर उपस्थित होते हैं । इस नाटक में रूपसज्जा पर भी विशेष ध्यान दिया गया है, इसलिए आहार्य अभिनय में भी इसकी श्रेष्ठता प्रमाणित हो जाती है ।

सात्त्विक अभिनय :

सात्त्विक अभिनय में सात्त्विक भावों, हावों आदि का अभिनय आता है । भाव और रसों का अभिनय सात्त्विक के अन्तर्गत माना जाता है। इस दृष्टि से भी यह नाटक खरा उतरता है । इसमें पात्र अपने हाव, भाव की सुन्दर प्रस्तुति करते हैं और यहाँ करुण रस-मिश्रित विप्रलम्भ शृंगार अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता के साथ प्रस्फुटित होता है । यह नाटक के प्रमुख पात्रों के अभिनय का ही परिणाम है । वस्तुतः नाटककार भास इस दृष्टि से सम्पूर्ण संस्कृत नाट्यसाहित्य में श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं उनका यह नाटक मंचन के सर्वथा उपयुक्त है । एक सफल नाटक में जो गुण होने चाहिए वे सब इसमें विद्यमान हैं । इसीलिए आलोचकों का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि भास नाटक-चक्र के नाटक, परीक्षा के लिए अग्नि में डाल दिए गए किन्तु आलोचना की अग्नि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक को नहीं जला सकी ।[1]

अभिनय की दृष्टि से तापसवत्सराजम् :

अब हम अभिनय की दृष्टि से तापसवत्सराजम् नाटक का अनुशीलन

---

1. भासनाटक-चक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
राजशेखर - काव्यमीमांसा, पृष्ठ 55.

परिशीलन करते हैं तो विदित होता है कि यह नाटक स्वप्नवासवदत्तम् की तुलना में, उसके समकक्ष नहीं ठहरता । यद्यपि नाटककार अनंग हर्ष ने अपने इस नाटक में अनेक नाटकीय गुणों का समावेश किया है किन्तु लम्बे-लम्बे समासयुक्त गद्य खण्ड कादम्बरी के गद्यखण्ड की भाँति क्लिष्ट और दुरूह होने के कारण इसकी अभिनेयता पर प्रश्नचिन्ह लगा देते हैं ।[1]

इसके अतिरिक्त तापसवत्सराजम् में शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा इत्यादि बड़े-बड़े छन्दों का अनेक बार प्रयोग किया गया है जिससे इस नाटक की अभिनेयता मन्द हो गई है ।[2]

इन उपर्युक्त कारणों से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि तापसवत्सराजम् नाटक का महत्त्व रंगमंच की दृष्टि से अत्यन्त न्यून है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार अनंग हर्ष का ध्यान रंगमंच की अपेक्षा रसपरिपाक की ओर अधिक रहा है क्योंकि काव्य अथवा नाटक की आत्मा तो रस ही है । दशरूपककार धनिक धनंजय के अनुसार रूपक रसाश्रय होते हैं, उनमें रस का महत्त्व सर्वोपरि है । महामुनि भरत का भी अभिमत है कि रस के बिना कोई अर्थ प्रवृत्त नहीं होता है । इसलिए इस नाटक में जो करुण रस की निष्पत्ति हुई है और इस रस की जो अजस्रधारा प्रवाहित हुई है, वह कविवर भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् का स्मरण दिलाती है ।

---

1. कुंजरक - ततः संमुख-कुन्त-प्रहाराऽनुसारोपकृत-सुभट-प्रतिनियन्त्रित प्रतिभट॰ · · · · · बलम् ।
तापसवत्सराजम् अंक-5, पृष्ठ 170-171.

2. तापसवत्सराजम् 1·3, 5, 6, 7, 12, 14, 15, 16, 19, 21, 22, 23.
2·3, 4, 5, 6, 9, 11, 13, 14, 15, 18.
3·3, 5, 7, 9, 10, 11, 12, 13, 16, 17, 18.
4·7, 9, 11, 12, 13, 14.
5·3, 4, 5, 7 ; 6·1, 2, 3, 4, 7, 10.

इसीलिए पूर्ववर्ती अनेक काव्यशास्त्रियों ने इस नाटक के विभिन्न स्थलों और प्रसंगों का अत्यन्त आदर के साथ अपने ग्रन्थों में उद्धरण दिया है । कहना न होगा कि आनन्दवर्धन से लेकर भोजदेव तक सभी आचार्यों ने रस, भाव, ध्वनि और अलंकार आदि के परिपोष के लिए इस नाटक से अनेकानेक पद्यों और प्रसंगों को उद्धृत किया है ।[1] अभिनय की अपेक्षा इसमें कवि का कवित्व अत्यन्त चारुता के साथ प्रस्फुटित हुआ है । कभी कालिदास की कोमलकान्त पदावली की मधुरता और मादकता का इसमें अनुभव होता है; तो कभी भवभूति के उत्तर रामचरितम् की करुण-रस-सिक्त सुकोमल-पदशय्या सहृदयों के हृदयों को आवर्जित कर रही है ।

अभिनय :

नाट्यशास्त्र में जो आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक आदि अभिनय के चार प्रकार बतलाये गये हैं, उनको यद्यपि कवि ने अपने इस नाटक में यथोचित रूप से अनुपालन करने का प्रयत्न किया है किन्तु उनके कवित्व ने उन्हें अभिनय की अपेक्षा अधिक प्रभावित किया है । वत्सराज - उदयन प्रथम अंक में जब बड़ी उत्सुकता और चिन्ता के साथ देवी वासवदत्ता को देखता है कि उसने नव केतकी दल की कान्ति से अपने कर्णों को सुशोभित नहीं किया है, तब नायक की भवभंगिमा देखते ही बनती है । इधर वासवदत्ता के महामन्त्री यौगन्धरायण की योजना के विषय में सोचकर अत्यन्त दुःखी और खेद का अनुभव करती हैं और यह कि भविष्य में चिरकाल तक आर्यपुत्र के दर्शन नहीं होंगे, आँखों को अश्रुपूरित करने का अभिनय करती हैं,

---

1. तापसवत्सराजम् - भूमिका, साहित्य भण्डार, मेरठ प्रथम संस्करण 1969 पृष्ठ 28.

उधर वासवदत्ता को अग्नि में जल जाने की बात सुनकर राजा शोकाकुल होकर विरह का सुन्दर अभिनय करता है जिससे प्रतीत होता है कि इस नाटक में आंगिक अभिनय भी नाटकोचित बन गया है ।

वाचिक अभिनय की दृष्टि से यह नाटक उच्चकोटि का है । वाचिक अभिनय में भाषा प्रयोग भाव,और अर्थ का प्रदर्शन देखा जाता है,यहाँ भी उच्च पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं और निम्न पात्र,प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं । भाव और भाव की दृष्टि से यह नाटक अत्यन्त चारुतर है । इसका भाव पक्ष और कलापक्ष कालिदास और भवभूति का अनुवर्ती है । शब्द - सौष्ठव, अर्थ की सुकुमारता, व्यंजनावृत्ति, ध्वनि और भाव की गम्भीरता इसके साहित्यिक सौन्दर्य का वर्धन कर रहे हैं । इस नाटक के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम अंक साहित्यिक-सौन्दर्य के लिए पठनीय,रसनिष्यन्दी एवं हृदयावर्जक है ।

वाचिक अभिनय के अन्तर्गत कथोपकथन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । इस नाटक के कथोपकथन भी अत्यन्त रसात्मक हैं । कथोपकथन के नाट्यशास्त्र में तीन भेद बतलाये गये हैं । सर्वश्राव्य, अश्राव्य, नियत-श्राव्य । नाटककार ने इसमें यथोचित रूप से अत्यन्त चारुता के साथ कथनीय कथनों का संनिवेश किया है । विस्तार भय से यहाँ कथनोपकथनों के उद्धरण अवांछनीय प्रतीत होते हैं ।

नाटक में आहार्य अभिनय का भी अपना महत्व है, इसमें अनुकार्य की वेशभूषा, अलंकरण, आभूषण आदि को धारण किया जाता है । इस नाटक का नायक राजा उदयन तापस का वेष धारण करता है और

और नायिका योगिनी का वेष धारण किए हुए है । इस नाटक की द्वितीया नायिका भी व्रतवेष को धारण किए है ।[1] पद्मावती की दासी कौसलिका वत्सराज का चित्रफलक लाती है और पद्मावती उसके पूजन का अभिनय करती है, वहाँ पर तापसवेशधारी राजा और परिव्राट् वेषधारी विदूषक का प्रवेश होता है ।[2] पद्मावती राजा को देखकर जनान्तिक में कौसलिका से कहती है, वह वहाँ लज्जा, विस्मय और प्रेम का भी अभिनय करती है । विदूषक अपने हाथ में दण्डकाष्ठ लिए रहता है । नाटक के अन्त में नायक और नायिका दोनों ही बड़ी नाटकीयता के साथ चिता में प्रवेश करने का अभिनय करते हैं किन्तु यौगन्धरायण और विदूषक बड़ी नाटकीयता के साथ सम्पूर्ण कथानाचक्र का पटाक्षेप कर देते हैं और नायक नायिका का अन्त में मधुर मिलन होता है तथा नाटक का इस प्रकार सुन्दर पर्यवसान होता है ।[3]

सात्त्विक अभिनय की दृष्टिसे भी यह नाटक सुन्दर है । सात्त्विक अभिनय के अन्तर्गत सात्त्विक हाव-भाव का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है । आचार्यगण हाव,भाव और रसों का अभिनय सात्त्विक

---

1. ततः प्रविशति योगोचित वेषा वामवदत्ता गृहीतव्रता च पद्मावती ।
तापसवत्सराजम् अंक-3, पृष्ठ 69

2. तापसवत्सराजम् अंक-3, पृष्ठ 89

3. विदूषकः [सत्वरम् उपसृत्य] भो वयस्य !
आपि परित्रायसि एवं ब्राह्मणम् ।
राजा - [चिरं निर्वर्ण्य साश्राकुलं] न खलु, कथं मे यौगन्धरायणः ।
[इत्यालिंगति]
तापसवत्सराजम् अंक-7, पृष्ठ 24.

अभिनय के अन्तर्गत मानते हैं । सात्त्विक अभिनय एक प्रकार से सूक्ष्म आन्तरिक भावों का प्रकाशन है जो इस नाटक में अत्यन्त चारुता और सफलता के साथ अभिव्यक्त हुआ है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अभिनय की दृष्टि से भी यह नाटक सुन्दर है । यद्यपि इस दृष्टि से 'स्वप्नवासव-दत्तम्' अप्रतिम प्रतीत होता है ।

00000000000
000000000
0000000
00000
000
0

नवम - अध्याय

उपसंहार

नवम् - अध्याय

उपसंहार

तापसवत्सराजम् और स्वप्नवासवदत्तम् नाटकों के तुलनात्मक नाट्यशास्त्रीय अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्य की अन्य अनेक विधाओं में नाटक का महत्व सर्वोपरि है, इसीलिए समीक्षक काव्यों में नाटक को अत्यन्त रमणीय मानते हैं। कुछ विद्वान तो नाटक को कवित्व की चरम सीमा मानते हैं। नाट्यशास्त्रियों के अनुसार वस्तु, नेता और रस के भेद से यद्यपि नाटक दस प्रकार के होते हैं किन्तु नाटकों का मुख्य आश्रय रस ही है।[1]

जिस प्रकार भारतीय साहित्य के गुम्फन में रामकथा और श्रीकृष्ण कथा का योगदान रहा है, उसी प्रकार उदयन कथा ने भी भारतीय साहित्य को अनुप्राणित किया है। उदयन-कथा गुणाढ्य-विरचित बृहत्कथा में प्राप्त थी, किन्तु सम्प्रति बृहत्कथा के लुप्त हो जाने के पश्चात् कथा-सरित्सागर और बृहतकथा मंजरी में इस कथा का उल्लेख उपलब्ध है। रामकथा और कृष्णकथा के पश्चात् यदि किसी अन्य कथा ने भारतीय - कवियों, रसिकों, सहृदयों और साधारण जनमन को उद्वेलित किया है, सरस और धन्य बनाया है और सज्जनों के हृदयतन्त्री के तारों को झंकृत

---

1. दशविधरसाश्रयम्
   दशरूपकम् 1-7, पृष्ठ 4.

किया है तो वह वत्सराज उदयन की ललित-कथा ही है । आज भी उदयनकथा की मधुरता के गीतों की मंजु मनोहरध्वनि का गुंजन सहृदयों के हृदय में हो रहा है । प्राचीनकाल में कविकुल-गुरु-कालिदास ने अपनी विश्वविख्यात रचना मेघदूतम् में अवन्ती नगरी में उदयन- वासवदत्ता -प्रणयकथा के मधुर रस में गोता लगाते ग्रामवृद्धों का उल्लेख करना नहीं भूले थे ।[1]

इस अमर प्रणय-कथा को आधार बनाकर विरचित संस्कृत में अनेक काव्यजातीय ग्रन्थ हैं किन्तु कविवर भास प्रणीत 'स्वप्नवासवदत्तम्' और अनंगहर्ष-मातृराज विरचित 'तापसवत्सराजम्' इस सम्बन्ध में अतिशय महत्व के हैं । उदयन - वासवदत्ता - प्रणयकथा वस्तुतः विशुद्ध कलावादी और धर्मनिरपेक्ष-विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाली, साधारण जनों के हृदयतल का संस्पर्श करने वाली कथा रही है । इस कथा में ललितकला - विस्तार और मानवीय - संवेदनाओं की सहज अभिव्यक्ति हुई है । एक तरुण का एक तरुणी के प्रति और एक तरुणी का एक तरुण के प्रति जो अनन्य प्रेम, बिना किसी संकोच, मर्यादा और बाधा के इस कथा में प्रस्फुटित हुआ है, वह लोक में यथार्थ की धरा से जुड़ा हुआ है ।

---

1. प्राप्यावन्तीनुदयनकथा-कोविदग्राम-वृद्धान् ।
मेघदूतम्, पूर्व-मेघ श्लोक-संख्या 1·30.

इसीलिए इस कथा को आधार बनाकर विरचित नाटक - श्रृव्य लोक में प्रसिद्धि की पराकाष्ठा को पारकर गए हैं ।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में वत्सराज उदयन, वासवदत्ता के प्रणय में आबद्ध होकर प्रेम के देवता के रूप में चर्चित हो गए थे । उनका यह अनुरागी व्यक्तित्व अवन्ति और वत्स प्रदेशों की सीमाओं को लाँघकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक चर्चित हो गया था ।

'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'तापसवत्सराजम्' नाटकों की रचना का हेतु विलासी और श्रृंगारी नायक उदयन का अनिन्द्य सुन्दरी नवयौवना वासवदत्ता के प्रेम में डूब जाना है । वह समस्त राज्यकार्यों का [illegible] परित्यागकर देता है और श्रृंगार ही उसके जीवन का प्रयोजन बन जाता है । राज्य के प्रति उदयन की उदासीनता के कारण पांचाल नरेश आरुणि वत्सराज के विस्तृत भूभाग पर अधिकार कर लेता है । जिसको हटाने के लिए महामन्त्री यौगन्धरायण इत्यादि मगध नरेश दर्शक की सहायता की अपेक्षा करते हैं और इसीलिए उदयन के साथ पद्मावती के विवाह की योजना बनाते हैं । स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की रचना का यही मूलाधार है । फिर क्या है ; नाटककार भास की कल्पनाशक्ति और कवित्व-शक्ति दोनों ने मिलकर इस नाटक को बड़ी रमणीयता के

---

1. स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।
काव्यमीमांसा [राजशेखर], पृष्ठ 55.

साथ गुम्फित किया है ।

दूसरी ओर अनंग हर्ष मातृराज विरचित नाटक तापस - वत्सराजम् में उपलब्ध उदयन-कथा स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के कथानक से किंचित भिन्न किन्तु समान प्रयोजन वाली है । इस नाटक के प्रारंभ में कंचुकीय और चेटी के कथनों से विदित होता है कि वत्सराज उदयन विषयोपभोग सेशिथिलीकृत-विग्रह वाला हो गया है, जिसके कारण इसका विवेक क्षीण हो जाता है और इसीलिए वह यह भी नहीं जान पाता कि पांचाल नरेश आरुणि उसके राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर चुका है । राज्य के प्रति राजा का यह उपेक्षा-भाव मन्त्रियों को चिन्तित करता है। मन्त्रीगण यहाँ भी राज्य की रक्षा के लिए एक राजनयिक योजना बनाते हैं ।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही नाटकों में महामन्त्री यौगन्धरायण वत्सराज की रक्षा के लिए चिन्तातुर है । दोनों ही नाटकों में महामन्त्री यौगन्धरायण की राजनीति विषयक निपुणता, उसका कूटनीतिक व्यक्तित्व और सर्वोपरि उसकी राजा के प्रति स्वामि भक्ति का परिचय मिलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मन्त्रिवर यौगन्धरायण चाणक्य के पर्याय थे ।

इधर दोनों ही नाटकों में वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने का मिथ्या प्रचार किया जाता है ।[2] दोनों ही नाटकों में मगध

---

1. तापसवत्सराजम् 1-6, पृष्ठ 12
2. स्वप्नवासवदत्तम् अंक-1 पर्व 2.

राजकुमारी पद्मावती के साथ उदयन के द्वितीय विवाह की योजनायें हैं। दोनों में ही विदूषक इस सम्बन्ध में राजा की सहायता करता है।[1] दोनों ही नाटकों में महामन्त्री यौगन्धरायण का राजनीतिक कौशल दर्शनीय है। स्वप्नवासवदत्तम् में यदि महामन्त्री यौगन्धरायण मगध के तपोवन में वासवदत्ता को पद्मावती के पास अपनी बहिन के रूप में रखते हैं, तो तापसवत्सराजम् में भी महामन्त्री यौगन्धरायण ब्राह्मणवेश में मगध आते हैं और वासवदत्ता को अपनी प्रोषित-पतिका बहिन बताकर पद्मावती के पास उसे रखकर चले जाते हैं। यहाँ पद्मावतीतपस्विनी का वेष धारण किए है और वह राजा उदयन को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही है। इन समान-घटना-चक्रवाली और समान-प्रयोजन वाली कथा को आधार बनाकर इन दोनों नाटकों की रचना की गई है। यद्यपि दोनों के कथानक समान है लेकिन दोनों नाटकों में वर्णन विविधता कल्पना-चातुर्य भावों की सुकुमारता और अर्थ का मधुर-संयोजन भिन्न-भिन्न होने के कारण उनमें कौतूहल, रमणीयता और नवीनता विद्यमान है।

संस्कृत साहित्य के अनुशीलन परिशीलन से विदित होता है कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रणेता कविवर भास की प्रशंसा परवर्ती संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में निरन्तर प्राप्त होती है। कविकुलगुरु कालिदास भास के कृतित्व और उनके नाटकीय कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।[2]

---

1. तापसवत्सराजम् अंक-1, पर्व 2
2. मालविकाग्निमित्रम्, प्रस्तावना पृष्ठ 6.

गद्य-कानन-केसरी कवि-पंचानन बाणभट्ट, कविशेखर - राजशेखर, प्रसन्न-राघवकार कविवर जयदेव और वाक्पति राज जैसे कविजन भास के व्यक्तित्व, कवित्व पर अपनी प्रशंसापूर्ण टिप्पणी करते हैं।[1] वस्तुतः भास का कृतित्व और व्यक्तित्व बहुत महान है । समीक्षकों ने अपनी आलोचना की अग्नि में भास के तेरह नाटक झोंक दिए थे किन्तु उनकी आलोचना की अग्नि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक को जला नहीं पाई ।[2] यह भास के अलौकिक कवित्व और उनके अद्वितीय नाट्य कौशल का प्रमाण है ।

दोनों ही कविवर और नाटककार भास एवं अनंग-हर्ष मातृराज संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं । दोनों ही नाटककारों की कृतियाँ काल के गर्भ में विलीन होते-होते बची हैं । यह सौभाग्य और गौरव की बात है कि 1909ई0में प्रसिद्ध प्राच्य-विद्या-विशारद और गवेषक महामहोपाध्याय टी0 गणपति शास्त्री ने भास के लुप्त तेरह नाटकों को खोज निकाला था, जिसमें से सबसे सर्वश्रेष्ठ नाटक एक स्वप्नवासवदत्तम् भी था । भास के सभी नाटकों में यह नाटक अद्वितीय है । रंगमंच, अभिनय और दृढ़कथा बन्ध से यह संस्कृत साहित्य की प्रशस्त रचना है ।

इस अध्ययन से यह भी विदित होता है कि भास एक धर्मशील ब्राह्मण थे और उत्तर भारत के निवासी थे । स्वप्नवासवदत्तम् के भरत वाक्य से विदित होता है कि कविवर भास ने हिमालय और विन्ध्या-

---

1. सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव । बाण-हर्षचरितम् 1·15, पृष्ठ 08
   भासो हासः - जयदेव प्रसन्नराघवम् 1·22
2. स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।
   काव्यमीमांसा {राजशेखर}, पृष्ठ 55.

चल दोनों पर्वतों के मध्य उत्तरी भारत के ही किसी भू-भाग को अपने जन्म से अलंकृत किया था। वह अद्भुत पाण्डित्य और कवित्व के धनी थे। उनकी प्रतिभा मौलिक थी तथा उनका मस्तिष्क अत्यन्त उर्वर और रचनाधर्मी था। उनका सम्भावित रचनाकाल 400ई0 पूर्व रहा है।[1] भास के नाटक प्रसाद, ओज और माधुर्य गुणों के पर्याय हैं। इसीलिए उनकी नाट्यकला आज भी श्रेष्ठ और प्रशंसनीय बनी हुई है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी भास की मौलिकता प्रशंसनीय है। रस-निष्पत्ति में भी वे निपुण हैं। इसीलिए जयदेव ने उन्हें 'कविता - कामिनी' का 'हास' कहा है, वस्तुत: भास ऐसे कवीश्वर हैं जिनके यशरूपी शरीर में जरा और मरण का भय नहीं है।[1]

दूसरी ओर तापसवत्सराजम् नाटक के प्रणेता कविवर अनंग हर्ष मातृराज संस्कृत साहित्य के जाज्वल्यमान कविरत्न हैं, ये राजपुत्र हैं और उच्च-कोटि के कवि भी हैं। इनकी कृति तापसवत्सराजम् के अनुशीलन से विदित होता है कि कवि की वाणी घनीभूत प्रेम से ओत-प्रोत है, उनमें सुजनता, सुकोमलता और हृदयदेश को स्पर्श करने वाले गुण विद्यमान हैं। कविवर भास की भाँति नाटककार अनंग हर्ष भी उत्तर भारत के निवासी थे।[2] इनका रचनाकाल अष्टम् शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक प्रतीत होता है। अनेक काव्यशास्त्रियों ने इनके नाटक के पद्यों का

---

1. येषां नास्ति यशः काये जरामरणजं भयम्।
   उद्भट-सागर: गुरुदास चट्टोपाध्याय, कलकत्ता-1841, पृष्ठ 33
2. तापसवत्सराजम् - प्रस्तावना, पृष्ठ 10,

अपने ग्रन्थों में उद्धरण दिया है ; इससे उनके कवित्व और वैदुष्य का परिचय मिल जाता है । जिस प्रकार भास-नाट्क-चक्र की खोज महा-महोपाध्याय टी०गणपति शास्त्री ने की है, उसी प्रकार तापसवत्सराजम् नाटक की खोजका श्रेय श्रीयदुगिरि यति राज सम्पत्-कुमार रामानुज मुनि जी मैसूर को है । वस्तुत: इस नाटक की मूल प्रति बर्लिन के एक विश्वविद्यालय में सुरक्षित रही है और इस मूल प्रति की सर्वप्रथम उपलब्धि प्रो० कुन्टस को काश्मीर में हुई थी और उन्होंने ही उसे बर्लिन विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय में रख दिया था । पंजाब विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रो०-द्वय डॉ० देवीदत्त शर्मा और डॉ० इन्द्रदत्त उनियाल के अथक परिश्रम से 1969 में इसका प्रकाशन किया था जो इस शोधप्रबन्ध का अध्ययन-विषयीभूत नाट्य-ग्रन्थ है ।

नाटककार अनंग-हर्ष ने अपने नाटक तापसवत्सराजम् में प्राचीन और चर्चित कथानक को आधार बनाने के बाद ही इसमें नवीनता पैदा की है । इस नाटक में नायक उदयन और नायिका पद्मावती क्रमश: तापस और तपस्विनी के रूप में चित्रित किए गए हैं जो कवि की मौलिक कल्पना का परिचायक है । इस नाटक के अध्ययन से यह विदित होता है कि उदयन और वासवदत्ता का प्रणय सचमुच अलोक-सामान्य और युगान्तर व्यापी है । यह एक कालजयी नाट्यकृति है जिसमें विरह और तप से परिपूत, अनल से अदग्ध, 'सत्य प्रेम' का पावन और ललित मोहन रूप प्रस्फुटित हुआ है ।[1]

---

1. तापसवत्सराजम् : साहित्य भण्डार मेरठ-1969 संस्करण

भास और अनंग-हर्ष मातृराज दोनों ही नाट्यकला में कुशल हैं किन्तु इस नाट्यकला प्रदर्शन में दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है । भास अपने नाटक में पांडित्य प्रदर्शन नहीं करते हैं जबकि दूसरी ओर अनंग-हर्ष मातृराज ने अपने नाटक में अपने कवित्व और प्रखर पाण्डित्य का परिचय दिया है । उनके इस वैदुष्य प्रदर्शन से नाटकीयता में कुछ बाधा पड़ी है । यद्यपि उनके नाटक में नाटकीयता की छाया सर्वत्र विद्यमान है । शार्दूल-विक्रीडित जैसे दीर्घ छन्द और कुंजरक के लम्बे - लम्बे समासबाहुल्य गद्य नाटक की गति अवरुद्ध कर देते हैं, फिरभी प्राचीन आचार्यों ने इस नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । करुण और विप्रलम्भ रस पर आश्रित यह नाटक शताब्दियों तक चर्चित रहा है ।

चरित्र-चित्रण, संवाद-योजना, संवादों की भाषा, संस्कृत और प्राकृत भाषा के पाठ्य दोनों ही नाटकों में अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किए गए हैं, फिरभी स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में संवादों की स्वाभाविकता और सरलता कहीं अधिक हृदय को स्पर्श करने वाली है ।

रस-निष्पत्ति की दृष्टि से दोनों ही नाटक प्रशंसनीय हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में विप्रलम्भ शृंगार अपनी सम्पूर्ण चारुता के साथ प्रस्फुटित हुआ है । वस्तुतः कविवर भास रससिद्ध महाकवि हैं । इसीलिए उनके उनके नाटकों के दर्शक और पाठक उनमें बंधे रहते हैं और आनन्द विभोर हो जाते हैं ।

दूसरी ओर तापसवत्सराजम् नाटक में करुण रस की

निष्पत्ति अत्यन्त सुन्दरता के साथ हुई है । नाटक के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक करुण रस की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है जो हमें कविवर भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' की याद दिला रही है ।

दोनों ही नाटकों में कलापक्ष और भावपक्ष का सौन्दर्य अपनी सम्पूर्ण चारुता के साथ प्रकट हुआ है, जहाँ एक ओर भास की शैली में प्रसाद, ओज और माधुर्य गुणों का साम्राज्य है । शब्द-सौष्ठव और व्यंजना का चमत्कार है, वहाँ वे कहीं कहीं अपने मौन से भी अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हुए दिखलाई देते हैं । उनकी भाषा अलंकारों के अनावश्यक बोझ से दबी हुई नहीं है ; किन्तु फिरभी उसमें तेज, प्रभाव और कौतूहल विद्यमान है ; यद्यपि अलंकार कविता का अनिवार्य धर्म नहीं है, किन्तु फिरभी भास के नाटक में उपमा, अनुप्रास, व्यतिकर और अर्थान्तर न्यास इत्यादि अलंकार स्वाभाविक रूप से भाषा के प्रवाह में आ गए हैं । वे प्रकृति के वर्णन में सिद्धहस्त हैं । तपोवन में संध्यासमय का वर्णन अद्वितीय है ।[1] उनके नाटक में इतने सुन्दर सुभाषित वाक्यों का प्रयोग हुआ है जिनमें जीवन की सत्यता प्रस्फुटित होती है, वे आद्योपान्त कंठस्थ कर लेने के योग्य है ।[2]

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् 1·16
2. [अ] चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ।
   स्वप्नवासवदत्तम् 1·4
   [ब] कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले ।
   स्वप्नवासवदत्तम् 6·10.

उदयन-वासवदत्ता प्रणय-कथा से सम्बन्धित तापसवत्सराजम् नाटक भी अपने अनेक काव्यजातीय गुणों के कारण शताब्दियों से विद्वानों के मध्य मान्य रहा है । इसीलिए आचार्य आनन्दवर्धन से लेकर हेमचन्द्र तक तथा राजशेखर और आचार्य कुन्तक जैसे काव्यशास्त्रियों ने उनके नाटक के पद्यों का सम्मानपूर्वक उद्धरण दियाहै । इस नाटक में एक से एक सुन्दर अलंकार, शब्द-सौष्ठव, वचनवक्रता और प्रकरण-वक्रता, अर्थ की रमणीयता और भाव की भव्यता देखते ही बनती है । अलंकारों के प्रयोग में कविवर अनंग-हर्ष मातृराज अत्यन्त चतुर हैं, उनके अलंकार सरल, स्वाभाविक और रसानुगामी हैं । इस नाटक में कलापक्ष और भावपक्ष एक साथ प्रतिस्पर्धा करते प्रतीत होते हैं ।

करुण रस के चित्रण में यह कवि द्वितीय भवभूति प्रतीत होता है । जैसे उत्तररामचरितम् के नायक श्रीराम सीता के वियोग में आद्योपान्त आँखों में आँसू भरे रहते हैं । उसी प्रकार तापसवत्सराजम् का नायक उदयन भी आद्योपान्त रुदन करता दिखाई पड़ता है । दोनों में अन्तर दिखाई यह देता है कि श्रीराम ने कभी दूसरा विवाह नहीं किया था, जबकि उदयन ने राजकुमारी पद्मावती के साथ दूसरा विवाह भी कर लिया था किन्तु फिरभी इसका मन वासवदत्ता के प्रेम से एक क्षण भी विलग नहीं होता है । भवभूति के बाद करुण रस को इतना अधिक महत्व यदि किसी संस्कृत के कवि ने दिया है तो वह कविवर अनंग हर्ष मातृराज ही प्रतीत होते हैं । इनके काव्य में कविकुलगुरु

कालिदास के काव्यों की जैसी मादकता और कोमलता प्रतीत होती है । इनके नाटक की भाषा करुण-रस-प्रधान विप्रलम्भ श्रृंगार के अनुकूल है ।

संस्कृत साहित्य में उदयन एक धीर ललित नायक के रूप में विख्यात हैं । वह विलासी और श्रृंगारी हैं । प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक से विदित होता है कि वह प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता को अपने साथ अपहरण कर ले आया था, इससे उसकी कामुकता और विलासिता का परिचय मिलता है । लेकिन यह नायक का नायिका के प्रति अनन्य प्रेम है, जिसके कारण उसकी अमरनायकों के मध्य गणना की जाती है । फिरभी ऐसे विलासी, कामुक और श्रृंगारी राजा वत्सराज उदयन को एक तापस के रूप में चित्रित करने का कार्य कविवर अनंग-हर्ष मात्रराज ही कर सकने में समर्थ हैं ।

वासवदत्ता के अनन्य प्रेम के कारण ही वियोग काल में वे तापस के रूप में मंच पर दिखाई देते हैं । उनके जीवन में यह परिवर्तन कवि की अद्वितीय नाट्यकला का ही परिणाम है ।

यद्यपि रंगमंच और प्रेक्षागृह के सम्बन्धमें इन दोनों नाटकों से साक्षात् कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है किन्तु इतना अनुमान अवश्य होता है कि उस समय नाट्य प्रेक्षागृह दर्शकों के अनुकूल और अपेक्षित साज-सज्जा से युक्त रहे होंगे ।

दोनों ही नाटकों का प्रारम्भ यद्यपि सूत्रधार से होता है किन्तु प्रस्तावना में भास अपना नामोल्लेख नहीं करते हैं । जबकि अनंग

मातृराज सूत्रधार के माध्यम से अपने व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय देते हैं । भास की प्रस्तावना में मुद्रालंकार के प्रयोग से जो सौन्दर्य और चमत्कार प्रतीत होता है । वह तापसवत्सराजम् नाटक की प्रस्तावना में नहीं है ।

यद्यपि दोनों ही नाटकों में आंगिक,वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनयों का यथोचित संनिवेश दिखाई देता है लेकिन नाटककार भास ने प्रत्येक दृष्टि से अभिनय की चारुता का जितना ध्यान रखा है, उतना कविवर अनंग हर्ष मातृराज ने नहीं रखा है । भास के स्वप्नवासवदत्तम् नाटक को मंचन के लिए विद्वान सर्वथा उपयुक्त मानते हैं । भाषा, भाव, अभिनय, चरित्रांकन और नाटक का लघु आकार संस्कृत रंगमंच के लिए सर्वथा उपयुक्त है । इसलिए सम्भवतः स्वप्नवासवदत्तम् आलोचकों की परीक्षारूपी अग्नि में आज तक 'अदग्ध' बना हुआ है ।

दूसरी ओर अभिनय की दृष्टि से तापसवत्सराजम् का उतना महत्त्व प्रतीत नहीं होता है । यद्यपि कवि ने अपने नाटक में अपेक्षित नाटकीय गुणों का यथोचित समावेश किया है किन्तु दीर्घ छन्दों में निबद्ध बड़े- बड़े श्लोकों और कादम्बरी के गद्यखण्ड की भाँति श्लिष्ट और दुरूह बड़े- बड़े गद्य खण्डों में इसकी अभिनय-कला को विखण्डित कर दिया है ।

उपर्युक्त कारणों से यद्यपि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की तुलना में रंगमंच की दृष्टि से 'तापसवत्सराजम्' नाटक का महत्त्व कुछ न्यून

प्रतीत होता है किन्तु रसात्मकता की दृष्टि से यह नाटक अत्यन्त प्रशंसनीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर अनंग-हर्ष ने नाटक को रसाश्रय मानते हुए रस निष्पत्ति पर अधिक ध्यान दिया है ।[1] नाटक में रस का प्रमुख स्थान होने के कारण उन्होंने इसमें काव्यात्मकता अधिक प्रदर्शित की है । यद्यपि तापसवत्सराजम् नाटक में नाटकीय गुण भी प्रचुरता में विद्यमान हैं, फिरभी इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की तुलना में नाटकीय गुणों की अपेक्षा काव्यात्मक गुणों की प्रधानता अधिक है ।

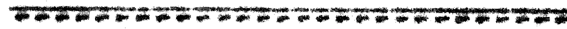
दोनों ही नाटक चतुर्वर्ग-फल-प्राप्ति के हेतु होने के साथ-साथ आनन्द निष्पन्दी हैं । सौभाग्य से रंगकर्मियों और कलाकारों की ये दोनों प्राचीन सांस्कृतिक और साहित्यिक धरोहरें काल के गर्भ में विलुप्त होने से आज भी हमें सुरक्षित रूप में उपलब्ध हैं । इन दोनों नाट्य-कृतियों का तुलनात्मक अनुशीलन सचमुच सद्यः परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला है ।

000000000
00000000
00000
000
0
शुभ - मस्तु
0
000
00000
0000000
000000000

---

1. दशरूपक ,दशरूपक 1·7,संस्करण-1967, पृष्ठ 04.

स हा य क ग्र न्थ सू ची



सहायक ग्रन्थ - सूची

तापसवत्सराजम् : अनंग हर्ष मातृराज

स्वप्नवासवदत्तम् : भास

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम् : भास

भास नाटकचक्रम : भास

प्रतिमा नाटकम् : भास

अभिषेकनाटकम् : भास

बालचरितम् : भास

पंचरात्रम् : भास

मध्यमव्यायोग : भास

दूतवाक्यम् : भास

दूतघटोत्कचम् : भास

उरुभंगम् : भास

कर्णभारम् : भास

अविमारकम् : भास

चारुदत्तम् : भास

अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास

मालविकाग्निमित्रम् : कालिदास

विक्रमोर्वशीयम्	:	कालिदास
उत्तररामचरितम्	:	भवभूति
अनर्घराघवम्	:	मुरारि
महावीर चरितम्	:	भवभूति
मृच्छकटिकम्	:	शूद्रक
मुद्राराक्षसम्	:	विशाखदत्त
वेणीसंहारम्	:	भट्टनारायण
रत्नावली	:	श्री हर्ष
प्रियदर्शिका	:	श्री हर्ष
नागानन्दम्	:	श्री हर्ष
मालतीमाधवम्	:	भवभूति
मज्झिमनिकाय	:	बुद्धघोष
हर्षचरितम्	:	बाण
मेघदूतम्	:	कालिदास
कथासरित्सागर	:	सोमदेव
बृहत्कथामंजरी	:	क्षेमेन्द्र
बृहत्कथाश्लोकसंग्रह	:	बुधस्वामी
कुट्टनीमतम्	:	दामोदर गुप्त
शृंगारप्रकाश	:	भोजदेव
वासवदत्ता	:	सुबन्धु
ध्वन्यालोक	:	आनन्द वर्धनाचार्य

प्रत्याभिज्ञादर्शिनी	:	अभिनव गुप्त
नाट्यशास्त्र	:	भरतमुनि
काव्यमीमांसा	:	राजशेखर
अलंकारसर्वस्व	:	रुय्यक
काव्यप्रकाश	:	मम्मट
वक्रोक्तिजीवितम्	:	कुन्तक
सरस्वतीकण्ठाभरणम्	:	भोजदेव
दशरूपक	:	धनिकधनंजय
साहित्यदर्पण:	:	कविराज विश्वनाथ
संस्कृत नाटक	:	ए0बी0कीथ
काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	:	वामन
गउडवहो	:	वाक्पतिराज
संस्कृतसाहित्य का इतिहास	:	ए0बी0कीथ, अनुवादक- मंगलदेव शास्त्री
संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	बलदेव उपाध्याय
संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	वाचस्पति गैरोला
संस्कृत आलोचना सं.सा.का इतिहास	:	बलदेव उपाध्याय जयकिशनलाल खण्डेलवाल
सारस्वत संदर्शनम्	:	प्रो0सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी
प्लेज आफ भास	:	भास
प्रसन्नराघवम्	:	जयदेव
नाट्य दर्पण	:	रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र
भास,ए स्टडी	:	ए0डी0पुसालकर
अर्थशास्त्र	:	कौटिल्य

कुमारसम्भवम्	:	कालिदास
रघुवंशम्	:	कालिदास
उद्भटसागर	:	उद्भटाचार्य
काव्यानुशासन	:	हेमचन्द्र
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	:	चन्द्रशेखर शास्त्री
धर्मशास्त्र का इतिहास	:	पी०वी०काणे
पाणिनीय शिक्षा	:	पाणिनि
नाट्यकला	:	डॉ०रघुवंश
नाटकों का विकास	:	डॉ०सुन्दरलाल शर्मा
द क्रिटिकल स्टडी आफ भास	:	गणपति शास्त्री
काव्यशास्त्र	:	डॉ०भागीरथ मिश्र
महाभारत	:	वेदव्यास
रामायण	:	वाल्मीकि
श्रीमद्भागवत महापुराण	:	वेदव्यास
भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा	:	डॉ०नगेन्द्र
संस्कृत वांग्मय का विवेचनात्मक इतिहास	:	डॉ०सूर्यकान्त
संस्कृत साहित्य का इतिहास	:	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
संस्कृत हिन्दी कोश	:	वामनशिवराम आप्टे,दिल्ली

हिन्दी विश्वकोश : नगेन्द्र वसु

शब्दकल्प द्रुम : राधाकान्तदेव वाराणसी

कालिदास ग्रन्थावली : आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

भारतीय साहित्य का इतिहास : विन्टर नित्स

सागरिका शोध-पत्रिका : सागर विश्वविद्यालय

दूर्वा शोध -पत्रिका : म०प्र०संस्कृत अकादमी

भवन्स जर्नल, चौपाटी :बम्बई : सम्पादक-डॉ०भास्कराचार्य त्रिपाठी

जर्नल आफ भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ पूना

: जर्नल आफ गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद

: इण्डियन इन्टीक्वेरी रिसर्च जर्नल एवं अन्य शोध-पत्र पत्रिकायें ।

शुभमस्तु